कुण्डली चक्र

(सामाजिक उपन्यास)

वृन्दावनलाल वर्मा

मयूर प्रकाशन झाँसी

प्रकाशक:
सत्यदेव वर्मा, बी. ए. एल-एल. बी.,
मयूर प्रकाशन, झाँसी।

मयूर प्रकाशन में
प्रथमावृत्ति १९५८
तृतीय संस्करण—१९६१
मूल्य—२ रुपया २५ नये पैसे.

मुद्रक:
रामसेवक खड्ग
स्वाधीन प्रेस, झाँसी।

परिचय

अजितकुमार और पूना के सम्बन्ध की घटनायें, जो इस उपन्यास में लिखी गई हैं, सच्ची हैं; परन्तु थोड़े से हेर-फेर के साथ लिखी गई हैं। पैलू और बुद्धा से सम्बन्ध रखने वाली 'प्रेत-बाधा' की घटना भी सत्य है, और हाल ही की है। अजितकुमार जिस पात्र का प्रतिबिम्ब है, वह अभी जीवित है। रतन अब नहीं है। ललितकुमार सदृश चरित्र समाज में मिल सकते हैं, है वह कल्पित व्यक्ति। यही बात शिवलाल के लिये भी कही जा सकती है। भुजबल अभी संसार में है--कुछ सुधरे हुए रूप में, परन्तु यह नहीं मालूम कि उसने दूसरा विवाह किया या नहीं। भुजबल से सम्बन्ध रखने वाली एक-आध घटना सत्य है, अधिकांश कल्पित हैं।

वृन्दावनलाल वर्मा

कुण्डली-चक्र

[१]

ललितसेन की आयु तीस वर्ष के भगभग हो गई थी, परन्तु उसने अपना विवाह न किया था। माता-पिता छुटपन में ही साथ छोड़ गये थे। एक बहन थी, विवाह उसका भी न हुआ था, यद्यपि पन्द्रह-सोलह वर्ष की हो चुकी थी। स्वयं अध्ययन की धुन में लगा रहता था, और बहन को भी खूब पढ़ाने में अनुरक्त था। विवाह को वह बहुत जरूरी काम नही मानता था।

इतिहास और दर्शन-शास्त्रों से उसको प्रेम था। परन्तु योरपीय और भारतीय दर्शन-शास्त्रों के अनियत अध्ययन ने उसके मन के एक खिचड़ी सिद्धान्त की सृष्टि कर दी थी। उसकी धारणा हो गई थी कि निर्बल-दुर्बल व्यक्ति जीवित रहने की पात्रता नही रखता; उसका नाश को प्राप्त हो जाना आवश्यक और उचित है। आर्य-दर्शन-शास्त्र पर उसकी बहुत श्रद्धा नहीं थी, किन्तु वह जाति पाति के सिद्धांत को मानता था।

परन्तु उसके सिद्धांत संसार की मुठभेड़ के संपर्क में न आये थे। लोगों में उठता बैठता बहुत कम था। संसार के कटु अनुभवों का उसको सामना बहुत ही कम करना पड़ा था। स्वाभिमानी था, और बोल का जरा कडुआ, इसलिये लोग उसमें कभी-कभी उद्धतपने की जरा दीर्घ मात्रा का आभास अनुभव किया करते थे।

उसका निवास नयागांव छावनी में था, जो झांसी से पूर्व-दक्षिण की ओर करीब साठ मील है। बस्ती में व्यवसाय था, प्रमोद था, और थी ललितसेन के सिद्धांतों के प्रति जनता में उपेक्षा। वह भी इन 'अपढ़-कुपढ़ या अर्द्धदग्ध' लोगों के मन में शङ्काओं को उत्पन्न कर के समाधान करते फिरने का आकांक्षी न था।

परन्तु उसकी बहन, जिसका नाम रत्नकुमारी था, और जिसे वह प्यार से रतन कहकर पुकारता था, उसकी विनीत श्रोता थी।

वह अपने भाई को वृहस्पति से बढ़कर प्रकांड पण्डित और उसकी दृढ़ता को अश्वमेध करने वालों से बढ़कर पराक्रम-पूर्ण समझती थी। शास्त्रों के वचन—चाहे भारतीय हों, चाहे योरपीय—उसके लिये बहुत प्रभाव न रखते थे; परन्तु भाई का आदेश उसके लिये सब कुछ था।

उसने ललितसेन से प्यार पाया था, विद्या पाई थी, और अब आदर पाने का समय आ रहा था।

दर्शन-शास्त्र की उलझनों को विलक्षण खण्डन-मण्डन से प्रतिपादित करना हिन्दुओं के लिये नई बात नहीं है। चाहे जिस तरह का सिद्धान्त मानने वाला हो, परन्तु जाति-पांति के भीतर बना रहे, फिर उसके सिद्धान्तवाद से किसी को कुछ झगड़ा नहीं। नयागांव छावनी के जो लोग ललितसेन से परिचित थे, और उसके सिद्धांतों का ऊँच-नीच नहीं समझते थे, उसकी गिनती बकवादियों में करते थे। इससे अधिक और कोई कृपण भाव उसके प्रति उन लोगों के जी में न था।

मकानों, दूकानों और बंगलों के किराये की आय से घर-गृहस्थी का खर्च मजे मे चलता था, इसलिये दर्शन-शास्त्र के मनन करने और अपने मनन के गूढ फलों को परिचितों के सामने रखने के लिये यथेष्ट अवकाश था। यदि उसके अनिच्छा-पूर्ण श्रोताओं के पास उतना समय न था, तो उसमें ललितसेन का कोई दोष न था। निर्बलों या असहायों को दान देना वह प्रकृति के नियम के विरुद्ध समझता था, और उसकी परिभाषा दान की थी—निर्बलों का विनाश, जिसमें सहस्रों वर्ष

की दान-परिपाटी-सदृश भ्रम-पूर्ण बात के लिये रत्ती-भर स्थान न था। यद्यपि निर्बलों के विनाश-कार्य को उसने हाथ में कभी न लिया था, तो भी लोग उसको बेखटके कंजूस कहते थे। वैसे चरित्र-सम्बन्धी और बातों में लोग कभी उस पर उँगली नही उठाते थे। और, शायद इसी 'कंजूसी' के कारण उसकी शास्त्र-चर्चा का प्रभाव किसी पर न पड़ता था।

[२]

एक दिन ललितसेन अपनी बैठक मे बैठा था। किवाड़ खुले थे। वहाँ से पश्चिमोत्तर दिशा में आलीपुरा-रियासत की पहाड़ियों को देख-देखकर सोच रहा था कि आग के ठण्डे होने पर गरम धुआँ हुआ, गरम धुएँ की भाप, भाप का पानी, पानी से मिट्टी, मिट्टी से पहाड़ और कृमि-कीट तथा उनसे मनुष्य बने, परन्तु आग में जीव के परमाणु भी मौजूद रहे होंगे या नही, आग कहाँ से बनी होगी और क्यों बनी होगी, इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर नही मिलता था। उसने थोड़ी देर सिर खपाने के बाद निश्चित किया कि परमाणु को अग्नि नष्ट नही कर सकती। परमाणु अग्नि-रूपीं रहे होगे। इस खोज पर वह प्रसन्न हुआ, परन्तु पास मे सुनने वाला कोई न था। इसलिये बहन को बुलाया।

रतन आई। पढ़ी लिखी थी। भाई विलायती शास्त्रों का पारंगत था, इस पर भी रतन ने अपना बुन्देलखण्डी पहनावा न छोड़ा था। रंग उसका नाम के अनुरूप था। कुछ लम्बी थी, परन्तु सुडौल। आंखें बड़ी-बड़ी, चेहरा गोल, नाक सीधी और कुछ छोटी।

रतन को ललित ने बिठलाकर अपनी गवेषणा सुनाई। कभी वह आश्चर्य प्रकट करती थी, कभी हर्ष, परन्तु स्वीकार सब तर्क को कर लिया। किन्तु ललित के स्वयं उठाये हुये प्रश्न को कि पृथ्वी आरम्भ में अग्नि-पिण्ड क्यों थी, रतन न समझ सकी; और न ललित उसको समझा सका।

इतने में सादे, किन्तु स्वच्छ कपड़े पहने एक युवक बैठक में आया। कोई भी हिन्दोस्तानी किसी हिदोस्तानी के घर की पहली बैठक मे प्रवेश करना अपना हक समझता है, इसलिये वहां बेरोट-टोक चला आया, रतन उसको देखकर भीतर चली गई। ललित को इस मनुष्य के आने पर खीझ नहीं हुई। थोड़ी देर के लिये मनन और अन्वेषण करने वाली इंद्रिय को विश्राम मिला। युवक की आयु बीस वर्ष के लगभग होगी, रंग सांवला था, नाक सीधी जरा लंबी। माथा ऊँचा और आँखें साधारण। कद न लंबा न नाटा। शरीर हृष्ट-पुष्ट जैसे किसी उद्यान में व्यायाम करके आया हो। देखते ही ऐसा भान होता था कि युवक रूपवान या सुन्दर आकृति का है, परन्तु बारीकी से देखने पर भास होता था कि स्थिर निष्कपट नेत्रो में विश्वास और लगन का लावण्य है, और पतले होंठ तथा भरा हुआ मुँह कभी-कभी हास के कोलाहल क्षेत्र बन जाते होंगे।

परस्पर अभिवादन के बाद ललित ने पूछा—'आप कहां से आये ? कैसे आना हुआ ?'

युवक ने उत्तर दिया—'मैं ललितपुर का रहने वाला हूँ। इसी साल बी० ए० पास किया है। सुना था कि यहां के स्कूल में एक मास्टरी की जगह खाली है। प्रार्थना-पत्र भेजा था, उसका कुछ उत्तर न मिला। और कहीं नौकरी न मिलती देख उत्तर की अधिक प्रतीक्षा किये बिना ही यहां चला आया। आने पर मालूम हुआ कि स्थान भर गया। मैंने सोचा है, घरू पढाई का काम करके निर्वाह करूंगा। एक छोटा-सा काम मिल भी गया है। आपके पास सहायता के लिये आया हूँ।'

'सहायता ? किस तरह की ?' ललितसेन ने जरा रुखाई के साथ कहा।

'आपके यहा कोई ट्यूशन है ?'

'है भी और नहीं भी है।'

'मैं दो घण्टे समय दे सकता हूं।'

'क्या लेंगे ?'

'बीस रुपये।'

'आप कुछ गायन-वादन जानते हैं ?'

'थोड़ा-सा।'

'सिखला सकते हैं ?'

'जी हाँ। उसी दो घण्टे के समय में।'

'अच्छी बात है। मेरी बहन रतनकुमारी है। हम लोग उसको रतन कहकर बुलाया करते है। हिन्दी पढ़ी है। थोडी अंगरेजी भी जानती है। यहां के स्कूल में लडकियों के पढ़ाने का प्रबन्ध न देखकर घर पर ही पढाया है आप उसको अंगरेजी पढ़ाएँ, और गायन-वादन सिखलाएँ। आपका धार्मिक विश्वास क्या है ?'

'ईश्वर मे विश्वास है। इससे अधिक और क्या कह सकता हूँ ?'

'आप विकास-सिद्धांत को मानते हैं ?'

'जी हाँ।'

'विकास-सिद्धांत में ईश्वर की तो कोई गुंजाइश नही।'

'मेरे विकास-सिद्धांत मे है।'

'आप किसी ईश्वरीय पुस्तक में विश्वास करते हैं ?'

'जी हां, वेदादि ग्रंथों मे।'

'तब मेरे यहाँ ट्यूशन का काम आपको कठिन जान पड़ेगा। हम लोग यह सब पचड़ा नही मानते। ये पुरानी किताबें हर एक धर्म में पाई जाती है, और सब उनको ईश्वर-कृत मानते है। मैं भी समझता हूं कि किसी युग के लिये ये पुस्तकें उपयुक्त रही होंगी, परन्तु अब उनके लिये स्थान अजायब-घर में होना चाहिय। मेरी बहन भी इसी सिद्धान्त को मानती है।'

'मुझे किसी के धार्मिक विश्वास से कोई प्रयोजन नहीं। मैं तो साहित्य, इतिहास इत्यादि पढ़ा दिया करूँगा, और जो कुछ थोड़ा-सा गायन-वादन जानता हूँ, वह बतला दिया करूँगा।'

'परन्तु जिस दिन आप अपने धार्मिक विश्वासों का झमेला रतन के सामने धरकर बैठेंगे, उस दिन मुझे आपको यहां पर और अधिक दिन रखने में कुछ कठिनाई मालूम होगी। यदि आपको बहस का शौक हो, तो यह मर्ज मुझे भी बहुत है। या तो मैं आपको अपने सिद्धांत के अनुकूल बना लूंगा या मैं आपका कायल हो जाऊँगा।'

'मुझे समय और स्थान बतला दिया जाय।'

इस पर ललितसेन ने बैठक से पीछे लगे हुये एक हवादार साफ-सुथरे कमरे को बतलाया। समय सबेरे आठ से दस तक नियुक्त हुआ।

ललितसेन ने रतन को बुलाया और कहा—'कल से तुमको यह महाशय अङ्गरेजी पढायेंगे, और गाना-बजाना भी सिखलायेंगे। आठ से दस बजे तक काम होगा।'

रतन ने साधारण-सी चितवन से अपने भावी अध्यापक की ओर देखकर कहा—'बहुत अच्छा।'

अध्यापक के वहां से चले जाने के पहले ललितसेन ने कहा—'मैंने आपका शुभ नाम नहीं पूछ पाया।'

अध्यापक ने कहा—'मेरा नाम अजितकुमार है।'

'आप कहां ठहरे हैं?'

'बिलहरी में कुम्हरेड़ी नाले के उस पार, किनारे एक सम्बन्धी के मकान में।'

[२]

बिलहरी छावनी से करीब कोस-भर उत्तर की ओर है। अजितकुमार मन-ही-मन प्रसन्न ललितसेन के मकान से घर गया। कुम्हरेड़ी का पुल पार करके घर पहुंचा, परन्तु उसको मार्ग न खुला। बीस रुपये की एक ट्यूशन रात के समय की थी, और बीस रुपये की सबेरे हो गई। दोपर का समय अध्ययन और विश्राम के लिये तथा संध्या का समय घूमने-टहलने के लिये। घर पर कोई न था नहीं, जिसकी चिन्ता हो।

दूसरों की कृपालुता से बी० ए० पास कर लिया था, आवश्यकतायें थोड़ी थी, विवाह हुआ नही था, और न मन में लोभ था। यदि इस बीच में स्कूल में कोई जगह खाली हो गई, तो आशा थी कि एक ही ट्यूशन रखकर अध्यापन-कार्य करता रहूगा। परन्तु उसको हर्ष था, नये विद्यार्थी की सुपात्रता पर। संगीत का प्रेमी था, इसलिये शिक्षण के प्रातःकालीन कार्य-क्रम मे उसका भी स्थान देखकर उसको बहुत सन्तोष था।

दिवाली हुये अभी कुछ ही दिन हुये थे। ठंड नही पड़ती थी, परन्तु गर्मी भी बिलकुल न थी। प्रातःकाल की रश्मियाँ मृदुल और सुहावनी थी, और श्यामा तथा हरियल के निरन्तर नाद बहुत श्रुति मधुर। अजितकुमार दूसरे दिन सवेरे ही तैयार होकर छावनी के लिये निकल पड़ा, और धीरे-धीरे टहलता हुआ ठीक समय पर ललितसेन के घर जा पहुंचा। ललितसेन मिला, परन्तु रतन कमरे में अभी न आई थी। आज ललितसेन के स्वर में मिठास अधिक थी। बोला—'रतन को घर का कोई काम-काज नहीं करना पड़ता है, परन्तु कुछ आलसिन है। वह आती ही होगी। मैं भी थोड़ी देर मे आता हूँ।' ललित वहाँ से चला गया।

अजितकुमार कमरे की चीजों को आँखों से टटोलने लगा। सादगी और स्वच्छता थी। बनावट या तड़क-भड़क की बहुलता न थी। कोने में एक हारमोनियम रक्खा हुआ था, अजित ने सोचा—'मैं तो हारमोनियम बजाना जानता ही नही हूँ। शायद यह ट्यूशन जितनी शीघ्रता के साथ मिली, उतनी ही शीघ्रता के साथ हाथ से निकल भी जायगी।'

उसको थोड़ी ही देर बैठना पड़ा होगा कि रतन कुछ पुस्तकें लिये हुये आ गई। सीधी-भोली लड़की मालूम पड़ती थी। आंखों में जरा संकोच था :—

अजितकुमार ने स्त्रियों की संगति कभी न की थी, इसलिये जरा अचकचाया। एक बार उसकी ओर देखा, फिर इधर-उधर ताकने लगा ! जैसे भाग खड़े होने की प्रेरणा मन में उदय हुई हो।

रतन ने कोमल कंठ से बारीक स्वर मे कहा—'मैंने थोड़ी-सी अंगरेजी भैया से पढ़ी है। आप किस पुस्तक से आरम्भ करेंगे ?'

अजित का सँकोच कुछ कम हुआ। बोला—'मैं आपकी पुस्तकों को देखकर अभी बतलाता हूँ।' पुस्तकें उलट पुलटकर उसने उनमें से एक को आरम्भ के लिये चुन लिया। फिर पूर्वपठन के विषय मे थोड़ी देर बात हुई। इतने में ललितसेन आ गया। उसका चेहरा खिला हुआ था, और बर्ताव में रुखाई न थी। बोला—'आपने विद्यार्थी के पूर्व-पाठ को समझ लिया होगा। अभी बहुत कम अंगरेजी जानती है। परन्तु कुशाग्र है, शीघ्र पाठ्य-विषय पर अधिकार कर लेगी।'

'मेरी भी ऐसी ही कल्पना है।' अजित ने कहा।

ललित ने पूछा—'इसका गाना अभी आपने नहीं सुना ?'

अजित ने उत्तर दिया—'नही तो।' और सकोच से जरा सिकुड़ गया।

ललित ने रतन को उत्साहित करते हुये कहा—'हारमोनियम उठाकर अपनी एक चीज मास्टर साहब को सुनाओ रतन।'

रतन की आंखों की सरलता जाती रही, उसने संकोच के मारे गर्दन फेर ली, और फिर हँसने लगी। बोली—'मुझे तो कुछ नहीं आता ?'

ललित मानने वाला न था। बोला—'तब क्या खाक सीखोगी ? अध्यापक से लाज करना विद्या से परङ्मुख होना है।'

मालूम नहीं, इस आदेश से उसका संकोच कम हुआ या नही, परन्तु उठकर हारमोनियम ले आई, और पहले तो उस पर उँगलियां फेरती रही, फिर भाई के अनुरोध पर उसने भैरवी की एक हिन्दी-गजल सुनाई। थोड़ा-सा गाकर बाजा रख दिया, और बोली—'मास्टर साहब, आप बजाकर गाइये।'

'मैं हारमोनियम बजाना नहीं जानता।' अजितकुमार ने मन में कोसकर कहा—'आप स्वर दें तो गा सकता हूं।'

ललितसेन ने आश्चर्य के साथ कहा—'आप हारमोनियम बजाना नहीं जानते, तब आप सिखलायेंगे क्या?'

'गाना जानता हूँ। गाने वाला बाजा सहज ही सिखला सकता है।' अजित ने कलेजे को कड़ा करके उत्तर दिया।

ललितसेन बोला—'मेरी ऐसी राय नहीं है।'

'हारमोनियम मेरा प्राणान्त करेगा। अब यह कहते ही है कि ट्यूशनन बनेगी।' अजित ने सोचा।

ललितसेन ने कहा—'रतन थोड़ा बहुत बाजा बजा सकती है, जैसा कि आपने स्वयं देख लिया होगा। गाना जानने वाला बाजा न बजाकर भी शिष्य को सिखला सकता है, यह करामात अभी मुझे देखने को बाकी है। शायद ऐसा हो सकता हो, क्योंकि मैंने एक सितारिये को हारमोनियम सिखलाते हुये सुना है। परन्तु ट्यूशन की एक शर्त में संशोधन करना पड़ेगा।'

अजित ने सोचा कि वज्र टूटा, परन्तु आशा का तार बिलकुल खंडित न हुआ था। ललित की ओर प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखने लगा।

ललितसेन ने कहा—'आपको फीस पन्द्रह रुपये मिलेंगे।'

अजित ने समझा कि उद्धार हुआ। बोला—'मुझे स्वीकार है।' रतन दूसरी ओर देखने लगी।

ललितसेन ने कहा—'तब आप आज से अपना काम आरम्भ करिये। मैं यहाँ थोड़ी देर बैठकर आपका पाठ-क्रम देखूंगा।' फिर हँसकर बोला—'और अन्त में आपका गाना भी सुनूगा।'

अजित ने पाठन आरम्भ कर दिया, अन्त मे उसने जयदेव की एक अष्ट-पदी सुनाई। ललित ने धैर्य के साथ सुना। समाप्त होने पर कहा—'यह क्लिष्ट गायन रतन को न सिखाया जाय, और न आपको यहाँ इस तरह के गायन करने की कोई गरज है। आप तो सहज-सरल गान सिखलाया कीजिये।'

[४]

जैसे दिन निकलते देर नहीं लगती, उसी तरह रतन को अङ्गरेजी पढने और गाना सीखने में विलम्ब न हुआ। ललितसेन के मकान से बिलहरी में कुम्हरेड़ी के किनारे वाला अजितकुमार का मकान दूर पड़ता था। ट्यूशन के लिये छावनी आने-जाने मे जो समय लग जाता था, वह अजित को खटकने लगा। मासिक वृत्ति की कमी पर उसका ध्यान न जाता था, परन्तु मार्ग के समय और श्रम का ख्याल कर के वह छावनी में एक किराये के मकान में आ गया। अब शिक्षण का काम सिवा एक विमल आनन्द के और कुछ न रहा।

दो घण्टे के समय का कभी-कभी व्यतिक्रम होने लगा। कभी ढाई घण्टे, कभी तीन और कभी कभी साढे तीन। परन्तु उत्तरोत्तर हारमोनियम और गायन पर गुरू और शिष्य, दोनों की रुचि बढती गई। ललितसेन का पाठ के समय बैठे रहना धीरे-धीरे कम हो गया, और किसी-किसी दिन तो बिलकुल ही नही आता था।

एक दिन ललित अपनी बैठक में बैठा हुआ एक उलझन में पड़ा हुआ था। उलझन दार्शनिक कम थी, सांसारिक अधिक। एक किरायेदार ने कई महीने से किराया नहीं दिया था। रकम ज्यादा थी। उसका तबादला होने वाला था। रुपया किस तरह जल्दी वसूल हो, यही उसके मन का जटिल विषय था। भीतर के कमरे मे कण्ठ और हारमोनियम गूंज रहे थे। इस समय उसको दोनों बुरे लगे। भीतर जाकर कहा—'बाजा बन्द करो, बहुत बज गया। अब कोई पुस्तक पढ़ो। थोड़ी देर में फिर बजा लेना।'

रतन ने कुछ तिनक कर कहा—'मैं आसावरी की एक मनोहर ठुमरी सीख रही थी। तुमने तो बड़ा गड़बड़ किया भैया।'

ललित का असन्तोष रतन के सरल उलहने से कम हो गया। बोला—'अच्छा, थोड़ी देर में फिर उसको शुरू करना। अभी बाबू अजितकुमार अंग्रेजी पढ़ायेंगे।'

रतन हठ-पूर्वक बोली—'बहुत तो पढ ली। अभी हाल हारमोनियम ही रहने दो।'

अजितकुमार ने ललित की अरुचि देखकर रतन से कहा—'आज के लिये इतना ही बस है। अँग्रेजी पढ लो, कल फिर देखा जायगा।'

रतन ने मान लिया, और कुछ उदास होकर हारमोनियम बन्द कर दिया। पुस्तक हाथ मे ले ली।

ललित ने कहा—'थोड़ी देर किताब पढ़ने के बाद फिर हारमोनियम सीखना। मास्टर साहब, वह ठुमरी पूरी सिखलाकर जाइयेगा।'

अजितकुमार ने कोई एतराज नही किया। भविष्य की आशा ने रतन के खेद को हटा दिया, और वह आग्रह के साथ ग्रन्थ-पाठ में लग गई। ललितसेन बैठक में आ गया। बैठा ही था कि दो भले मानस आये, एक की अवस्था उतरने को थी, दूसरे की चढ़ने को। पहले व्यक्ति के चेहरे पर चिंताओं की रेखायें थीं, और व्याधियों का इतिहास अंकित था। सोती हुई सी आखों की तली में सहसा प्रवर्तन छिपा मालूम पड़ता था। दूसरे व्यक्ति की २३-२४ वर्ष की आयु होगी। सतेज नेत्र, दृढ़ ओष्ठ-सपुट और सुडौल आकृति। परन्तु कभी कभी आखे नीची होकर बायें-दायें देखने लगती थीं।

ललित ने इन लोगों से आने का कारण पूछा।

अधेड़ व्यक्ति ने कुछ कहने के लिये होठ पर पहले जीभ डाली, और सम्भला था कि युवक बोला—'इनका नाम बाबू शिवलाल है। मऊरानीपुर मे रहते है। कई मौजों मे आपकी जमींदारी है। कुछ बरसों से फौजदारी और दीवानी मुकद्दमे लड़ते-लड़ते ऋण हो गया है। साहूकार चाहते हैं कि या तो वह अपनी जमीदारी में से कुछ भाग उनको बेच दे, या रुपया इकट्ठा इसी समय दे दें। कुछ रुपया इसी समय देने का सवाल नहीं है। दो बरस से मैं आपकी जमींदारी का मुन्तजिम हूं। बहुत सम्भाला, परन्तु रुपया इकट्ठा नहीं हो पाता है। आप सजातीय हैं, इसलिये हम लोग आप के पास दौड़े आये हैं।'

'कितने रुपये की जरूरत है ?' ललितसेन ने पूछा।

'दस हजार से काम चल जायगा।' चतुर मैनेजर ने विश्वासपूर्वक उत्तर दिया।

ललितसेन कुछ सोचने लगा।

मैनेजर जानता था कि अधिक सोच-विचार ऐसे समय कामकाज का शत्रु होता है। बोला—'ब्याज आप जो कुछ उचित समझें, ले लें। क्योंकि हमारा रुपया आपके घर मे जायगा, तो हम समझेंगे, कि हमारे घर में ही रहा।'

ललित ने कहा—'आप साहबान का परिचय मुझको अभी तक नहीं मिला।'

मैनेजर बोला—'मैंने कहा न कि आपका नाम बाबू शिवलाल है। बड़े जमीदार हैं। मेरा नाम भुजबल है। पता लगने पर हम लोगों से आपकी कुछ दूर की रिश्तेदारी भी निकल आयेगी। मैं मऊ-सहानिया में ब्याहा था। घर के लोगो का देहान्त हो गया है। ससुराल में मेरी सास और एक साली है। शायद उस घर से आपका भी कोई दूर का नाता है।'

परिचय की यह लम्बी सूची ललित को बहुत पसन्द न आई। जमीदारी का पूरा हाल, आय इत्यादि और जमींदार तथा मैनेजर के व्यक्तित्व से परिचित होना चाहता था। बात न बढ़ाने की इच्छा से बोला—'मेरे पास इस समय इतना रुपया नहीं है।'

तब शिवलाल ने कहा—'हमारे बाबू साहब ने जो कुछ कहा है, वह सही है। आपको हम दो रुपया सैकड़ा मासिक ब्याज देने को तैयार हैं।'

'परन्तु मेरे पास दो पैसा रुपया माहवारी पर भी देने के लिये रुपया तैयार नही है।' ललितसैन ने कुछ तीक्ष्णता के साथ कहा—'बड़ा अचम्भा है कि इतनी बड़ी जमींदारी होते भी सब कहां विलीन हो गया।'

भुजबल थकने वाला व्यक्ति नही मालूम होता था। बोला—'आपको गुणियों के आदर की भी प्रवृत्ति बहुत व्यय में डाल चुकी है। शायद ही कोई गायक-वादक या कवि ऐसा हो, जो आपकी दानशीलता से उपकृत न हुआ हो।'

'ओह! मैं इन पिशाचो को पास नहीं फटकने देता।' ललित ने अभिमान के साथ कहा—'कवि और भिक्षुक दो समानार्थवाची शब्द हैं। संसार एक दिन दोनों को ग्रस जायगा।'

इतने मे हारमोनियम पर कठ की ध्वनि, कभी दो की और कभी एक की सुनाई पड़ने लगी। मीठा स्वर सभी को अच्छा लगता है। शिवलाल के कान तो बरसों से इसी मे ओत-प्रोत हो रहे थे। बहुत रोक-थाम करने पर भी जीभ पर काबू न रख सका। बोला—'कैसा अच्छा कठ है। बिलकुल स्वर मे डूबा हुआ।'

भुजबल को भीतर से आने वाले मधुर गान के साथ ललित की अवहेलना बेमेल मालूम पड़ी। परन्तु उसने कोई मत प्रकट नही किया। ललित को शिवलाल की अनाधिकार चर्चा खटकी। परन्तु हाल में ही जो अवहेलना प्रकट कर चुका था, इसलिये कुछ कहने के लिये विवश हुआ। रुखाई के साथ बोला—'मेरी बहिन को संगीत से प्रेम है। उसको एक मास्टर अगरेजी और गायन-वादन सिखलाते हैं। वे ही यह सब शोर कर रहे हैं।'

भुजबल ने प्रतिवाद करते हुये कहा—'शोर नही है साहब, बडी अच्छी विद्या है।'

शिवलाल ने और रंग देकर कहा—'कृष्ण भगवान् ने स्वयं इसको अपनाया था। इसके बिना तो जिंदगी का लुत्फ नही।'

ललित बोला—'होगा। मुझे इन बातों से कुछ मतलब नहीं, और न मुझे इस विषय की आलोचना सुनने का समय है, मेरे पास रुपया नही हैं, यह मैं कह चुका हूं। और कोई काम है?' शिवलाल इस

वाक्य का अर्थ समझ गया। सोती हुई आंखें सजग-सी हो गईं, परन्तु चुप रहा।

भुजबल ने भी अवगत कर लिया कि समय अधिक वार्तालाप के लिये अनुकूल नहीं है नम्रता-पूर्वक बोला—'और कुछ काम नही है। हम लोग फिर कभी उपस्थित होगे। यदि तब तक हमको रुपया और कही से न मिला और आपको सुभीता हो गया, तो उस समय तय कर लेंगे। आपका बहुत वक्त खराब किया, माफ कीजिएगा।' इसके बाद दोनों वहाँ से चले गये। ललित ने मन में कहा—'एक गँवार है, दूसरा कुछ मार्जित रुचि का मनुष्य है।'

बाहर निकलकर शिवलाल भुजबल से मुक्त-कंठ होकर बोला—'बड़ा घमंडी है। बात-बात में ऐंठ टपकती है। यह बहन को क्या नाचने-गाने मे निपुण बना रहा है, जो मास्टर रखकर गलेबाजी सिखलाता है?'

भुजबल ने तेज निगाह से दोनों कधो की ओर आखें घुमाकर और सब दिशाओं को सुरक्षित देखकर कहा—'चुप रहिये, चुप रहिये। इसी को ठीक करके रुपया लेना होगा। और कही तो मिलता ही नहीं है।'

'मैं कभी यहां न आऊँगा।' शिवलाल ने दृढता के साथ अपना निश्चय प्रकट किया—'दूसरो को दो कौडी का और अपने को करोड़ का आदमी समझता है! तुम्हें आना हो, तो भले ही चले आना।'

भुजबल ने कहा—'मैं आपको यहाँ न लाऊँगा। अकेले ही जो करना होगा, करूँगा।'

'मधुर कंठवाली किस तरह की स्त्री है; कभी देखने को मिल जाय, तो आंखें ठंडी करूँ।'

इतने मे भुजबल की दृष्टि जरा आगे जाने वाले राहगीर के सड़क पर छोड़े हुये एक रुपये पर पड़ी। रुपया गिरने की आवाज भुजबल ने सुन ली थी, परन्तु वह राहगीर अपने किसी ध्यान में ऐसा मग्न था कि अपनी कमर मे से खिसककर गिरने-वाले रुपये की खनखनाहट न सुन

सका। रुपये को गिरा देखकर भुजबल ने अपनी चाल जरा धीमी कर दी, राहगीर बढ़ा चला गया !

जहां रुपया पड़ा था, भुजबल उस स्थान पर जाकर ठिठक गया। चारों ओर ताककर उसने वह रुपया उठा लिया।

शिवलाल यह विचित्र व्यापार देखकर बोला—'क्या कर रहे हो ? कुछ समझ मे नही आता।'

भुजबल ने बिना किसी संकोच के उत्तर दिया—'अपना रुपया उठाने के लिये खड़ा हो रहा था।' और जेब में उस रुपये को मजे में डाल लिया।

'तुम्हारा रुपया !' शिवलाल ने आश्चर्य के साथ कहा—'वह तो उस राहगीर का था, बुलाकर दे दो।'

'वह तो दूर निकल गया।' भुजबल बोला—'सरकारी सड़क पर पड़ी हुई सम्पत्ति पर किसी का इजारा नहीं होता। जिसको मिल जाय, उसी की होती है।'

'क्या ऐसा कानून है ?' शिवलाल ने पूछा।

'जी हाँ, ऐसा ही है।' भुजबल ने उत्तर दिया।

शिवलाल बोला—'जब तुम कहते हो, तो ऐसा ही होगा, क्योंकि अंगरेजी कानून में बड़ी-बड़ी अजीब बातें भरी पड़ी हैं !'

भुजबल वहां से शीघ्र चला गया। उसको विश्वास न था कि सड़क पर और आने-जाने वाले लोग उसके साथ कानून की इस व्याख्या पर सहमत होंगे।

[५]

भुजबल उन लोगों में से न था, जो घास को थोड़ी देर भी अपने पैरों तले उगने देते हों। उसने ललितसेन की बैठक से मास्टर के हारमोनियम और किसी बारीक गले वाली के स्वर को सुना था। मास्टर

बाहर का है, और स्त्री भीतर की। अवश्य ही मास्टर कोई ऐसा व्यक्ति है, जिस पर ललित का विश्वास है। जब विश्वास है, तब उसकी चलती भी खूब होगी। तब उसकी खोज करनी चाहिये। खूब सोचने विचारने के बाद भुजबल इस नतीजे पर पहुंचा।

नयागांव छावनी कोई बडा नगर नहीं है। चौडे-चोड़े खुले हुये मार्ग लगभग सपूर्ण बस्ती मे हैं। गलिया बहुत ही कम हैं, और रहने वालों का पता आसानी से लगाया जा सकता है।

भुजबल ने मास्टर अजितकुमार का पता लगा लिया, और उसके विषय मे पूछ-ताछ भी कर ली।

जब उसके पास भुजबल पहुँचा, वह कुछ पढ रहा था। आवभगत के बाद भुजबल ने अन्दाजा लगाना शुरू किया कि किस तरह आदमी से काम निकालना है।

बोला—'आप क्या बहुत दिनों से यहां हैं ?'

'नहीं तो, दो या ढाई महीने हुये हैं। आपने कैसे कष्ट किया ?'

'दर्शनों की लालसा से चला आया हूँ। हमारी जाति में बहुत कम ग्रेजुएट हैं। जब मैंने आपकी विद्वत्ता की तारीफ सुनी, मिलने की प्रबल इच्छा हो उठी ?'

'आपका निवास स्थान कहां है ?'

'मैं मऊरानीपुर के पास के एक गांव लहचूरा का रहने वाला हूँ। शायद हमारी आपकी कोई रिस्तेदारी भी होगी। वहां मऊ सहानियां में मेरी ससुराल है। आपका ब्याह हो गया है ?'

सजातियों को इस तरह के वार्तालाप का हक-सा होता है, इसलिये अजितकुमार को अन्तिम प्रश्न पर आश्चर्य नहीं हुआ। भुजबल की सुन्दर आकृति आकर्षक थी, और वाणी मिठास भरी। केवल उसकी आँख की कोर की परिवर्तनशीलता उसके जी मे भली नहीं लगी। परन्तु मन में कोई विरुद्ध भाव खड़ा नहीं हुआ।

अजितकुमार ने उत्तर दिया—'हर्ष की बात है कि एक सजातीय सज्जन से भेंट हो गई। आपका आना यहाँ कैसे हुआ ?'

भुजबल ने सोचा— अभी सङ्कटापन्न भूमि पर पैर नही रखना चाहिये। बोला—'मऊ-सहानिया मे ससुराल है। वही के लिये आया था। एक भद्र पुरुष, जो मऊरानीपुर की तरफ के बहुत बड़े जमीदार हैं, और अपनी जाति ही के हैं, यहाँ आये हुये हैं, उनका कुछ काम था। उनके कारण मैं भी रुक गया। अभी यही बना हूं। जब तक रहूंगा, आप से मिलने का सौभाग्य मिलता रहेगा।'

'आपसे मिलकर बड़ा हर्ष हुआ। आपको साहित्य से कुछ प्रेम है ?'

'जी हाँ, साहित्य और सङ्गीत, दोनो से। मैने एन्ट्रेस तक अङ्गरेजी की शिक्षा पाई है, और हिन्दी मातृभाषा ही ठहरी, सो उसके बहुत से ग्रन्थ नजर से गुजरे है।'

'हिन्दी मे आपने किस विषय का अनुशीलन अधिक किया है ?'

'काव्य का अधिक किया है। जिसे खड़ी बोली कहते है, उसकी कविता मुझे पसन्द नही है। क्या करूँ, रुचि के ऊपर वश नही चलता। उसमें ब्रजभाषा की ललक या चटक नाममात्र को नहीं है।'

'मुझे भी खड़ी बोली की कविता से बहुत प्रेम नही है। शायद उसका कारण यह है कि मैंने सिवा कुछ पत्र-पत्रिकाओ के उस बोली के ग्रन्थ नही पढ़े।'

'अजी साहब, उसे किसी से सुनिये, तो ऐसा मालूम पड़ता है, मानो कङ्कड़ बरस रहा हो।'

'ब्रजभाषा की कविता मे आपको कौन कवि सबसे अधिक हृदयग्राही जान पड़ता है ?'

'कवि तो ब्रजभाषा के मेरे लिये सभी आराध्य हैं। सभी को थोड़ा बहुत खूब पढ़ा है। परन्तु विषय नायिका भेद ब्रजभाषा में खूब कहा गया है। गजब कर दिया है।'

अजित जरा सोचने लगा।

भुजबल ने कहा—'बिहारी और पद्माकर का लालित्य मुझे बहुत चुभता है।'

'मुझे तुलसी और सूर बहुत मनमोहक जान पड़ते हैं।'

'वे तो महात्मा हैं।' भुजबल ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा—'कवियों की श्रेणी मे नही है, ऋषि हैं।'

आत्मसन्तोष की हँसी हँसकर अजित बोला—'सो तो आप ठीक ही कहते हैं।'

विषय को रङ्ग देने की गरज से भुजबल ने कहा—'बेचारी खड़ी बोली में यह सब कहाँ से आ सकता है ? ब्रजभाषा की कविता में एक-एक छन्द के सौ-सौ अर्थ लगा लीजिये। यह पांडित्य खड़ी बोली में कहां से भरा जायगा ? ऐसा सम्भव होता, तो महात्मा तुलसीदास जी खड़ी बोली मे ही रामायण की रचना न करते ?'

'आपने कोई धर्म ग्रन्थ पढे हैं ?' अजित ने पूछा।

'जी हाँ !' भुजबल ने तुरन्त उत्तर दिया—'धर्म तो अपना प्राण ही है। बिना धर्म-ग्रन्थ पढे तो जीवन का निर्वाह ही नही हो सकता। इस असार संसार मे भवसागर से पार उतारने वाले तो धर्म ग्रन्थ ही हैं। मैंने रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत इत्यादि ग्रन्थ पढ़े हैं। इन सब का सार है—परोपकार करो, पराये के लिये अपना प्राण तक छोड़ दो।'

अजित ने कहा—'आप बिलकुल ठीक कहते हैं। हिन्दू धर्म का सम्वाद संसार के लिये यही है—किसी को सताओ मत, त्याग का तप करो, और किसी के विश्वास का निरादर मत करो।'

इस विषय मे भुजबल का मन लग रहा था परन्तु तो भी उसे एक जमुहाई आने को हुई। उसे उसने तुरन्त रोक लिया।

बोला—'धर्म का विषय बहुत गहरा है हमारे यहां के ऋषियों ने जो रत्न खोज निकाले हैं, उनकी आभा अभी तक ज्यों की त्यों बनी हुई है।'

अजित ने कहा—'इस ऋषि मान्य देश में विचारक कर्मकर्ता भी हुये है। वे लोग जीवन मे अपने सिद्धांतों का कार्य रूप मे प्रतिपादन करते थे और बडे बडे राजाओं की राजनीति पर उनके आचार-व्यवहार का उनके सिद्धातों से बढकर अंकुश रहता था।'

अब की बार भुजबल को जोर की जमुहाई आने को हुई। बड़ी कठिनाई से उसे दबा पाया। आलस्य का कारण शायद अच्छी तरह न समझकर भुजबल ने प्रसग बदला। कहा—'आपको तो संगीत-शास्त्र पर भी बड़ा काबू है। एकाध चीज होने दीजिये। यदि मेरी ढिठाई माफ की जाय, तो।'

वैसे शायद यह विचित्र सी प्रार्थना अजितकुमार को खटकती, परन्तु बड़े विनीत और आकर्षक ढङ्ग से की गई थी, इसलिये इनकार करना असम्भव मालूम हुआ। बहुत दिनों बाद एक सजातीय नौजवान के साथ बातचीत करने का अवसर प्राप्त हुआ था। घड़ी भर के लिये नएगांव का एकान्त जीवन—अध्यापन कार्य के समय को छोड़कर—भिन्नता के रसास्वादन से उत्तेजित हो गया।

'आप भी तो गाते होगे?' अजित ने पूछा।

'जी हां, यों ही कुछ टिर पिर।' भुजबल ने उत्तर दिया।

इस पर अजित हँसा। एक कोने मे तबूरा रक्खा था। उठाकर मिलाने लगा। भुजबल ने भयभीत-जैसा भाव बनाकर कहा—'तबूरा पर पक्का गाना गाने की शक्ति तो मुझ में नही है। ठुमरी, गजल-वजल कुछ गा लेता हूँ। सो उसे भी आपके सामने कहते डर मालूम होता है।'

'गजल भी तो गाना है, बहुत लोग गाते हैं।' अजित ने हँसकर कहा—'गाइये-गाइये। आपका गला बहुत सुरीला मालूम होता है।'

भुजबल ने गजल खूब मेहनत के साथ गाई। ध्रुवपद और ख्याल की गायकी पसंद करने वाले को गजल कूडा-सी मालूम पड़ती है, परन्तु भुजबल का गला दानेदार था। गजल के विषय से अजित के मन में जो घिन पैदा हुई थी, उसे भुजबल के सुरीले गले ने हटा दिया। भुजबल ने मौका देखकर कहा—'आपने जगत-सागर की सैर की है?'

'जी हाँ, कई मर्तबा।' अजितकुमार ने उत्तर दिया—'उसकी विशालता किसी सुषुप्त महत्ता का स्मरण दिलाती है। सुना है, मऊ सहानिया के पीछे एक झील और है।'

'आपने उसको अभी तक नही देखा ?'

भुजबल ने आश्चर्य के साथ कहा—'घूंघटवाली सुन्दरी की तरह पहाड़ो के बीच मे वह विराजमान है। महाराज छत्रसाल की छतरी के पीछे। देखने योग्य है। एक दिन चलिये। जाकर पछताना न पड़ेगा।'

अजित के जी पर भुजबल के आग्रह की छाप पड़ गई। बोला—'कल ट्यूशन से छुट्टी मिलेगी। यदि आपको अवकाश हो, तो चलिये।'

भुजबल ने उत्साह के साथ कहा—'अवश्य। आपकी साहित्य-चर्चा से मुझे विशेष लाभ होगा। यदि आपको कोई खास एतराज न हो, तो एक हारमोनियम लिये चलूं। कल दिन-भर के लिये आनन्द मङ्गल का सामान हो जायगा।'

अजित बोला—'लिये चलिये। हारमोनियम से कोई खास नफरत नहीं है। आपकी सुरीली गजल ठुमरी तो उसी पर सोहेगी, वैसे भी मुझे तो एक जगह सँगीत की शिक्षा इसी बाजे पर देनी पड़ती है।'

भुजबल को अटकल लगाने की जरूरत नहीं पड़ी। समझ गया, तो भी उसने पूछा—'किस जगह शिक्षा देनी पड़ती है ?'

आपस के व्यवहार का संकोच कुछ कम हो गया था, इसलिये अजित ने सरलता के साथ कहा—'यहाँ एक सुरुचि सम्पन्न रईस हैं। नाम बाबू ललितसेन है। अपने सजातीय है। उसकी बहन को अंङ्गरेजी के साथ-साथ सङ्गीत की भी शिक्षा देता हूँ।'

भुजबल ने विषय के एक अंश को टालते हुये कहा—'सुना है, बाबू ललितसेन के पास जैसा द्रव्य है, वैसी ही विद्वत्ता भी।'

'हाँ, सरस्वती और लक्ष्मी का ऐसा संयोग मैंने बहुत कम देखा है। उनका अधिकांश समय पुस्तकों के अवलोकन में जाता है। बहुत मननशील और चरित्रवान् हैं, दर्शन-शास्त्र पर उनकी खास रुचि है।'—

भुजबल ने माथा सिकोड़कर कहा—'दर्शन-शास्त्र तो बड़ा गहन और दुर्बोध विषय है। व्यवहार कैसे हैं?'

'बहुत स्वच्छ।' अजित ने स्पष्टता के साथ कहा—'परन्तु उन्हें हिन्दू-दर्शन पर कम श्रद्धा है।'

भुजबल ने आख का कोना तिरछा करके कहा—'तो क्या जाति-पांति को नही मानते?'

अजित बोला—'जाति-पांति तो मानते है, परन्तु शास्त्रीय सम्मति उनकी अनोखी है। वह योरपियन दर्शन के अनुयायी हैं।'

भुजबल ने हिम्मत करके कहा—'योरपियन दर्शन तो बड़ा लचर सुना गया है।'

'जी नहीं।' अजित ने कहा—'बहुत गम्भीर और मनोहर है।'

[६]

सप्ताह मे अजितकुमार को अध्यापन-कार्य से एक दिवस का विश्राम मिला करता था। जिस दिन भुजबल के साथ उसकी बातचीत मऊ-सहानिया जाने के लिये पक्की हुई, उस दिन शनिवार था। नये लोगों के साथ नया स्थान देखने के आनन्द ने उसे जरा उद्विग्न कर दिया था। दूसरे दिन की अगवानी के लिये बेचैन तो नही हो रहा था, परन्तु मन में गुदगुदी काफी थी। उसका संध्या-काल नित्य वायु-सेवन में बीता करता था, परन्तु इस विचार से कि दूसरे दिन वायु-सेवन के सिवा और कुछ करना ही नहीं है, उसने गांव के बाहर जाने को स्थगित कर दिया। संध्या समय ललितसेन के यहां बिताने का निश्चय किया।

ठंठ पड़ने लगी थी। भोजन करने के पश्चात् अलवाइन ओढ़कर ललित के मकान पर पहुंचा। ललित अपनी बैठक में टहल रहा था।

कुछ एकांत-सेवियों को साथियों की अनिच्छा-सी रहा करती हैं, परन्तु भोजन के उपरांत एकांत-सेवी भी एकाध व्यक्ति के सहवास के विरुद्ध नहीं होते। अजित का आना उसे न खटका।

दोनों बैठ गये। बातचीत होने लगी। ललित ने कहा—'तो कल आप दिन-भर घूमेंगे ? मैंने भी कई बार वे स्थान देखे हैं। अब तो जी भर गया, नही तो मैं भी चलता।'

अजित आग्रह के साथ बोला—'एक बार फिर सही। अच्छी चीज को बार-बार देखने से उसका गुण कम नही होता।'

'यह ठीक है। परन्तु मन ऊब उठता है। इसके सिवा मुझे कल एक आवश्यक काम भी है।' ललितसेन ने कहा—'आप अकेले ही जा रहे हैं, या कोई साथ ?'

अजित ने उत्तर दिया—'भुजबल-नामक एक सज्जन मऊ-रानीपुर की तरफ के यहां आये हुये है। सुरुचि-सम्पन्न पुरुष मालूम होते हैं। उनकी ससुराल मऊ-सहानिया मे है। उन्हीं के आमंत्रण पर जा रहा हूं।'

ललित ने कहा—'यह नाम मैंने भी सुना है। शायद एक कार्य-वश हाल ही में मेरे पास एक सड़े-गले रईस के साथ आये थे।'

अजित ने हँसकर कहा—'आपके न्याय के अनुसार इस तरह का आदमी संसार में न रहने योग्य है, और न बच ही सकता है।'

'यही नहीं।' ललितसेन ने उत्साह के साथ कहा—'किन्तु ऐसे आदमी को संसार में अधिक दिनों बचने ही नहीं देना चाहिये। फोड़े-फुन्सी यदि शरीर में अधिक दिनों घर कर जायँ, तो सारा शरीर सड़ जायगा।'

अजितकुमार ने पूछा—'तो क्या ऐसे लोगों को मार डालना या कहीं खपा देना चाहिये।'

ललितसेन ने ठंडक के साथ जवाब दिया—'यदि एक व्यक्ति को दूसरा अपनी इच्छा या सम्पत्ति के पैमाने पर तौलकर मारना-काटना शुरू कर देगा तो समाज दूसरी तरह के अयोग्य व्यक्तियों से भरने लगेगा। मेरी राय में कानून ऐसा बनना चाहिये, जिसका प्रभाव दुर्बल-निर्बल, सड़े-गले व्यक्तियों का सम्पूर्ण नाश हो। कानून समष्टि-रूप में

समाज के एक बहुत बडे भाग की सम्पत्ति का सार है। समाज का बनाया हुआ ऐसा विधान किसी एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों की मनमानी का छुरा नही बन पायेगा, और संसार शीघ्र गन्दगी से साफ हो जायगा।'

कुछ महीनों की संगति से अजित जरा ढीठ हो गया था। इसलिये उसने एक प्रश्न और किया—'ऐसी दशा मे अस्पतालों, अनाथालयों, वनिताश्रमों और इसी तरह की और संस्थाओं की कोई आवश्यकता नही रहेगी।'

ललित ने कहा—'इस विषय में मेरी सम्मति शंका-शून्य है। संसार को योग्य व्यक्तियों के रहने के योग्य बनाने के लिये और समाज की उत्तरोत्तर उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि इस तरह की संस्थायें जितनी कम हों, उतना ही अच्छा है। इनके बिलकुल अभाव के पक्ष में नही हूं। क्योकि मनुष्य का सम्पूर्ण नाश तब तक नहीं करना चाहिये, जब तक उसमें उपादेय होने की योग्यता बाकी रहे। इस विषय के विशेषज्ञों की सलाह से कानून बनाकर योग्यता के पैमाने स्थिर कर लिये जाने चाहिये। जो उन पैमानों की तौल से गिर जाय, चाहे वह अनाथ हो, रोगी हो या स्त्री हो, तुरन्त कानून द्वारा निर्धारित साधन से खत्म कर दिया जाय। इन संस्थाओं से कष्ट की वृद्धि हुई है, समाज की निर्बलता कम नही हुई है।'

अजितकुमार की आत्मा किसी जोर-शोर के प्रतिवाद के लिये चंचल हो उठी।

बोला—'इस तरह के दर्शन-शास्त्र के व्यापार से पृथ्वी पर पहले किसी एक देश की सत्ता सर्वोपरि हो जायगी, और फिर एक योग्यतम व्यक्ति की। जो लोग किसी प्रकार बचे रहेगे, वे उसी सत्ता के लुंज-पुंज भिखारी और दास बनकर रहेंगे। इस दर्शन में कोई आनन्द नहीं है। बड़ा क्रूर और कर्कश है।'

ललितसेन उत्तेजित होकर बोला—'इस सिद्धांत को गाली दे देने ही से युक्ति का खातमा नहीं होता। प्रकृति के नियम अखंडनीय हैं,

अमिट हैं, बिना किसी विरोध के दिन-रात एक गति से चलने वाले हैं। हमने उन नियमों के विरुद्ध स्थिति मे आनन्द का आरोप कर रक्खा है, इसलिये सच्ची बात कान को खटकती है।'

अजितकुमार ने भीतर की आह को दबाकर मुस्कराहट के साथ कहा—'इस सिद्धान्त के साथ जाति-पाँति के भेद का मेल कहाँ खाता है ?'

ललितसेन ने इस प्रच्छन्न व्यंग्य की परवा न करके गम्भीरता के साथ कहा—'युक्ति से अयुक्ति पर फिसल पड़ना इसी को कहते है। 'योग्यतम के अवशेष' के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्यों का वर्गीकरण स्वाभाविक है। इन सब जातियों या जातिवर्गों मे जो योग्यतम होगी, दूसरों को मिटाकर अपना अस्तित्व कायम करेगी। जाति-पाँति के भेद को मानने में मैं उसी प्राकृतिक नियम का आदर करता हूं। जो काले, गोरे या पीले के भेद से वर्गीकरण करते हैं, वे मूर्ख और अन्धे है। रंग का भेद अहंकार और मूर्खता से उत्पन्न हुआ है, जाति का भेद संसार की सहज स्वाभाविक प्रगति से। और, अन्त में यही सिद्धान्त विजयी भी होगा।'

अजित ने दृढ़ता के साथ कहा—'यह सिद्धान्त समाज को बर्बरता की चरम सीमा पर पहुचाने वाला सिद्ध होगा। हिन्दुओं का 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्' का सिद्धान्त ही अन्त मे संसार को बचायेगा।'

ललित ने भौहे सिकोड़ी। फिर व्यंग्य की हँसी हँसकर बोला—'यह कवियों का-सा कूड़ावाद संसार को बचायेगा !' फिर बोला—'जाति-भेद तो हिन्दुओं का ही सिद्धान्त है जनाब ?'

इतने में वहाँ रतन आ गई। बोली—'आज मास्टर साहब कैसे आये ?' बहस की गर्मी शान्त हो गई।

अजित ने कहा—'मै कल मऊ-सहानिया सैर-सपाटे के लिये जाऊँगा। भाई साहब को बतलाने आया था।'

ललित की तर्क बुद्धि भी शांत हो गई थी। बोला—'रतन शायद आपसे हारमोनियम पर कुछ गाना सुनना चाहती है।' दर्शन-शास्त्र की

कठोर बहस के बाद अजित ने गायन का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकृत किया, और दरबारी कान्हड़े में कबीर साहब का एक पद खूब तबियत के साथ गाकर सुनाया। एक पंक्ति यह है—

'घूंघट के पट खोल री, तोहे राम मिलेंगे।'

गाते-गाते अजितकुमार पुलकित हो गया, और अंत में ऐसा मग्न हो गया कि आंखों मे आँसू आ गये।

रतन भी प्रभाव से अपने को न बचा सकी।

ललितसेन स्तंभित होकर रह गया। जब गाना समाप्त हुआ, बोला— 'राग-रागिनियों के रहस्य न तो मुझे मालूम हैं, और न मेरी समझ मे आते है परन्तु आपका आज का गाना विचित्र मोह-पूर्ण मालूम पड़ा है। एक क्षण ऐसा जान पड़ा, मानो हवाई जहाज में बैठकर मन कही उड़ रहा हो।'

रतन ने कहा—'मुझे तो ऐसा भान हुआ, जैसे कहीं कुछ उजाला-सा हो गया।'

पूर्व इसके कि अजितकुमार नम्रता-पूर्ण शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापन करे, ललित ने कहा—'क्यों साहब, मुझे भी गाना आ सकता है?'

अजित ने उत्तर दिया—'अवश्य जरा कोशिश करनी पडेगी।'

'करूँगा', ललित ने निश्चय प्रकट किया। गाने के पश्चात् अजित को भाषित हो रहा था, जैसे हृदय का कोई बडा बोझ उतर गया हो। जब चलने लगा, उसने देखा कि रतन की आँखों में एक आग्रह-सा था—कुछ उत्कंठा-सी, उत्सुकता सी और कुछ···लालसा-सी।

(७)

बड़े सवेरे एक ताँगे से भुजबल और अजितकुमार मऊ-सहानिया गये। नयेगाँव से दो कोस है। पहुंचने में देर न लगी।

फाँटा और गोलावीर-नामक पहाड़ियों का जहाँ से सिलसिला शुरू हुआ है, वहीं पर मऊ-सहानिया स्थित है। छोटी-सी बस्ती है। खँडहलों

भुजबल से बोला—'प्रकृति त्याग को पुष्ट करती है, और निर्बलों की रक्षा के लिये सबलों के पास सूर्य द्वारा शक्ति भेजती है।'

भुजबल इस समय कुछ कम शास्त्रीय विषय मे उलझ रहा था, इसलिये सुनकर दङ्ग रह गया। बोला—'जी हाँ, ठीक है। मैं कुछ समझा नहीं।' ताँगा दूर निकल जाने वाला था। उसे रोककर अजित उतर पड़ा। भुजबल ने कहा—'अभी मऊ गाँव नही आया है। वहाँ तो नयागाँव है।'

'पहले इस गाय को सङ्कट-स्थान से हटा दूँ, तब मऊ चलूँगा।' अजित ने कहा—'आप ठहरिये, मैं अभी आता हूं।'

भुजबल बोला—'वहाँ तो कोई सङ्कट नही है।'

अजित ने कहा—'उस पहाड़ी के मध्य-स्थान में जो खोहें दिखलाई पड़ती हैं, अवश्य कोई तेंदुआ या चीता होगा। इस गाय को गाँव की ओर भगा देने या और गायों मे कर आने के बाद अभी लौटता हूं।' और डंडा लेकर अजितकुमार पहाड़ी के नीचे चला गया।

भुजबल ने मन में कहा—कुछ सनकी-सा जान पड़ता है। किस-किस गाय को तेंदुये से बचायेगा? यहाँ तो तेंदुओं का उपद्रव नित्य की साधारण बात है। जान पडता है, एक दिन पिंजरा पोल खोलेगा। फिर सोचा—अवश्य ही इसके द्वारा हमारा काम भी निकल जायगा। जरा सी हिकमत में पिघलेगा।

गाय को वहाँ से गाँव की ओर भगाकर अजित थोड़ी देर में लौट आया।

भुजबल ने कहा—'आप बड़े दयावान् हैं। ऐसे ही लोगों के बूते संसार टिका हुआ है।'

अजित ने जरा लजाकर कहा—'यह तो एक साधारण-सा कर्तव्य है। दुष्टों का दमन और दुर्बलों की रक्षा प्रकृति के सौंदर्य का आदेश है।'

किसी लम्बे व्याख्यान के ख्याल से डरकर बिना कुछ टोका-टाकी या टीका-टिप्पणी किये हुये भुजबल चुपचाप अजित को लिये हुये मऊ-सहानिया पहुंचा।

(८)

मऊ पहुँचने पर अजित ने भुजबल से ठहरने के स्थान के विषय में पूछा। उसने अपनी ससुराल के सामने तांगा ठहराकर कहा—'इसी जगह। यहा मैं ब्याहा था।'

'था ?' अजित ने धीरे से कहा।

भुजबल ने आह भरकर कहा—'जी हाँ। मेरे घर के लोगों का देहांत हो गया।'

भुजबल की ससुराल में उसकी सास थी और साली—और कोई न था।

घर एक ओर फूटा पड़ा था। पौर समूची थी। आंगन लम्बा-चौड़ा और भीतर दो घर थे। एक कोने में नाबदान था, और दूसरी ओर मिट्टी के घड़े और एक तावे का कलसा रक्खा था। पौर से आंगन और भीतर का सब सामान दिखलाई पड़ता था। घर मे दो भैंसें थी। उनके घी-दूध और दो-तीन बीघा मौरूसी जोत से माँ-बेटी की गुजर चलती थी।

भैंसें दुही जा चुकी थीं। सास चक्की पीस रही थी, और साली भैंसों का गोबर उठाकर कण्डे पाथने की चिन्ता में थी।

भुजबल की साली का नाम पूर्णिमा था। वह उसकी मृत पत्नी से छोटी थी। १३-१४ वर्ष की हो जाने पर भी दरिद्रता के कारण अभी तक ब्याह न हुआ था। घर पर थोड़ा-सा पढ़-लिख पाई थी। काम-काज के मारे वह अब बन्द हो गया था। लोग उसको पूना कहकर पुकारते थे।

पूना को कंडे पाथते देखकर भुजबल के आत्म सम्मान को, अजित के साथ होने के कारण, धक्का लगा। परन्तु पूना अपने बहनोई को पहचानते ही तुरन्त कंडे छोड़कर भीतर भाग गई, और इस तरह उसने भुजबल को भीषण आत्मग्लानि से बचा लिया।

असबाब और हारमोनियम लेकर भुजबल ने पौर में रख दिया। दोनों पौर के चबूतरे पर जा बैठे। पूना से समाचार पाकर उसकी सास

ने चक्की बन्द कर दी। पूना हाथ धोकर और सिर को खूब ढककर आगन के द्वार के पास, भीत से चिपककर, खड़ी हो गई। बोली—'जीजाजू, अच्छी तरह से हो ?'

भुजबल ने उत्तर दिया—'हां। तुम लोग मजे में हो ?'

पूना ने कहा—'आपके दर्शन पाने से।'

भुजबल बोला—'भीतर कहो कि जल्दी खाना बनावें। छावनी से मास्टर साहब आये है। बडे आदमी है।'

अजित ने घबराकर कहा—'ऐसा मत कहिये। मैं तो मामूली आदमी हूं। फिर जाति में कोई बडा या छोटा नही होता।'

पूना ने अजित को देखने के लिये सिर निकाला। अजित ने भी देख लिया।

हिरनी के बच्चे सरीखी बडी-बडी आंखें, प्रभातकालीन गुलाब जैसा मुख और भोली अल्हड चितवन।

पूना और उसकी मा तुरन्त स्नान करके खाना बनाने लगीं। तब तक अजित और भुजबल जगतसागर–ताल पर स्नान करने गये।

छावनी से एक बाबू-वेश वाले का मऊ में आना कोई नई घटना न थी, फिर भी बहुत से लोग चकित-सी दृष्टि से अजित की ओर देखते थे। तांगे मे आया था, इसलिये उन्हे विशेष कौतूहल था।

जगतसागर पर पहुंचकर भुजबल ने कहा—'छत्रपुर के महाराज जगतसिंह ने इस तालाब को सुधरवाया था, इसलिये उन्ही के नाम पर जगतसागर कहलाता है।'

इस तालाब के किनारे और सीढ़ियों पर किसी प्राचीन मन्दिर के भग्नावशेष उखाड़-पछाड़कर इधर-उधर जड़ दिये गये थे। पुरानी मूर्तियां टूटी-फूटी फैली हुई पड़ी थी। उत्तर की ओर एक प्राचीन विशाल मन्दिर का धुस्स बिखरा हुआ किसी भग्न-गौरव की याद दिला रहा था। शायद तालाब की मरम्मत में इस मन्दिर के पजर से मदद ली गई थी। सीढ़ियों में एकाध शिला पर छोटा–मोटा लेख भी था, परन्तु तालाब के सुधारने

वाले धनी कारीगरों ने इन शिलालेखों के समय और स्थान की, मालूम होता है, कुछ परवा न की थी।

अजितकुमार ने कहा—'महाराज जगतसिंह के मरम्मत कराने के पहले भी तो यह विशाल तालाब रहा होगा। उस समय इसका क्या नाम था? इसका प्राचीन नाम क्यों बदल डाला गया?'

पुरातत्त्व में बहुत दखल न रखने के कारण भुजबल ने कोई उत्तर नही दिया। परन्तु पास खडे हुये एक मऊ निवासी ने कहा—'पहले चाहे जो कुछ नाम रहा हो, परन्तु जब से महाराज जगतसिंह ने इसकी मरम्मत करा दी, तब से हम लोग जगतसागर ही कहते हैं। इतना जानते है कि यह ताल चन्देलों के समय का है।'

इस अन्तिम व्यवस्था पर फिर किसी को कहने के लिये कुछ गुंजाइश न रही।

भुजबल और अजित नहा-धोकर लौट आये। खाना अभी तैयार नही हुआ था। प्रभात-समीर ने भूख जाग्रत कर दी थी। घूमने के लिये दिन-भर की धूप अनुकूल न थी, इसलिये इस समय कहीं न जाकर अजित ने हारमोनियम उठा लिया।

भुजबल ने कहा—'जरूर-जरूर, आपका एक अलाप हो जाय।'

अजित बोला—'नही, आपकी एक ठुमरी।'

भुजबल ने हठपूर्वक कहा—'आपके अलाप का ही यह समय बाट जोह रहा है अभी १०-११ बजे होंगे। कोई सवेरे की रागिनी होने दीजिये।' अजित ने भुजबल का आग्रह मान लिया। गई रात जिस भाव के साथ गाया था, उसी भाव के साथ गाने की चेष्टा की, परन्तु वह भाव न आया, तो भी उसने अच्छा गाया। भुजबल ने वाह-वाह का ढेर लगा दिया।

पूना रसोई से उठ आई। छोटी-छोटी लड़कियाँ पूना के साथ पौर के द्वार के पास सिमटकर खड़ी हो गईं। जब गाना समाप्त हो गया;

एक लड़की ने पूना से पूछा,—'जे को आयें ?'

पूना ने धीरे से कहा—'छावनी से रासधारी आये हैं। अथए कैं रास हुई है।'

अजित और भुजबल ने इस चरित्र-चित्रण को सुन लिया। अजित ने मन मे कहा—क्या प्रशंसा-पत्र मिला है। बड़ी फूहड़ मालूम होती है।

भुजबल ने भीतर-ही-भीतर छटपटाते हुये सोचा—गजब कर दिया इस छोकरी ने। और किसी मिस से थोड़ी देर के लिये बाहर चला गया। लड़कियां हँसती हुई अपने-अपने घर भाग गईं।

[६]

भोजन परोसने में अजित ने पूना को यथासंभव बारीकी के साथ देखा। जैसे प्रभात-कलिकाओ पर हिम-कणों की रोमावलि और सीताफलों पर प्रकृति की छिटकी हुई सफेद बुरनी की रेखाये उनके आंतरिक अक्षुण्ण स्वास्थ्य का लक्षण है, वैसे ही पूना का ज्योतिर्मय मुख था।

अजित ने मन मे कहा—विभूतिमयी है, और साथ ही कुटिल भी। मुझे रासधारी कहती थी। अजित के मन मे बार-बार देखने की इच्छा न हुई, और न उसने देखा।

भोजन के उपरांत एक घड़ी-भर विश्राम करने के बाद दोनों आदमी पहाड़ियों और प्राचीन काल के खँडहलों की सैर करते रहे। रात को लौटकर छावनी जाना था, और चले जाने के पहले अपनी सास से मिलना था। परन्तु अभी सध्या होने मे विलंब था। दोनों महाराजा छत्रसाल के महलो को देखते हुये दक्षिण की ओर वाले बडे लबे-चौड़े चबूतरे पर जा बैठे, जिससे झील में उतरने के लिये पक्की सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। झील के दायें बायें पहाडिया थी और सामने बिखरी हुई टौरियां। इन्ही टौरियो मे विगत काल का फाटक, दीवार और बस्ती धुस्सों के रूप में लुप्त-प्राय पडी हुई है। यही पर पहले महोबा (इतिहास-प्रसिद्ध महोबा नहीं)—नामक ग्राम था, जो अब हटकर, एक मील और दक्षिण की ओर बस गया है। सूर्यास्त नही हुआ था। फांटा पहाड़ के

ऊपर स्थित सिद्ध बाबा के मन्दिर मे शिखर पर किरणें उछलती हुई-सी मालूम पडती थी। ठंडी हवा धीरे-धीरे चल रही थी। नीले जल मे छोटी-छोटी लहरे उठ रही थी। अस्ताचलगामी रवि की रश्मियाँ प्रत्येक लहर मे विद्यमान मालूम होती थी। जैसे स्वर्ण की बाल सम्पूर्ण झील में छितरा दी गई हो। ऊपर आभा की पतली-सी चादर और नीचे की तहें प्रकाश की टेढ़ी-मेढी अलकों के पुञ्ज। कभी-कभी एकाध मछली की आँख विद्युत-समान चमककर तुरन्त लोप हो जाती थी। लहरों की थपेड़े अन्तिम सीढ़ियों से टकरा-टकराकर एक निरन्तर स्वर उत्पन्न कर रही थीं। जैसे जल-राशि किसी से कुछ कह रही हो।

कौए काँव-काँव करते हुये घोंसलों की ओर जा रहे थे, और दक्षिणवर्ती टौरियो के पीछे अनन्त सन्नाटे को चीरकर कहीं से धुएँ की बारीक रेखाये गगन की ओर चढ रही थीं। वह धुआँ पहाड़ियों के किसी कोने मे रहने वाले सीधे-सादे देहातियो के घरो के अवावों से उठ रहा था, और उनकी निर्बल अवस्था के आसरे का द्योतक था।

अजित ने कहा—'देहातों में शहरों की तरह का स्वार्थ भरा हुआ न होगा।'

भुजबल बोला—'स्वार्थ तो सभी जगह है। परोपकार-वृत्ति ही बिरली चीज है।'

अजित ने कहा—'परन्तु स्वार्थ के ऊपर परोपकार की विजय हुई है, और होगी। स्वार्थ सिवा स्वार्थ के और किसी को जन्म नही दे सकता है।'

उस एकांत स्थान में, पहाडों की गोद में खेलने वाली स्पन्दनमयी झील के पास बैठे हुये भुजबल के हृदय मे भी झील के झर-झर शब्द की प्रतिध्वनि हुई, और मन के एक कोने मे जल-विलासिनी किरणों के आलोक का प्रतिबिम्ब पड़ा।

उसने सोचा—'शिवलाल की कुछ जायदाद बेचकर ऋण चुका देना चाहिये।' इधर-उधर रहने के झगड़े में और खपना व्यर्थ है।

परन्तु—परन्तु मेरे पल्ले इसमें बहुत कम पड़ेगा।' यह परन्तु झील की कल-कल से अधिक प्रखर था। बोला—'संध्या होना चाहती है। अँधेरा हो जायगा। लोग कहते हैं कि महलों मे भूत प्रेतो का निवास है। यह चाहे गलत हो। परन्तु अन्धेरे मे मार्ग का मिलना दुश्वार हो जायगा। चलिये। रात ही में हमको-आपको छावनी भी चलना है।'

अजित को उस एकान्त स्थान का सौन्दर्य आनन्द प्रदान कर रहा था। उठने को मन न चाहा। परन्तु भुजबल ने जो आने वाले अँधेरे की चेतावनी दी थी, उससे उठना पड़ा। अतृप्त, सतृष्ण नेत्रों से एक बार मुड़कर केलिमयी झील को देखता हुआ चला गया।

घर पहुंचकर चलने की तैयारी होने लगी। ब्यालू करने के लिये आग्रह की जरूरत न पड़ी, क्योकि भूख लग रही थी। गाँवों मे सन्ध्या-समय भोजन जल्दी तैयार नही होता। ठहरना पड़ा। दुहनी होने के बाद दूध आँच पर रख दिया गया। पौर मे मिट्टी के तेल का दिया जलाकर प्रकाश कर दिया। अजित और भुजबल कपड़े ओढ़कर बैठ गये।

(१०)

जब तक ब्यालू का समय आवे, भुजबल ने हारमोनियम छेड़ने का प्रस्ताव किया।

अजितकुमार ने पहले टाला-टूली की। पीछे साफ इनकार कर दिया। कहा—'थक गया हूँ, बिलकुल जी नही चाहता।'

भुजबल ने ख्याल किया कि भूख के आगे हारमोनियम की नही चल सकती।

इतने में एक छोटी लड़की ने अँधेरे मे ही खड़े-खड़े भुजबल से पूछा—'जीजाजू, पौ-पौ नईं बजिहै का ?'

भुजबल ने उत्तर दिया—'नईं बजिहै, टूट गओ वो तो।'

लड़की बोली—'हूँ ऊँ—रासधारी तो बैठे है अबै।'

इतने थोड़े समय मे रासधारी के नाम से मशहूर हो जाने पर अजित को विवश बड़े जोर की हँसी आई। भुजबल क्षुब्ध हो गया। लड़की को डराने-धमकाने लगा। और छोटी-छोटी लड़कियाँ-लड़के जमा हो गये। शोरगुल और हँसी का तूफान खड़ा हो गया। प्रतिकार न कर पाने के कारण भुजबल को हँसी आ गई।

ब्यालू तैयार हो गई थी। पूना ने दरवाजे के पास खड़े होकर बुलाया।

अजित ने मन मे कहा—'यही कुटिल सौन्दर्य मेरे इस नामकरण का कारण है।'

ब्यालू करने के बाद अजित पौर मे आ बैठा। भुजबल अपनी सास से बिदा मांगने भीतर रह गया।

सास लम्बा घूँघट काढ़कर पास आ बैठी। उसकी छाया मे पीछे पूना सिमटकर जम गई।

उसकी सास ने कुशल-क्षेम पूछने के बाद कहा—'काम कैसा क्या चला जाता है?'

जामाता भुजबल ने सहज दंभ के साथ उत्तर दिया—'खूब अच्छा है गङ्गाजी की कृपा से। हमारा जमीदार तो बुद्धू है। मालिकी का पूरा बोझ मेरे ही सिर है। आजकल उसे दस-बीस हजार रुपये उधार लेने की अटक है। बड़ा सिर खपाना पड़ रहा है। परन्तु हमारे लिये भी काफी रुपया कर्ज दिला देने के बदले में निकल आयेगा।' दम्भ ने हृदय के भीतर की बात बाहर कर दी। इस पर तुरन्त भुजबल को पछतावा हुआ। बोला—'मुझे रुपयों की टूट नहीं रहती है। आप लोगों की दया से रोटी-भाजी मिल जाती है।'

पूना की मां बोली—'भगवान ऐसी ही कृपा बनाये रहे। हम लोगो को तो देखने-सुनने में ही बहुत आनन्द मिल जाता है।' फिर एक क्षण ठहरकर उसने कहा—'पूना के लिये क्या सोचा है? इसके भी हाथ

पीले हो जाये, तो सुख से मर जाऊं। अब इस गिरस्ती का भार नहीं चलता।'

भुजबल ने सोचा—कैसी बेवकूफी में बात मुँह से निकल गई, पर इसने समझ नही पाया।

सास से बोला—'क्या करूँ, न-जाने कितनी जन्म-पत्रियां मंगवाईं, एक का भी मेल नही खाता। परन्तु मैं चिन्ता में हूं।'

सास की इच्छा भुजबल के साथ ही ब्याह कर देने को थी, परन्तु मेल न खाने वाली जन्म-पत्रियो मे से एक उसकी भी थी। ज्योतिषी लोग कहते थे कि पूना के ग्रह बड़े प्रबल और तीक्षण है। भुजबल के कुछ ग्रह मिल गये थे, परन्तु सब नहीं।

सास ने कहा—'मुझे खाई रोटी नही पचती। इस चिन्ता के कारण बड़ी बेचैनी रहती है।'

भुजबल बोला—'हमारे साथ जो मास्टर साहब आये हैं, इन्हे देखा है?'

'देख लिया है।' सास ने उत्तर दिया—'परन्तु ग्रह मिल जायें, तब तो है।'

भुजबल ने मुस्कराकर कहा—'बड़ा अच्छा हो, अगर ग्रह मिल जायें। पूना ने उनको रासधारी तो बना ही लिया है। जन्म भर उसे नाचना-गाना देखने को मिलता रहेगा।'

पूना को जोर की हँसी आई परन्तु कसकर उसने अपना मुंह पकड़ लिया।

सास को यह सब रहस्य अवगत न था। बोली—'क्या यह नाचने का पेशा करते है?'

भुजबल ने हँस कर उत्तर दिया – 'नही, नही। वह बहुत इम्तहान पास है। वैसे ही अपने मन बहलाने को गाते है। रासधारी तो पूना ने अपनी शरारत से बना दिया।'

सास ने उस परिहास में कोई भाग नही लिया। बोली—'यदि जन्म-पत्री मेल खा जाय, तो अच्छा है, नहीं तो कुछ और फिकर करो। इस वर्ष मे भांवर डालने का निश्चय कर लिया है। अपनी बहिन ही के घर में रह जाती, तो अच्छा होता, परन्तु क्या करे, ग्रहों पर बस नहीं चलता।' पूना अपनी माँ की छाया में और भी सिकुड़ कर बैठ गई। भुलबल ने कुछ नही कहा।

चलते समय पूना की माँ ने भुजबल को अपनी चिन्ता रोकर फिर सुनाई, और उसकी निवृत्ति का उससे पक्का वादा करा लिया, तब छोड़ा।

ताँगे में सवार होते समय अजितकुमार ने देखा कि टिमटिमाते हुये दीपक के प्रकाश में पौर में खड़ी पूना एक कोने में से उसकी ओर एकटक देख रही है। उस अर्द्ध—विकसित लावण्य मे किसी को 'रासधारी' बना डालने की सामर्थ्य देख कर अजितकुमार को आश्चर्य हुआ।

चन्द्रमा के उदय मे अभी विलम्ब था। घोर अन्धेरा छाया हुआ था। निर्जन सड़क पर सुनसान अन्धेरे में खड़-खड़ करता हुआ ताँगा अपनी साधारण गति से जाने लगा।

तारे खूब छिटके हुये थे। ऐसे साफ-सुथरे, जैसे बरफ से धोये गये हों। आकाश-गंगा क्षितिज के छोरो को आकाश के एक किनारे से छू रही थी। तारों के प्रकाश में दूरवर्ती पहाड़िया धुएँ की पतली रेखाओं सदृश भाषित हो रही थी। और निकटवर्ती वृक्ष अन्धकार-पटल पर सीधी और वक्र रेखाओं के समूह-से मालूम होते थे। सम-विषम झाड़ियाँ और घास का मैदान एक अनंत समथर विस्तार-सा जान पड़ता था। प्रकृति शाँत थी, और उसकी गोद मे सब चीजे विश्राम लेती हुई मालूम पड़ती थीं।

दिन में खूब घूम लेने के बाद भी अजित को इस समय थकावट नहीं मालूम हो रही थी। छावनी पहुंचकर सो जाना है, और सबेरे उठकर अपने काम पर जाना है, यही ख्याल मऊ-सहानिया छोड़ने के बाद अन्य क्षणिक कल्पनाओं के ऊपर आ गया।

अजित ने मन में कहा—'रतन बड़ी कुशाग्र-बुद्धि है। बहुत जल्द बहुत कुछ सीख लिया है। कैसा सुरीला गला है।' इसके बाद शनिवार की रात मे गाया हुआ दरबारी कान्हडा का गीत याद आया। 'उन आँखो मे कितनी मधुरता, मृदुलता और मादकता-सी थी। चलते समय एकटक देखा था। और पूना भी शुक्रतारा की तरह ज्योतिर्मयी। क्यों देख रही थी? क्यों टकटकी लगाये थी? एक उद्यान का सुन्दर गुलाब और दूसरा कँटीली झाड़ी के भीतर का कुसुम। देखा और काँटों में दृष्टि उलझी। छुआ और चुभे। इसी ने तो नाचने-गाने वाले की उपाधि दी थी। रासधारी? छि: !'

(११)

कुछ काम रहा हो या न रहा हो, भुजबल मऊ-सहानिया से लौटने के बाद कई दिन नयागाँव छावनी में बना रहा। अजितकुमार के पास प्राय: उसके अवकाश के समय आया करता था। अजित को कारण मालूम न था; परन्तु भुजबल के साथ में प्राय: उसका मन ऊब उठता था, और भुजबल को उसकी ऊब का पता न था, क्योंकि वह यथासंभव अपनी ऊब को प्रकट न होने देता था। जबरदस्ती अपना गाना सुनाता था। अजित उकताकर जब किसी काम के करने का बहाना करने लगता था, तो भुजबल उसका तंबूरा उठाकर उसे ही छेड़ने लगता था।

एक दिन सवेरे ही आ गया। अजित ने सोचा कि देर तक साथ न होगा, क्योंकि ट्यूशन पर जाना था। जब अजित रतन को पढ़ाने के लिये चलने लगा तब वह उसके साथ हो लिया।

जिस समय दोनों ललित के मकान पर पहुंचे, उसे एक विचित्र प्रयत्न में ग्रस्त देखा। गाना सीखने की किताब बगल में रक्खे हारमोनियम को धौंक रहा था, और पूरे श्रम के साथ स्वरों पर अपने गले को माँज रहा था।

अजित ने उसकी हारमोनियम की तालीम शुरू कर दी थी। परन्तु वह उसके पास सदा नहीं रहता था। पुस्तक के बारे में यह शिकायत

नहीं हो सकती थी, और ललित को विश्वास था कि पुस्तक के अस्थायी साहित्य द्वारा संगीत की शिक्षा अधिक सहज है।

बैठक के पास सडक पर छिपे हुये दो-तीन लड़के मुह बना-बनाकर धीरे-धीरे कुछ आलाप कर रहे थे, जिसे संगीत के किसी भी अङ्ग की परिभाषा मे स्थान नही मिल सकता।

यह व्यापार देखकर अजित ने अध्यापकोचित आवेश के साथ डाँट कर कहा,—'क्या कर रहे हो ? भाग जाओ।'

लड़कों ने कहा—'पो-पों सुन रहे है, और पों-पों गा रहे हैं।' परन्तु सुव्यवस्था न देखकर लड़के भाग गये।

जिसे लड़को ने पों-पों कहा था, वह हारमोनियम की स्वरावलि चाहे जैसी मोहक रही हो, परन्तु ललितसेन का गला बहुत मधुर न था, इसलिये लड़कों की व्याख्या और हारमोनियम तथा ललित के गले के लयकार पर अजित जरा खीझ गया। भुजबल को हँसी आ गई, जिसे उसने बैठक मे धँसने के पहले मुश्किल से रोक पाया।

ललित धुन का शायद पक्का था, इसलिये प्रणाम के बदले में सिर झुकाकर हारमोनियम को धौकता रहा, और जब तक सगीत-शिक्षा की पुस्तक का एक अध्याय समाप्त न कर लिया, हारमोनियम की धौकनी को विश्राम न दिया।

मामूली बातचीत के बाद अजित भीतर रतन को पढ़ाने चला गया। ललित ने भुजबल से आने का काम-काज पूछा।

भुजबल ने कहा—'एक टीपना के लिये आया हूँ।'

'टीपना ? किसकी ? किसके लिये ?'

'आपकी टीपना चाहिये।'

ललित हारमोनियम को एक ओर हटाकर कुछ सोचने लगा। बोला—'मैं तो विवाह नहीं करना चाहता हूँ।'

भुजबल जानता था कि श्लाघा की इच्छा मनुष्य की सबसे अधिक निर्बल वृत्ति होती है, और बड़े लोग नग्न प्रशंसा यानी खुशामद को

पसन्द नही करते हैं, परन्तु खूब ढकी-मुदी तारीफ के विरोध करने का बल बिरलों में ही होता है। कहने लगा—'तब तो दीन-दुखियों का भगवान ही मालिक है। ऐसा घर और ऐसा वर किसी कन्या को भी नही मिलेगा; यह बात शायद नही रची गई है। आप टीपना दे दीजिये, न मिलेगी, तो कोई जबरदस्ती थोडे ही आपका विवाह कर देगा।'

ललित गम्भीरतापूर्वक बोला—'टीपना मिल जाने पर फिर लड़की वाले बेतरह पीछे पड़ते हैं। मै आपको टीपना दे भी दूंगा, तो नतीजा कुछ नही, क्योंकि ब्याह न करूंगा।'

भुजबल ने उदास स्वर मे कहा—'हाँ साहब, हम लोगों के ऐसे भाग्य कहाँ, जो आप सरीखे समर्थ, सर्वगुण-सम्पन्न लोगों के साथ संबंध कायम कर सके। यदि इस राय के बहुत लोग हो जायें, तो न जाने कितनी लड़कियों को आजन्म कुआरा रहना पड़े।'

इस बात से ललितसेन को अपनी बहन की विवाह योग्य आयु का ध्यान हो आया।

इतनी बड़ी हो गई, और अभी तक कुंवारी है! ब्याह हो जाने के बाद अपने घर चली जायगी। तब चारों ओर यहाँ सुनसान हो जायगा! दो टूक बात करने की आदत में शिथिलता आई। धीरे से बोला—'अभी तो कुछ नही कह सकता, कल जबाब दूंगा।'

भुजबल किसी आशा से पुलकित हो उठा। उसने कहा—'कुछ जल्दी नहीं है। जब आप उचित समझें, तब बतला दें।' और उठ खड़ा हुआ।

भुजबल के बैठक से जाने के पहिले ललित ने कुछ आग्रह के साथ कहा—'कल संध्या-समय अवश्य आइयेगा।'

[१२]

अजितकुमार ने रतन को हारमोनियम पर संगीत सिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ी, और रतन के सीखने में कुछ उठा नहीं रक्खा, परन्तु न-मालूम उसे संगीत या हारमोनियम क्यों नहीं आया। पहले एक-दो हफ्ते में जितना सीखा था, उसके आगे विद्या न बढ़ी।

अजित संगीत-शिक्षा के समय में गाना अधिक सुनने लगा, और रतन एकटक ध्यान के साथ उसकी सुरीली ध्वनि में डूबने-उतराने लगी। अपने पुराने गीतों को नये ढंगों में, और नये गीतों को पुराने ढंग में ढालने मे लगी रहती थी। शिक्षक इस उलट-पुलट को कला का एक शिल्प-व्यापार समझकर पाठ्य--क्रम को सफल होता हुआ भान करने लगा।

अजित फोटोग्राफरी भी जानता था। ललित की अनुमति से फोटोग्राफी भी सिखलाने लगा। दीवारों, पेड़ों, गमलो और जानवरों के फोटो लेने के बाद एक दिन अजित ने सोचा कि रतन की फोटो लूं, परन्तु न-जाने हिम्मत ने क्यों जवाब दे दिया।

जिस दिन भुजबल ललित की जन्म-पत्री माँगने आया था, उस दिन अजित के मन मे रतन की तस्वीर खीचने की विशेष ललक हुई। अकेले में फोटो उतारने की समर्थता मन मे न पाकर पठन-पाठन और गायन-वादन बन्द करके ललित के पास आया। भुजबल चला गया था।

बोला---'आज आपका तस्वीर खींचूगा।'

ललित ने खूब हँसकर कहा—'हुजूर, एक साहब जन्म-पत्री चाहते हैं, दूसरे चित्र। अब ब्याह न रुकेगा।'

भाई की असाधारण हँसी सुनकर रतन भी आ गई।

ललित ने कहा—'रतन, मेरा ब्याह होगा।' और फिर हँसा।

रतन प्रमुदित होकर बोली—'कब होगा भैया ?'

ललित ने उत्तर दिया—'अभी तस्वीर खिचते ही।'

रतन प्यार की पली हुई लडकी थी, और जब तक भाई के चेहरे पर विनोद के चिह्न दिखलाई पड़ते थे, वह ढिठाई नही छोड़ती थी।

उसने भौंह सिकोड़कर एक बार ललित और दूसरी बार अजित की ओर देखते हुए कहा—'तुम तो यों ही कह रहे हो, इस घर को बसने थोड़े ही दोगें। जन्म-पत्री किसने मांगी थी ?'

ललित बोला—'मास्टर साहब के साथ एक सजातीय सज्जन आये थे, वह अपने किसी संबंधी की लड़की के लिये माँगते थे। अब बतलाओ ब्याह में क्या कसर रह गई है ?'

'केवल इतनी ही कि आप अभी ब्याह नहीं करेंगे।'

ललित हँस दिया। अजित कुछ सोचने लगा। क्या उसी लड़की के लिये, जिसने उसे रासधारी समझा था ?

एक क्षण के बाद बोला—'शायद वह अपनी साली के लिये माँगते होंगे, जो मऊ-सहानिया मे रहती है। मैंने उसे देखा है। जन्म-पत्री मिल जाने पर आपको इनकार न करना चाहिये।'

रतन ने ललित के पास आकर बड़े भोलेपन और आग्रह के साथ कहा—'हाँ ठीक है। अवश्य कर लेना हमें बड़े-छोटे घर के भेद से कुछ मतलब नही है। भावज रूप और गुणावाली होनी चाहिए।'

'इसकी मैं सौगध खाता हूँ।' अजित ने निश्चय के साथ कहा।

ललित मुस्कराकर बोला—'मेरे विरुद्ध खूब षड़यन्त्र रचा गया है। जन्म-पत्री, चित्र, अनुनय, तीनों मेरे विरुद्ध हैं, परन्तु मैं सहज ही खेत छोड़ने वाला आदमी नही हूँ।'

'नही भैया, मैं हाथ जोड़ती हूं।' रतन ने कहा—'हठ मत करो। यह घर माता-पिता ने हरा-भरा छोड़ा था, इसे सूना मत रक्खो।' और रतन की आँख मे एक आँसू झलक आया।

ललित ने एक खिचती हुई आह को दबाया, वह खुद नहीं समझा कि आह उठी क्यों। रतन के सिर पर हाथ रखकर दुलार के साथ बोला—'तू तो पागल हो गई है रतन। आज मास्टर साहब मेरा चित्र खींचेगे। तेरा भी चित्र खिचवाऊँगा, और सब बाते पीछे की हैं।'

अजितकुमार के मन मे बड़ा हर्ष हुआ। ललित का फोटो खीचने बाद उसने रतन का फोटो खींचा। शायद एक प्लेट पर चित्र अच्छा न आवे, इसलिये दूसरे प्लेट पर भी छाया ले ली।

अजित केमरा लेकर, खुशी-खुशी घर चला गया। तीनों उस दिन जितने प्रसन्न थे, शायद पहले इतने कभी न दिखलाई दिये होंगे।

(१३)

दूसरे दिन सवेरे अजितकुमार के आने के पहले ही भुजबल आ गया। नियत समय संध्याकाल था, परन्तु भुजबल ने उसकी परवाह नहीं की। 'मुझे क्षमा कीजियेगा। संध्या के इतने पहले ही कष्ट देने के लिये आ गया हूं।' भुजबल ने आते ही मुस्कराते हुये, परन्तु विनीत भाव से कहा। इस समय उसका सुन्दर स्वास्थ्य जगमगा-सा रहा था।

ललित को बुरा नही लगा। पूछा—'आपका उस दिन पूरा परिचय प्राप्त न कर सका था। आपके यहां क्या होता है!'

'थोड़ी-सी जमीदारी है, किसानी का धंधा होता है, और शिवलाल की जायदाद का इन्तज़ाम करता हूँ। मुझे विशेष आवश्यकता भी नही है।'

'आपका विवाह हो गया है?'

'हो गया था, पत्नी का देहान्त हो गया है।'

'कोई बाल-बच्चा है?'

'जी नहीं।'

'शिवलाल की जायदाद बड़ी है?'

'जी हाँ, काफी बड़ी, परन्तु उनका खर्च बहुत है, और अनेक प्रकार का है। उसी के सम्बन्ध मे उस दिन दर्शन करने आया था।'

'आप प्रबन्ध करने मे बडे दक्ष होगे। मैं तो अपनी किताबों से बहुत कम अवकाश पाता हू। मेरी बहिन बहुत कुछ प्रबन्ध करती है। उसके बिना मेरा निभाव बहुत कठिन हो जायगा।'

इतना कहकर ललित किसी गम्भीर चिन्ता में निमग्न हो गया।

भुजबल कुछ नही बोला। परन्तु उसको भान हुआ कि ब्याह की परिधि में अपने मन को प्रवेश करने से नही रोक रहा है।

ललित ने एक क्षण के लिये नीचे देखकर कहा—'आप अपनी जन्म-पत्री दे सकेंगे ?'

'मेरी जन्म-पत्री !' भुजबल ने आश्चर्य के साथ कहा—'मेरी जन्म-पत्री किसके लिये ?'

ललित ने मुस्कराकर कहा—'जब आपने मेरी जन्म-पत्री माँगी थी, तब मैंने तो आपसे इतने प्रश्न नही किये थे।'

भुजबल बोला,—'मुझे क्या इनकार हो सकता है ?'

इतने में रतन एक थाली में कुछ कलेवा, कटोरे मे दूध और एक ग्लास में पानी ललित के सामने रखकर भीतर चली गई।

भुजबल ने सोचा—'जैसा कंठ सुना था, वैसा ही रूप है।'

ललित ने कहा—'लीजिये, थोड़ा-सा जलपान कर लीजिये।' दोनों ने एक ही थाली में खाया।

ललित ने पूछा—'आप क्या आज शाम तक अपनी जन्म-पत्री दे सकेंगे ?'

भुजबल ने उत्तर दिया—'यहाँ तो नही लिये हूँ। कलतक घर से मँगवा ली जायगी !'

'आपके घर पर कौन हैं ?' ललित ने प्रश्न किया।

भुजबल ने कहा –'कोई नहीं है। नौकर होगा। नहीं तो मैं स्वयं आज चला जाऊँगा। परन्तु आपको भी अपनी जन्म-पत्री देनी पड़ेगी।'

ललित ने हँसकर कहा—'दे दूगा। परन्तु आपकी जन्म–पत्री की मुझे अधिक आवश्यकता है। आपको नयागाँव पसन्द है ?'

भुजबल बोला—'बहुत। ऐसा सुन्दर रमणीय छोटा-सा साफ-सुन्दर नगर मुश्किल से कही मिलेगा।'

ललित ने कहा—'मैं अपनी बहिन के लिये आपकी जन्म-पत्री चाहता हूँ। अपनी जन्म–पत्री आपको दे दूँगा। परन्तु उससे मिल जाने पर भी अधिक आशा न रखियेगा। और, आपकी जन्म-पत्री चाहे कुछ कम भी मिले, आपका छावनी में निवास देखना बहुत पसन्द करूँगा।'

भुजबल को ऐसा जान पड़ा, मानो ललित की बैठक आंखों के सामने घूम रही हो। उसे अपने कानों पर विश्वास नही हो रहा था। क्या मांगने आया था, और क्या मिला। यह सोचकर उसका सिर चक्कर खाने लगा। परन्तु कुछ क्षण बाद उसे मालूम हो गया कि स्वप्न नहीं देख रहा हूं।

ललित ने हँसकर कहा—'कल आपकी टीपना प्राप्त कर लेने पर मैं आपको अपनी जन्म-पत्री दूगा। आप जल्दी मँगवा लीजिये।'

[१४]

भुजबल के चले जाने के बाद ही अजित आया। ललित ने कहा—'मुझे आशा है, अब मेरा बहुत-सा बोझ हलका हो जायगा।'

अजित न समझा। मुंह की ओर देखने लगा। ललित ने कहा—'आशा है, टीपना मिल जायगी।'

अजित को आश्चर्य हुआ। उसे विश्सास नही होता था कि जो आदमी विवाह करने के इतना विरुद्ध था, थोड़ी देर में वही उसके लिये इतना अधिक अतुर हो जायगा।

कठिनाई के साथ होठों पर मुस्कराहट को बुलाकर उसने कहा—'बहुत अच्छा है। जब आपकी यह इच्छा है, तब टीपना भी मिल ही जायगी।'

इस पर ललित जोर से हँसा। बोला—'मास्टर साहब, आपको कुछ भ्रम हुआ। मैं अपनी टीपना के विषय में नही कह रहा हूँ।'

कुछ चिन्ता के साथ अजित ने पूछा—'तब आप किसके विषय में कह रहे हैं ?'

'मैंने भुजबल की टीपना रतन के लिये माँगी है।' ललित ने स्थिरता के साथ उत्तर दिया—'हृष्ट-पुष्ट सुन्दर युवक है। हमारे ही घर में रहेगा भी। रतन को यह घर, जो जन्म से ही प्यारा है, छोड़ना न पड़ेगा।'

अजित के मन में कोई अज्ञात वेदना हुई। उसे प्रबल प्रयत्न से वहीं दबाकर उसने कहा—'आपने सब सोच समझ तो लिया होगा ?' और,

कुर्सी पर कसकर बैठ गया; जैसे उसे बलात् किसी के द्वारा घसीटे जाने का भय हो। ललित ने उत्तर दिया—'और क्या देखना है? भुजबल सुपात्र जान पड़ता है। धनाढ्य वर की मुझे अटक नही है। मैं तो ऐसे ही वर की चिंता में था।'

अजित का मुख कुछ फीका हो गया था। बरबस मुस्कराने की चेष्टा की। बोला—'यदि टीपना नही मिली, तो?'

ललित को कुछ कष्ट हुआ। उत्तर दिया—'न मिली तब देखा जायेगा। संसार में वरों की कमी थोडे ही है।'

अजित जरा देर चुप रहा। संग्राम के लिये तत्पर सिपाही की तरह बोला—'आप तो टीपना-शास्त्र को नही मानते होंगे?'

'ज्योतिष विज्ञान का अग है, इसलिये मानता हूँ, परन्तु पूरा विश्वास नही है, क्योंकि इसका शास्त्र अभी तक अपूर्ण है।'

'एक ओर योग्यतम का अवशेष और दूसरी ओर टीपना-सरीखी निर्मूल व्यवस्था में विश्वास! यह बात जरा अच्छी तरह समझ में नहीं आती।' अजित ने निस्संकोच होकर कहा।

ललित ने बुरा नही माना। बोला—'संसार में रहना है, इस कारण इस तरह की बहुत-सी बातों को मनाना पड़ता है। टीपना द्वारा विवाह के स्थान मे या उसके अभाव में स्वयबर-प्रथा को भी सर्वथा निर्दोष नहीं कहा जा सकता।'

'परन्तु बहुधा देखा गया कि और सब बातों में वर-कन्या की सुपात्रता निर्णय हो जाने पर भी टीपना-सरीखी अंधी व्यवस्था ने विवाह न होने दिया, और किसी प्रकार का भी साम्य न होने पर भी टीपना ने बेमेल विवाह कराके सुन्दर कोमल, जीवन का नाश कर दिया।' अजित ने अनिरुद्ध भाव के साथ बहस को बढ़ाने के लिये कहा।

ललित ने मुस्कराकर उत्तर दिया—'आपकी दलील से मेरे निश्चय को और भी पुष्टि मिलती है। टीपना मिलाने की साधारण रस्म का निर्वाह करके मे आवश्यक कर्तव्य का पालन करूँगा।'

अजित खीझ उठा। उसने सोचा कि ललित जान-बूझकर उसके तर्क का उल्टा अर्थ लगा रहा है। बहस के लिये ज्यादा गुंजायश न देखकर अजित ने दृढता के साथ अनुरोध किया—'आप जो कुछ करेंगे, अच्छा ही करेगे, किन्तु इन महाशय का कुल, शील-चरित्र इत्यादि पहले अच्छी तरह से जांच लीजियेगा, तब कोई बात पक्की कीजियेगा, जिसमें पीछे पछताना न पड़े।'

ललित ने कुछ चौंककर पूछा—'क्या भुजबल संदिग्ध चरित्र का युवक है ?'

अजित ने कुछ सकपकाकर उत्तर दिया—'नहीं। यह मेरा तात्पर्य कदापि नही है। मैंने अभी तक कोई ऐसी बात उसमें नही देखी, वैसे बहुत अच्छा आदमी जान पड़ता है, परन्तु मेरी प्रार्थना है कि सम्बन्ध करने के पहले पूछ-ताछ कर लीजियेगा।'

इतने में रतन वहाँ पर आ गई। केशो में ताजे गुलाब गूँथे हुये थी।

मीठे स्वर से बोली—'मास्टर साहब, आज क्या पढ़ाइयेगा नहीं ?'

अजित के मुख का फीकापन चला गया। उत्साह के साथ बोला—'जरा भैया से बातचीत करने लगा था। अभी आरम्भ करता हूं। चित्र बनाकर लेता आया हूं। यह लो।'

जेब से निकालकर अजित ने ललित और रतन को चित्र दे दिये। चित्र अच्छे बने थे। रतन ने अपना चित्र बड़ी देर तक ध्यान के साथ देखा, और फिर यत्न के साथ रख लिया।

ललित हारमोनियम बजाने लगा, और अजित भीतर रतन को पढ़ाने के लिये चला गया।

पढ़ाया, पढ़ाया न गया। गाया, गाया न गया। तब रतन ने गया। जैसे आधी रात के समय कोई व्याकुल कोकिला गाती हुई उड़कर लुप्त हो जाती है, और उसकी कूक आकाश में विलीन हो जाती है, उसी तरह

रतन की तान अजित के हृदय के एक निष्पद विस्तृत कोने में हूक देकर समा गई। गायन समाप्त होने पर अजित ने अपनी जेब से एक चित्र निकालकर कहा—'रतन अपना चित्र हमें दोगी ?'

रतन ने सरल भाव से उत्तर दिया—'ले लीजिये, फिर मैं क्या करूँगी ?'

'यह तुम ले लो। यह भी तुम्हारा चित्र है।' अजित ने कहा। इस समय उसका चेहरा-बाल-रवि की तरह लाल हो गया था।

रतन ने अजित से वह चित्र लेकर अपने पास का चित्र उसे दे दिया। बोली—'ये दोनों एक-से ही हैं। मेरे पास वाले चित्र में क्या कोई विशेषता थी ?'

अजित के गले में कुछ अटक-सा गया था। बहुत चेष्टा करके धीरे से बोला—'हाँ, है। वह तुम्हारे हाथ का दिया हुआ है।' और, रोकने पर भी उसकी आखें तरल हो गईं।

रतन ने देख लिया। बोली—'क्यों ?'

अजित ने चटपट आँसू पोंछकर कहा—'कुछ नहीं, यों ही। कहो तो, तुम्हारे और चित्र भी खीचूं ? उस दिन तुमने केशों में गुलाब नहीं गूंथे थे। किसी दिन फूल-समेत- तुम्हारी तस्वीर उतारना चाहता हूँ।'

रतन कुछ लजाई। हारमोनियम उठाकर धोंकने लगी।

अजित बोला—'तुमने कुछ उत्तर नही दिया रतन।'

'मैं क्या कहूं।' रतन ने हारमोनियम को धौंकते-धौंकते कहा—'चाहे जितने चित्र उतार लीजिए।'

अजितकुमार चला गया।

[१५]

आदमी की ढूंढ़-खोज न करके भुजबल स्वयं लहचूरा चला गया। जन्म-पत्री तो जल्दी मिल गई, परन्तु वहाँ से नयागांव छावनी आने में विलब हो गया।

आने को ही था कि शिवलाल बैलगाड़ी की शिकरम में बैठा दो आदमियो को साथ लिये आ पहुंचा। उसका आना भुजबल को इतना बुरा कभी न लगा होगा।

शिवलाल ने आते ही कहा—'नालिश दायर हो गई है। रुपये का इंतजाम किया या यों ही इतने दिन से छावनी में पड़े हुये हो ?'

'इन्तजाम कर रहा हूँ।'

'नालिश की भी इतनी चिंता नही, जितनी मऊ के लिये जेवर बनवाने की फिक्र है। वायदा-खिलाफी होने से बात मिट्टी में मिल जायगी, और शराब वाले का विल भी साल-भर का चुकाना है।'

'ललितकुमार ने तो इनकार ही कर दिया था। मऊ में कोई देता नही है। छावनी में ही साहूकार की खोज में लगा हुआ हूं। आप मेरी यहाँ से शीघ्र छुट्टी कर दे, तो रुपया जुटाने मे देर न लगेगी।'

'आज तो मै आया ही हूँ। कल-परसों चले जाना। तब तक मैं यहां कुछ विश्राम कर लूंगा। मंगल के बाद थोड़ा-सा जंगल ही सही।'

भुजबल को स्वीकार करना पड़ा। जब तक भुजबल ने भोजन तैयार कराया, तब तक शिवलाल नरम-गरम बिछौने बिछवाकर लोट लगाने में मस्त हुआ।

भुजबल शिवलाल के साथ आये हुये दोनो आदमियों से बातचीत करने लगा-

एक का नाम बुद्धा और दूसरे का पैलू था। दोनों लहचूरा के रहने वाले कुर्मी थे। 'मालिक' के पास किसी मतलब से गये थे। फिर साथ लौट आये।

भुजबल ने कहा—'अभी तक तुम लोगों ने लगान नहीं दिया। मालूम होता है, तुम्हारी कमबख्ती आनेवाली है।'

बुद्धा जवान था, परन्तु चेहरे पर झुर्रियों के कारण बुड्ढा-सा जान पड़ता था, और पैलू बुड्ढा था, सफेद दाढ़ी रक्खे था, परन्तु देखने में

जबान मालूम होता था। दोनों हाथ मलकर नीचे आँखें करके रह गये। कुछ उत्तर नही दिया।

भुजबल ने दूसरी ओर देखते हुये कहा—'तुम लोग ऐसे थोड़े ही मानोगे। जब सिर पर जूते बरसेंगे, तब होश ठिकाने आयगा।'

बुद्धा ने कहा—'काये पनैयां मार लियो। हमखाँ तुमाश्रो राज छांड़कें अत कऊँ थोरक सौ जानें।'

भुजबल बोला—'हाँ हमारी जमीदारी की ही छाती पर होला भूनते रहना। अगर दो दिन के भीतर लगान न दिया, तो खाल उड़ा दूंगा।'

पैलू ने कहा—'जियत रान दो भैया साब। जियत रैबी, तौ अपुन की त्याई दै दैवी। खेती में तो आसों की साल कछू बरकोई नइयाँ। काँसे ल्यावें। काढ़-मूसकें अबै लौ पेट भरो, जब कछू नई रयो, तब मालकन नौ भगे गये।'

'अरे, मैं तुम दोनों बदमासों को खूब समझता हूं।' भुजबल ने लापरवाही के साथ कहा—'तुम लोगों ने जगह-जगह से रुपया उधार लेना शुरू कर दिया है। हमको छोड़कर अब दूसरी जगह जाने लगे हो। जहां से हाल मे रुपया उधार लाये थे, वही से लगान का भी बंदोबस्त करो, नहीं तो जान ले लूंगा।'

पैलू बोला—'हमलौ तौ अबे कछू नइयां, चाय प्रान भलेंई लें लौ।'

यह चख-चख शिवलाल के कानो तक पहुंची। वह चारपाई छोड़कर भौंह चढ़ाये हुये आया।

'तुम दोनो ने क्या आफत मचा रक्खी है ?' शिवलाल ने पूछा

बुद्धा बोला—'मालक तुमांये परये तो पलत, नइँतर अब की बेरै बचबें बारे नइयाँ। त्याई न दै पायें। हमें कछू खाबे खाँ नाज और रुपैया मिल जाय।'

शिवलाल ने बड़े दंभ के साथ कहा—'जो कुछ कहना हो, किसी दूसरे समय हमारे मैनेजर साहब से कहना। उनसे मऊ में भी हमने

यही कह दिया था, अभी जाओ।' उठने की इच्छा न रखते हुये भी दोनों वहाँ से चले गये।

[१६]

शिवलाल को बिदा करके और बुद्धा तथा पैलू को उनकी तकदीर के भरोसे छोड़ भुजबल नयागाँव छावनी तीसरे दिन आ गया। फासला दोनों स्थानो मे लगभग चौबीस मील का है, इसलिये सबेरे गाड़ी लेकर शाम के बाद छावनी पहुँच पाया। तुरन्त ललित के मकान पर पहुंचा। वह किसी काम से बाहर चला गया था, इसलिये नौकर को जन्म-पत्री देकर कहता हुआ चला आया—'बाबू साहब ने जिस जन्म-पत्री को माँगा था, कह देना कि वह यही है। सावधानी से उनको दे देना।' घर लौटकर पहुंचा, मऊ-सहानिया से आया हुआ एक नाई मिला। उससे मालूम हुआ कि पूना की माँ को जोर का बुखार आ गया है। उसने बुलाया था। यात्रा की थकावट के मारे वह उस रात को न आया। सबेरे पहुँचा।

दरवाजे पर पूना मिली। उसने रोकर कहा—'बाई बहुत बीमार है।'

भुजबल ने कहा—'घबराओ मत, अच्छी हो जायँगी।'

पूना भीतर लिवा ले गई। घर बुहारा नहीं गया था। चूल्हे में राख पड़ी थी। पूना ने केवल घड़े भर रक्खे थे।

भुजबल ने देखा कि ज्वर तीव्र है। रोगिणी कराहकर बोली—'लाला, मेरा समय-सा आ रहा है। आशा तो नहीं थी कि छावनी में मिल जाओगे, पर मैंने नाई से कह दिया था कि लहचूरा जाने के पहले वहाँ देखते जाना। अच्छा किया, आ गये। पूना के लिये चित्त विह्वल हो रहा है।'

भुजबल ने कहा—'छावनी के ललितसेन का नाम तुमने सुना होगा। बड़े आदमी हैं। उनकी टीपना माँगी है।'

ज्वर से देह दहक रही थी, परन्तु रोगिणी को इस समाचार से शांति-सी मिली । । पूछा—'उन्होंने टीपना देने का वचन दिया है ? सुना है कि वह ब्याह नहीं करना चाहते ।'

भुजबल को सुनकर आश्चर्य हुआ । उसके अनुभव में अभी तक यह बात नही आई थी कि स्त्रियाँ पुरुषों से पहले संसार की विचित्र घटनाओं का समाचार कैसे प्राप्त कर लेती है ।

उसने कहा—'टीपना मिलने पर देखा जायगा । एक वर और मेरी निगाह मे है ।'

'वह कौन ?' पूना की मां ने उत्सुकता से पूछा ।

भुजबल ने उत्तर दिया—'अजितकुमार । वह बाबू, जो अभी थोड़े ही दिन हुए, मेरे साथ यहाँ सैर करने आये थे । बहुत पढ़े-लिखे, अच्छे घराने के हैं ।'

पूना एक कोने मे सिमिटकर बैठी हुई चावल छाँट रही थी । उसने सिर नही उठाया ।

उसकी माँ ने कहा -'ललितसेन के साथ सम्बन्ध हो जाय, तो बड़ा अच्छा होगा । हम दरिद्र भले सही, परन्तु हमारी पूना उनके घर मे उजाला कर देगी । उनका कुल भी हमसे ऊँचा है । जिन बाबू को तुम यहाँ लिवा लाये थे, उनका कुल हमसे बहुत छोटा है, और मासिक आय भी उनकी बहुत साधारण है । तुमने बतलाया था ।'

भुजबल ने कहा—'तुम चिता मत करो । मैं बहुत शीघ्र उचित प्रबन्ध करूंगा पर इस समय तो तुम्हारी चिंता है । अपने साथ दवा लेता आया हूं । अस्पताल की नहीं, एक ब्राह्मण वैद्य की बनाई हुई है । मैं गङ्गाजी की सौगन्ध खाता हूं ।'

रोगिणी ने कहा—'मै दवा न खाऊँगी ।' पूना चावल की थाली एक ओर रखकर बोली—'बाई, तुमको दवा खानी पड़ेगी, नहीं तो मैं खाना-पीना छोड़ दूगी ।'

माँ बोली—'इसके मारे बड़ी आफत है। कल से कुछ नहीं खाया। रात-रात-भर मेरे पास बैठी रोया करती है। अच्छा बेटी, दवा खाऊँगी। अब तो तू भोजन करेगी ? जा, अपने जीजा के लिये खाना बना ले।' पूना माँ को दवा खिलाकर उत्साह के साथ काम में लग गई। भोजन के उपरान्त भुजबल अपनी सास की चारपाई के पास एक कम्बल बिछाकर बैठ गया। बोला—'दवा ने असर किया है। पूना के व्याह तक तुम्हें संसार से बिदा नहीं मिल सकती।'

इतने में पूना भी आ गई।

माँ ने बेटी से कहा—'पूना, आज से तुम नित्य तुलसी जी की पूजा किया करो, और संध्या-समय पीपल के नीचे दिया धर आया करो।'

[१७]

भुजबल की जन्म-कुंडली को रतन की कुंडली से ज्योतिषी ने चौकस मिला हुआ बतलाया। उसने ललित की भी कुंडली ले ली थी। उसका भी मेल पूना की कुंडली से खा गया। परन्तु ललित ने संबंध करने से इनकार कर दिया, और भुजबल ने एक बार नाहीं पाने के बाद फिर कोई जोर नहीं दिया। ललित के इनकार करने की बात पूना की मां को अच्छे हो जाने पर मालूम हुई, परन्तु उसको आशा थी, इसलिये मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि ललित के साथ एक-न-एक दिन सगाई हो जायगी। उसे विश्वास था कि एक दिन पूना का सौंदर्य ललित के हठ पर विजय प्राप्त कर लेगा। वह पूना से कभी-कभी कहा करती थी कि तू बहुत बड़े घर की वधू होगी, परन्तु न-मालूम उसे यह बात क्यों अच्छी न लगती थी। फिर भी माँ के अनुरोध से वह तुलसीजी की पूजा किया करती और पीपल के नीचे संध्या-समय दीपक रख आया करती थी।

पूना की माँ को भुजबल ने जो वचन दिया, उसको, वह भूल-सा गया था। रतन की कुंडली से अपनी कुंडली का मिलान हो जाने के

बाद एक दिन वह ललित के पास गया। शिवलाल के लिये ऋण की चर्चा छेड़ी।

ललित ने कहा—'मैं शिवलाल को ऋण न दूंगा। ऐसे निकम्मे आदमी की सहायता करना संसार का कष्ट बढ़ाना है।'

'ऐसी हालत में वह सारी जमींदारी नीलाम पर चढ़ जायगी।'

'तब किसी अच्छे योग्य व्यक्ति के हाथ में पहुंचकर उन्नति करेगी।'

'परन्तु मैं उन्हें वचन दे आया था कि कहीं-न-कहीं से रुपया जुटा दूंगा।'

'अब उनसे कह दीजिये कि रुपया जुटाया नहीं जा सकता।'

'बड़ी किरकिरी होगी।'

'उसका कोई प्रतिकार नहीं।'

'आप अपने यहाँ रहन रख लीजिये। वह रुपया दें, तो पायेंगे, नहीं तो उसी रुपये और उसके ब्याज में अच्छी जायदाद आपके यहां रह जायगी।'

'शिवलाल को रुपया देने की बात अब और आगे न कीजिएगा।'

यह अंतिम उत्तर सुनकर भुजबल सन्न रह गया। परन्तु मुस्कराहट उसके चेहरे पर यों ही आ जाया करती थी, और आशा मन का स्वाभाविक व्यापार थी। उसने सोचा कि ब्याह शीघ्र ही हो जायगा। इसके बाद चर्चा अधिक सहज और सुलभ होगी, तब तक के लिये उस विषय को स्थगित कर दिया।

[८]

रतन के विवाह का मुहूर्त पक्का हो गया, और पठन-पाठन शिथिल, परन्तु अजितकुमार नियम-पूर्वक घर पर आता रहा। शायद यह समझकर कि रतन गृहस्थी में प्रवेश करेगी, अजित का मन पढ़ाने में कम लगने लगा। रतन भी जी लगाकर न पढ़ती थी।

एक दिन न-मालूम किस प्रेरणा के वशीभूत होकर अजित ने रतन से कहा—'मैं तुम्हारा एक फोटो और उतारना चाहता हूँ।'

रतन ने दूसरी ओर देखते हुये कहा—'उतार लीजियेगा।'

'ब्याह के बाद तो तुम पढ़ोगी नही रतन ?' अजित ने कुछ उत्कंठा के साथ पूछा।

रतन ने अपनी धोती के छोर में निकले हुये धागों को सावधानी के साथ गिनने लगी।

अजित ने फिर पूछा—'यदि ब्याह के बाद भी पढ़ती रही, तो मैं कभी पढ़ाने में कसर नहीं लगाऊंगा।'

रतन ने धीरे से कहा—'सो तो मैं जानती हूं।'

'रतन, रतन !' अजित ने रुँधे हुये गले से कहा।

कुछ चकित होकर रतन ने अजित के मुह की ओर देखा।'बोली—'क्या है ?'

अजित ने कम्पित कंठ से कहा—'कुछ नहीं।'

फिर एक क्षण के बाद बोला—'मैं तुम्हारा एक चित्र और खीचना चाहता हूं।'

रतन ने भोलेपन से उत्तर दिया—'मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ कि खीच लीजिये।'

अजित ने गला साफ करके कहा—'परन्तु केशों में गुलाब के फूल गूँथे हुये हों, और मुँह पर मुस्कराहट हो।'

रतन जो बात कुछ-कुछ पहले से जानती थी, अब अच्छी तरह समझ गई। बोली—'फोटो न खिचाऊंगी।' और रोने लगी।

इतने में ललितसेन यकायक आ गया।

रुखाई के साथ बोला—'यह सब क्या है मास्टर साहब

अजित को जैसे काठ मार गया हो। एक क्षण कुछ उत्तर न दे सका, परन्तु झूठ बोलने का अभ्यास न था, इसलिये साफ बोला—'चित्र खीचने के लिये कहा था।'

रतन वहां से उठकर चली गई। ललितसेन अजित को अपनी बैठक में लेकर चला गया।

कड़ाई के साथ उसने कहा—'तुम बड़े नीच मालूम होते हो।'

अजित का सब संकोच तिरोहित हो गया। समान कड़ाई के साथ बोला—'क्यों ?' और आंख से आग बरसने लगी।

ललित और उत्तेजित होकर बोला—'यह ढिठाई! उस लड़की के चित्र खीचने वाले तुम कौन हो? तुम को क्या जरूरत ?'

अजित का हृदय मुक्त हो चुका था। बोला—'वह चित्र मेरे लिये चिरकाल की शांतिदायक वस्तु होगी।'

'मूर्ख, नराधम।' ललित ने कड़ककर कहा—'तू कौन होता है ?'

अजित ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—'उस देवी का भक्त ?'

'निकल जा यहाँ से। खबरदार जो कभी यहां आया, या कभी हमारे मार्ग मे आया।'

अजित की देह पत्थर की तरह जड़ हो गई, परन्तु प्रयत्न करके वह उठ आया।

ललित बहुत उद्विग्न होकर कमरे में टहलने लगा। वह उस घड़ी को कोस रहा था, जब अजित को अध्यापन के लिये नियुक्त किया था। एक युवक को वयस्क प्राप्त लड़की को पढ़ाने के लिये नियुक्त करने के कारण उसने अपने को भी मन में गालियां दीं।

ऐसे समय में मनुष्य एकान्त में रहकर अपना कष्ट भोगना चाहता है, परन्तु शायद ही कोई ऐसा भाग्यशाली संसार में हो, जो कष्ट की घड़ी मे खिझाने वालों से बच सका हो।

भुजबल मुस्कराता हुआ आया। उसने समझ लिया कि कुसमय है। बैठा नहीं। खड़े- खड़े पूछा—'मै केवल इतना जानने के लिये आया हूं कि मुहूर्त अगले पखवारे का रहेगा, या और आगे हटाया जा सकेगा ?'

'क्यो ?'

'मुझे भी कुछ रुपये-पैसे का प्रबन्ध करना पडेगा।'

'आगे मुहूर्त न बढ़ेगा। जो कुछ रुपया पैसा चाहिये हो, मैं दूंगा।'

भुजबल चला गया।

[१६]

उसी शाम को भुजबल अजित के घर पहुंचा। वह कहीं घूमने के लिये निकल गया था। भुजबल को उस दिन अजित के इन्तजार में बहुत देर बैठना पडा। अजित बहुत गई रात लौटा। बहुत थका हुआ मालूम पड़ता था। चाहता था कि किसी से कोई बात न करके बिस्तरे में जा पडे। परन्तु जो भुजबल उसके लिये इतनी देर से बैठा था, वह वहाँ से सहज ही थोडे जाने वाला था।

भुजबल का भाव आज उतना नम्र न था, जितना पहले दिनों में रहा करता था, परन्तु इस पर अजित ने कोई ध्यान नही दिया।

भुजबल ने कहा—'मास्टर साहब, हम एक काम के लिये बड़ी देर से बैठे हुये हैं। आश्चर्य कर रहे थे कि कहां लापता हैं।'

'कहिये, क्या है? मेरे सामर्थ्य का काम होगा, तो करने की चेष्टा करूंगा।'

'शिवलाल जी का नाम मैंने पहले भी आपके आगे लिया है। वह अपनी जाति के एक बडे जमीदार हैं। आजकल बिचारे बडे अर्थ-संकट में हैं। जरा खर्चीले ज्यादा है, इसलिये सिर पर बहुत ऋण हो गया है। साहूकार उनकी जमींदारी पर नियत लगाये हुये है। मैं चाहता हूँ कि वह बच जाय, नीलाम न हो। आप इस परोपकार मे मेरी सहायता कर दीजिये।'

'मेरे पास तो कानी कौड़ी भी नहीं है।'

'कुछ हर्ज नहीं, आपके पास जो कुछ है, उससे मेरी मदद कर दीजिये।'

'वह क्या?'

'आप बाबू ललितसेन से कह कर रुपया दिलवा दीजिये। वह आपको बहुत मानते हैं। आपके कहने से रुपया दे देंगे। हम आपको दलाली देंगे—एक खासी रकम।'

अजित के सिर पर वज्र-सा टूटा। चेहरा लज्जा के मारे लाल हो गया, और माथे पर पसीने की बूंद आ गई। बोला—'वह मेरा कहना न मानेंगे। बहुत जिद्दी हैं। दलाली का प्रसंग फिजूल है।' अजित का गला भर्रा गया।

भुजबल ने अनिरुद्ध भाव के साथ कहा—'आपका हाल हनुमान सरीखा है। जब तक कोई उलाहना देकर न जागता था, तब तक वह अपने अतुल पराक्रम को अनुभव ही न करते थे।' और हंसने लगा। दलाली की बात नही कही।

उसकी हंसी अजित के कलेजे में बर्छी-सी धँस गई। जो कहना चाहता था, वह मुंह के न निकला। घिग्घी-सी बँध गई।

भुजबल ने फिर कहा—'एक जरा-सी बात के लिये आप हामी नही भर सकते। अफसोस! इसमें आपको कुछ श्रम भी तो न पड़ेगा।'

कलेजा कड़ा करके अजित ने कहा—'मैं आज ही उनकी नौकरी छोड़कर आया हूं। इसलिये असमर्थ हूं।'

'क्यों?' भुजबल ने आश्चर्य के साथ पूछा।

अजित क्षुब्ध हो गया। बोला—'इससे आगे पूछने की आपको कोई आवश्यकता नहीं।'

एक दरिद्र आदमी में इतना अहंकार देखकर ललित के भावी बहनोई ने कहा—'ओह हो! ओह हो! यह बात!' और वहां से चला गया।

[२०]

भुजबल की सगाई रतन के साथ हो गई, यह बात अनेक बिरादरी वालों को न केवल छावनी में, बल्कि आस-पास के गावों में भी मालूम हो गई। भुजबल ने छावनी का रहना कम कर दिया। 'विवाह शीघ्र

होने वाला था, तो भी कभी-कभी थोड़ी देर के लिये हो जाता था, और प्राय: अजितकुमार से मिल लेता था। गायन-वादन तो होता था, परंतु इधर-उधर की बाते हो जाती थी। भुजबल अपनी बारात में कम-से-कम दो-एक अच्छे पढे-लिखे आदमी ले जाने का इच्छुक था।

कुछ घोडे और तडक-भड़क का सामान मऊ-सहानिया के रईस से बरात के लिये मांग लेने के लिये एक दिन वहां गया। ससुराल पहुंचा। साली और सास दोनों मिली। पूना प्रसन्न मालूम पड़ती थी, और उसकी मां उदास।

मां ने भुजबल से कहा—'मैं नही जानती थी कि ऐसे चुपचाप विवाह कर लोगे। हम लोगों को तो भूल ही गये!'

भुजबल निरुत्तर-सा हुआ, परंतु प्रयास करके बोला—'क्या करूं, बडी आफ्त आई है। सच मानो, झूठ नही कहता। बहुत टाला, परंतु ललितसेन गले पड गये। जबरदस्ती जन्म-पत्री ले ली। इत्तिफाक से मिल भी गई। सगाई-संबंध का हठ किया। लोगों से जोर डलवाये। तब क्या करता? मंजूर करना पड़ा। बेबस हो गया।'

पूना की मां ने लंबा घूंघट खीचकर कहा—'पूना के लिये टीपना मांगी ही काहे को होगी। अपनी चिंता में दूसरे की थोड़े ही कुछ सुहाती है।'

भुजबल ने विश्वास दिलाते हुये कहा—'मैंने मांगी, हठ किया, परन्तु उन्होने बिलकुल नाही करदी। जब वह अपनी बहन के ब्याहने के स्वार्थ में लिपट रहे थे, तब हमारी साली के साथ संबंध कैसे कर सकते थे!' भुजबल के स्वर में सच्चाई की खनक थी, परन्तु पूना की मां को बिलकुल विश्वास नहीं हुआ। बोली—'पुरुषों की माया को भगवान ही जानें, हम अबोध स्त्रियां तो समझने मे असमर्थ हैं। अब यह बताओ कि पूना के लिये क्या करूं? मेरी तबियत फिर खराब रहने लगी है, अब जीने की बिल्कुल इच्छा नहीं है। तुम तो ब्याह करके फिर

यहाँ कभी आने का नाम न लोगे। मेरे मायके में जो भाई बंद हैं, वे हम लोगों की जीवितों में गिनती नहीं करते। पूना का क्या होगा?'

वह घूंघट के भीतर आँसू बहाने और पोंछने लगी।

भुजबल ने कहा—'एक वर मेरी निगाह में है। वह मास्टर, जो उस दिन मेरे साथ आये थे...' पूना की मां ने बात रोककर कहा—'पूना चाहे क्वांरी ही हर जाय, पर उस गवैये-नचैये के साथ उसकी सगाई न करूंगी। और कोई योग्य वर जाति में नहीं है?'

भुजबल जरा कुढ गया। बोला—'होंगे, और मिल भी जायेंगे, पर, न-मालूम किता समय ढूंढ़-खोज में लगाना पडेगा। मास्टर की भी जन्म-कुण्डली ले लूंगा, तुम नाहक हठ करती हो।'

इसके बाद बारात के सामान की फिक्र में भुजबल चला गया। मां ने बेटी को बुलाया। वह एक ओर छिपी हुई कान लगाकर बात सुन रही थी। पुकार सुनकर भी जरा ठहर कर आई।

माँ ने उससे कहा—'मैं जल्दी भगवान की शरण में जाऊंगी। तुम्हारा क्या होगा?' पूना ने लापरवाही के साथ उत्तर दिया—'मैं भी तुलसी जी की शरण में चली जाऊंगी। इसीलिये तो उनकी पूजा किया करती हूं।'

मां ने हाथ लेकर कहा—'पूजा का कुछ फल नहीं हुआ, मुझे आशा थी कि ऐसा अच्छा घर मिल जायगा। भाग्य फूट गये।'

पूना हँस कर बोली—'बहुत अच्छा हुआ।'

'अच्छा हुआ, क्यों री मूर्ख।' मां ने उत्तेजित कंठ से कहा—'किसी हलवाहे के साथ ब्याह होगा, तब अच्छा होगा?'

पूना झाड़ू लेकर स्थान बुहारने लगी। उसकी मां ने कहा—'एक बात की मुझे चिंता है। मेरे मरने के पीछे तेरे जीजा कहीं उस मास्टर से सम्बन्ध न कर दें।'

पूना ने कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरी ओर मुंह करके झाड़ू देने लगी।

उसकी मा ने कहा—'पूना, तुलसी की पूजा छोडकर देवी जी को जल चढाया कर। मै चाहती हूं कि मरने से पहले तुझे सुखी देख लूं।'

पूना ने झाड़ू रख दी। सीधी खड़ी हो गई। गर्दन जरा तिरछी करके बोली—'मै तुलसी की पूजा नही छोडूंगी। तुम मुझसे कुछ मत कहो'

घर मे बहुत दिनों से केवल मां-बेटी हीं थी, इसलिये परस्पर संकोच कुछ कम हो गया था।

[२१]

यथासमव शान-शौकत के साथ भुजबल की बारात आई। आदमी कम थे, परन्तु तड़क-भडक बहुत ज्यादा थी। भुजबल ने अजितकुमार को बारात मे शरीक करने की बहुत कोशिश की, परन्तु अजित बारात मे न गया, बीमार हो गया था। बारात मे शिवलाल आया, और उसके अनेक बदीजन भी।

विवाह होने के पश्चात् रतन की विदाई हुई। बुन्देलखड मे साधारणतया विवाह के समय वधू की विदाई नही होती, परन्तु वर-वधू के पूरी आयु के होने की दशा मे उक्त नियम का व्यतिक्रम कर दिया जाता है।

ललितसेन १०-१२ दिन बाद स्वयं लहचूरा जाकर रतन को लिवा लाया। घर मे जब तक थी, तब तक खिले हुये फूल की ओस की तरह प्रफुल्ल और सप्रभ मालूम होती थी, परन्तु जिस तरह कड़ी धूप में दलदार फूल भी कुम्हला जाता है, उसी तरह लहचूरा के १०-१२ दिन के निवास ने रतन को अस्वस्थ कर दिया। ललितसेन ने यह अंतर्लक्ष्य कर लिया, और उसने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि अब भुजबल को छावनी में ही रक्खूंगा, और रतन को घर पर। रतन ने जो अनुभव किया, वह प्रेंम नहीं था, आधी थी। उसको भुजबल और लहचूरा भय के पर्याय जान पड़ने लगे।

नयागांव छावनी में बँधकर रहने के पहले भुजबल को शिवलाल की जमीदारी और उसके ऋण का प्रबन्ध करने की चिन्ता हुई।

उसके और ललितसेन के परस्पर व्यवहार में दूरी कम रह गई थी। बहनोई आयु और पद में छोटा होने पर भी समाज की रीति के अनुसार बड़ा होता है। भुजबल को भी इस बड़प्पन का अनुभव हुआ।

एक दिन उसने ललितसेन को फिर शिवलाल की सहायता के लिये दबाया। ललित के मन पर भुजबल के सद्यः सम्बन्ध का कोई आतंक न बैठा था। इसलिये उसने स्पष्ट इनकार कर दिया।

ललित ने कहा—'सहायता तो उस निकम्मे बेवकूफ को एक कौड़ी की भी न दूगा। बारात में कैसे सजधज करके आया था! रंडियो के गाने और शराब के समुद्र में डूबे रहने वाले व्यक्ति की सहायता करना नीति के सम्पूर्ण नियमों से वर्जित है। तुमसे अनुरोध है कि उसकी जायदाद के प्रबन्ध की आफत अपने सिर से उतारकर फेक दो। मेरी जायदाद और लेन-देन का काम सँभालो। तुम्हें और कुछ करने की जरूरत नही है।'

यह सलाह भुजबल को भी नापसन्द न होती, परन्तु बहनोई का साले के घर पडे-पड़े रोटी तोड़ना बड़ी कीर्ति की बात नही समझी जाती, इसलिये भुजबल स्वतन्त्र आय या सपत्ति का अधिकारी बनने की कामना रखता था। बोला—'आप जो कुछ कहते हैं, वह ठीक है, परन्तु शिवलाल को बीच में ही छोड़ देना ठीक नहीं जान पड़ता। और, फिर आपके लेन-देन और जायदाद के प्रबन्ध में बहुत समय व्यय नहीं हो सकता। हाथ-पैर वाले व्यक्ति को कुछ काम और चाहिये।'

ललित ने कहा—'लेन-देन की अवस्था अब बुरी हो चली है। आसामी ठीक समय पर रुपया नही देते, और बाज-आज इधर-उधर रियासतों में भाग जाते है, जिसकी वसूली में बड़ी कठिनाई पड़ती है। यदि और जायदाद मिल जाय, तो लेन-देन से रुपया निकालकर उसी में डाल दूं, और बहुत कुछ बेखटके हो जाऊँ।'

'किस तरह की जायदाद?' भुजबल ने पूछा।

'मकानी जायदाद छावनी में बगले, मकान इत्यादि।' ललित ने उत्तर दिया।

भुजबल कुछ सोचकर बोला—'यदि किसी दिन यहां की अधिकांश पल्टनें किसी दूसरी जगह भेज दी जायँ, और छावनी तोड़ दी जाय, तब यहां की मकानी जायदाद की क्या बिसात रहेगी ?'

ललित को यह संकेत खटका। बोला—'अभी तो इस तरह की कोई संभावना नहीं मालूम पड़ती।'

भुजबल को आभास हो गया कि इस बार तर्क की विजय उसके हाथ रहेगी। दृढता के साथ बोला—'यह कदापि नहीं कहा जा सकता। कभी कोई जिला तोड़ दिया जाता है, कभी कोई छावनी कहीं से हटाकर कहीं और कर दी जाती है। मैं तो मकानी जायदाद को बिलकुल निर्बल पूंजी समझता हूँ।'

ललित हार गया।

धीरे से बोला—'तब क्या किया जाय ?'

भुजबल ने तुरन्त उत्तर दिया—'जमींदारी जायदाद खरीदिये। अच्छा प्रबन्ध हो, फिर कभी खटका नहीं।'

ललित ने कुछ क्षण बाद उत्तर दिया—'सस्ते दामों अच्छी जमींदारी पास में कहीं मिल जाय, तो खरीद ली जाय।'

भुजबल ने कहा—'ये सब शर्तें मौजूद हैं।। आपके कहने-भर की देर है।'

ललित ने चकित होकर पूछा—'किसकी ?'

'शिवलाल की।' भुजबल ने उत्तर दिया—'वैसे तो वह बेचने को तैयार नहीं है। ऋण का पहाड़ बढ़ता चला जाता है, परन्तु जमींदारी का कुछ भाग बेचकर उसको काटने के लिये जी नहीं करता। रहन धरने और जायदाद डुबोने को भले ही भुगत ले, परन्तु बेचने से इनकार करता है। आप रहन रक्खेंगे ?'

'नहीं, कदापि नहीं। रहन के झगड़े में नहीं अटकना चाहता हूं।' ललित ने कहा।

भुजबल अपना माथा टटोलकर बोला—तब मैं उसे किसी तरह बिक्री करने पर आरुढ करूँगा। निर्बल के नाश में तो आपका विश्वास ही है।'

'अवश्य।' ललित ने कहा, और मन में इस विचित्र प्रसंग पर शंका करने लगा।

भुजबल—'शिवलाल को जो आदतें पड़ी हुई है, उससे यह असंभव मालूम होता है कि वह कभी सुधरे। ऋण बढ़ता चला जायगा, और एक-न-एक दिन उन दुर्व्यसनों के बदले मे जायदाद नीलाम हो जायगी। निर्बल मनुष्य के नाश मे सहायक होना तो आपकी नीति के अनुकूल है?'

ललित—'हां, इसमे कोई आक्षेप नहीं। उस क्रिया में सहायक होना, मानो प्रकृति की मदद करना है। कानून की मर्यादा भग न हो, केवल इतना ही चाहता हूँ।'

भुजबल—'अर्थात् जालसाजी, धोखा इत्यादि न हो, सो आप निश्चिन्त रहिये।'

ललित—'निर्बल आदमी को निर्बल कहकर उसका नाश उसे सावधान करके करना यह मैं न्याय-संगत मानता हूं।'

भुजबल ने हँसकर कहा—'अर्थात् एक नोटिस इस विषय का शिवलाल को देना चाहिये! यह तो नहीं, परन्तु मैं इसी तरह का कुछ और उपाय करूँगा।' भुजबल की इस बात के भीतर इतना आत्म-विश्वास भान हुआ कि ललित के हृदय में उसकी एकाग्रता के लिये एक आश्चर्य की गूँज उठी।

[२२]

अजितकुमार रतन के विवाह के बाद से नीरोग हो गया। छावनी में और कोई नौकरी अब तक नही मिली थी। एक ट्यूशन और मिल गई, परन्तु काम में जी नही लगता था, घूमने-टहलने में बहुत। बाहर से १००) मासिक वेतन का एक दिन बुलावा आया, परन्तु न मालूम उसने क्यों इस अच्छे वेतन वाली जगह को मजूर करने से इनकार कर दिया।

सदा कुछ चिता में घुटता हुआ सा दिखाई पड़ता था। कुछ थोड़े से लोगों से साधारण जान-पहचान हो गई थी। वे लोग उस साधारण परिचय को मित्रता मे परिणत करना चाहते थे, परन्तु अजित ने उनमें से किसी को भी प्रोत्साहन न दिया। एकाँतसेवन उसे अधिक अच्छा लगने लगा, और पहाड़ियों तथा निराले स्थानों में बैठे-बूढे मनन करना। समय तथा दूरी उसे कष्ट नही पहुँचाती थी।

मानसिक व्यथा की अवस्था मे वे स्थान और समय अधिक स्मरण हुये, जब और जहाँ मन को कोई विशेष आनन्द प्राप्त हुआ था।

जब वह सबसे पहले मऊ-सहानिया गया था, मार्ग मे पहाड़ी के नीचे बच्छे को दूध पिलाती हुई गाय उसने तेदुए के डर से नयेगाँव बस्ती की ओर भगा दी थी, और तागे में से उतर कर कुछ परिश्रम करने मे उसे सुख मिला था उस स्थान की याद आने पर फिर सहानिया जाने और महलों के पीछे वाली झील की लहरो को परखने की इच्छा मन में उठी। किसी अल्हड लड़की ने उसको रासधारी या गवैया कहा था, और इस पर उसके कुछ रिस भी उठी थी, परन्तु इस समय उस बालिका के चबाव का ध्यान उतना न आया, जितना उसके अल्हडपने और भोली-भाली सूरत का। सहानिया जाने की इच्छा में कोई कल्पना बाधक न हुई।

एक बार देखे हुये स्थानों को दुबारा बारीकी के साथ देखता हुआ चला गया, और सध्या से बहुत पहले महल के पीछे पहुंच गया। पहाड़ी के नीचे एक स्थान पर जा बैठा, जो झील से सटा हुआ और बिलकुल एकान्त था।

वैसी ही लहरें। उसी तरह की आंदोलित प्रकाश-रेखायें। नीलिमा और तरगें। पहाड़ियों की गोद मे निर्भय नाचने वाली जल-राशि। प्रमुदित तरलता। स्वरमय एकाँतता। ढका हुआ सौंदर्य और बँधी हुई उन्मुक्तता। झील पहाड़ों के घर में चंचल-सी जान पड़ती थी, परन्तु बाहर से केवल उसका अनुमान ही किया जा सकता था।

अजित ने अपनी जेब में से एक सुरक्षित चित्र निकाला, रतन का था। जैसे विकसित पुष्प।

अजित ने मन में कहा—'अधिष्ठात्री देवी है, और मैं पुजारी। पुजारी का देवी से व्यापक न होने की प्रार्थना करना अज्ञान है। देवी किसी मन्दिर में स्थापित हो, परन्तु पुजारी को उसका ध्यान करने-भर का अधिकार है। मूर्ति के दर्शन कभी हों या न हों, इससे क्या ? मैं मूर्ति के कभी दर्शन करूँगा ही नही। चित्र ही यथेष्ट है। यह भी न हो, तो क्या ? मेरे हृदय मन्दिर मे जो चित्र है, वह अक्षय है। इस चित्र को तो मैं अभी इसी जलराशि मे रख सकता हूं।' परन्तु थोडी देर वहाँ बैठने के बाद भी उस चित्र को अजित ने जलराशि के हवाले नहीं किया, प्रत्युत जेब में फिर लौटा दिया। सध्या होने मे अभी विलम्ब था, परन्तु दूर जाना था, इसलिये इच्छा न होने पर भी अजितकुमार उस स्थान को छोड़कर छावनी की ओर चल पड़ा।

जब वह भुजबल की ससुराल के सामने से होकर निकला, उसे एक अल्हड़, ढीठ लड़की का ख्याल हो आया। सामने से पूना उज्ज्वल पीतल का पानी भरा घडा सिर पर धरे कुएँ से आ रही थी। ढलते हुये सूर्य की सुवर्ण किरणें झलकते हुये पीतल के घडे पर रिपट रही थीं। पूना की बड़ी-बड़ी, भोली-भाली आँखें किरणों द्वारा और भी अधिक प्रभामय हो रही थी। दूर से अजित ने उसे नहीं पहचाना। सिर पर पीतल का घड़ा रक्खे हुये बालिका प्राकृतिक सौंदर्य का एक कौतुक है, परन्तु परिचितो को उसमें कोई विलक्षण विशेषता भासित नहीं होती, इसलिये अजित ने अधिक ध्यान नही दिया। पूना ने अजित को दूर से ही पहचान लिया। एक हाथ से घड़ा पकडे रही, और दूसरे से वस्त्र सँभाल लिया। बीच मार्ग छोड़कर एक किनारे खड़ी हो गई। पीठ फेर ली, परन्तु इतनी ही कि अजित को देख सके।

यह विचित्र व्यापार देखकर अजित का ध्यान आकर्षित हुआ। पहचान लिया। सोचा—'भुजबल इसका बहनोई है। मैं उसके मित्र की

हैसियत से आया था, इसलिये लाज कर रही है।' उसकी पूर्व धृष्टता पर मुस्कराकर बोला—'मैं रासधारी नही हूं। देखा, बाजा-बाजा कुछ भी नही लाया हूं।'

वहाँ उस समय कोई न था, परन्तु पूना ने कोई उत्तर नहीं दिया। अजित चला गया।

(२३)

भुजबल शिवलाल के पास मऊ गया। मऊ में उसका एक बड़ा मकान था। देहात मे जहा उसकी जमीदारी थी, वहाँ भी मकान थे, परन्तु वह रहता अधिकतर मऊ ही में था।

मऊ छोटा-सा खूबसूरत शहर है। व्यापार की मण्डी है। अधिकांश लोगो को अपने धन्धे से और कामों के लिये फुरसत नही मिलती। सबेरे सुखनई नदी मे, जिसके ठीक किनारे पर शहर बसा हुआ है, नहा-धोकर लोग अपने अपने काम मे जुट जाते है। जब इस चौड़ी नदी में बिलकुल पानी नही रहता, तब गड्ढे खोदकर काम चलाते है। परन्तु शिवलाल उन लोगों मे से था, जो नदी मे नहाने-धोने के लिये नही जाया करते।

भुजबल जैसे ही उसके पास पहुँचा, शिवलाल ने कहा—'नई शादी के नशे में कौन किसको पूछता है ? बहुत दिनों में खबर ली !'

भुजबल—'आपकी आज्ञा से तो सब काम किया। अब ऐसा उल्टा उलहना देते है।'

शिवलाल—'अरे भाई, नई बहू सबको बिसरा देती है। कहो, प्रसन्न तो हो ?'

भुजबल—'आपकी दया से। आप ?'

शिवलाल—'मेरी दया से क्यों प्रसन्न होने चले ? पहले अपनी बहू का कुछ हाल सुनाओ। टालने न दूंगा। कसम जवानी की। बोलो, रङ्ग-रूप कैसा है ?'

भुजबल ने जरा झेंपते हुये उत्तर दिया—'अच्छा है। खूब पढ़ी-लिखी है। गायन-वादन में भी कुशल है।'

शिवलाल ने मूछे चबाते हुये कहा—'क्या जानें भाई ! कभी सुनूं, तो मालूम हो। सुना है, उन लोगो मे पर्दा तो होता नहीं।'

भुजबल न मालूम क्यों हिल उठा। एक क्षरण बाद बोला—'पर्दा तो नहीं होता है, परन्तु ललितसेन के यहा आपने और मैंने एक बार गायन तो सुन लिया था।'

शिवलाल—'तो भी क्या हुआ ? एक बार पानी पी लेने से फिर क्या प्यास नही लगती ? तुम यार यों ही रहे।'

भुजबल—'खैर, सब पीछे देखा जायगा। मतलब की बात करिये। नालिशों की तारीखो का क्या होगा ?'

शिवलाल—'क्या होना है ? मैं तो अदालत मे जाऊँगा नही। इकतरफा डिग्रियां हो जायेगी। अदालत मे जाकर यह कहना कि इकमुश्त रुपया नही दे सकता, किस्तबन्दी कर दी जाय और साहूकार की खुशामद करना नीचो का काम है। इस समय मुझे नालिशो की फिक्र नही है। जब डिग्रीदार साले इजराय कराने आवे, तब कुछ ऐसी पेचदार काररवाई करना, जिसमे अपना अंगूठा चाटते रह जायें।'

भुजबल—'यह बात ठीक है। मैं भी समझता हू कि इस समय कुछ भी करना बेकार होगा।'

शिवलाल—'परन्तु और खर्चों के लिये रुपये की जरूरत इसी समय है। किसान बेईमान लगान नहीं दे रहे हैं। बुद्धा और पैलू फिर यहां आये थे। मेरा डेढ सेर आटा खाकर ज्यों के त्यों चल दिये। तुमसे हो सके, तो वसूल कर लेना। मुझे तो आशा कम दिखलाई पड़ती है।'

भुजबल—'ब्याह की विपद से तो निबट ही गया हूँ। अब बस यही करना है।'

शिवलाल—'यहा बलोची घोडे बेचने के लिये आये हुये है। दो घोडे मैंने पसन्द किये है। दो हजार में आवेगे। फिटन में बहुत भले मालूम होगे।'

भुजबल—'यह बड़ा कठिन प्रश्न।'

शिवलाल—'बलोची रोज आते है, और मुझे रोज आजकल आजकल करना पडता है। बेचारे मेरे लिये ही यहाँ पड़े हुये है, क्योंकि और किसी से कोई सौदा पटा नही है।'

भुजबल—'जमीदारी मे तो कुछ उगाही की आशा नहीं होती। बुद्धा और पैलू पर सैकडों रुपया इसी साल का बाकी है। पिछले साल की भी पूरी उगाही नही हो पाई थी। आजकल जमीदारी में कुछ फायदा नहीं रहा।'

शिवलाल—'मैं तो इस ससुरी को एक सेकड में अलग कर दूं, परन्तु रह-रह जाता हूं। बतलाओ भाई, रुपये के लिये क्या किया ? नही किया, तो कुछ कर भी सकोगे या नही ?'

भुजबल—'आशा तो है।'

शिवलाल—'आशा-ही-आशा मे सब दिन निकले चले जा रहे हैं। खर्च किसी तरह कम हो नहीं सकता, और जो लगे हुए थे, सो थे ही, चदे वालो ने अलग ऊधम मचा रक्खा है। एक बार चन्दा दिया था, बस, तब से फिर पीछा छुटाना मुश्किल हो गया है। कभी-कभी जी चाहता है कि कमबख्तों का रजिस्टर-वजिस्टर छीनकर सुखनई के किसी गड्ढे में डुबो दूं।'

भुजबल—'दस हजार रुपये मिल जाये, तो काम चल जाय। कर्जा निबट जाय, और घोड़े खरीद लिये जायें।'

शिवलाल—'हो कैसे ? तुम्हारे साले साहब रुपया दे सकते है, सो उन्होंने बहन तो तुम्हे दे दी, रुपया नही दिया। हो बड़े चण्ट। चुपचाप अपनी जन्म कुडली खपा दी। अगर मेरी जन्म कुडली मिल जाती, तो किसी की कुछ परवा न रहती।'

और खूब हँसा। भुजबल ने भी साथ दिया, परन्तु विषय जमने न पाया। बोला—'वह रुपया देने को तैयार हैं, परन्तु रहन नहीं रखते।'

'और भी अच्छा है।' शिवलाल ने तपाक के साथ कहा—'रहन से गाँव बचे रहे, तो आगे का सुबीता बना रहेगा।'

शिवलाल ने दबंगी के साथ कहा—'चाहे आधी के लिये कहो, चाहे जितने के लिये, परन्तु रुपया दस हजार जल्दी लाओ। एक बात की और गाँठ बाँध लेना, यदि तुम्हारी मेम साहब का गाना सुनने को न मिला, तो कसम जवानी की, चाहे जो कुछ नुकसान हो जाये, सारी जमीदारी को खाक करके बैरागी हो जाऊंगा, और तुम्हारी देहली के सामने जन्म-भर धुनी रमाऊंगा।' दोनों थोड़ी देर तक इस पर हँसते रहे।

(२४)

जिस तरह बरसात में नदी में बाढ बिना ढिंढोरा पीटे यकायक आ जाती है, उसी तरह कई पल्टनें नयेगाँव में बहुत थोडे दिनों के अतर मे आ गईं। बँगलों का किराया बढने लगा। उन्ही दिनो ललितसेन ने एक दिन खाना खाते-खाते अपनी बहन से कहा—'इतने बँगले नही हैं, जितनी कि माँग है। कुछ और बनवाने पड़ेगे।'

'बनवा लो।' रतन ने इस विषय मे बहुत रुचि न दिखलाते हुये कहा।

'लेन-देन के झंझट से छुटकारा मिल जायगा।'

'हूं।'

'और रुपया अच्छी संपत्ति मे लग जायेगा।'

'ठीक है।'

'और यह सब किराया अब तुम्हारे नाम से आया करेगा।'

रतन ने जरा चौककर कहा—'सो क्यों ?'

'सो क्यो ?' ललित ने प्रश्न को दुहराते हुये कहा—'बस, तुम्हारी ही चिंता है। मुझे तो कुछ सिर पर धर कर ले नही जाना है। प्रबधक का पचड़ा दूर हो जायेगा।'

ललित ने सोचा था कि रतन का चेहरा इस भविष्य साँपत्तिक सुख से खिल उठेगा, और बारीक निगाह से वह उसकी ओर देखने लगा।

ललित खिन्न हो गया। बोला—'उदास क्यों हो ?'

रतन ने अपने मलिन मुख पर मुस्कराहट को जबरदस्ती बुलाने की चेष्टा की। होठ के दोनों कोनो पर मुस्कराहट आई भी, परन्तु चेहरे की उदासी उस मुस्कान से और भी करुण हो गई।

ललित को भीतर-ही भीतर बड़ी पीडा हुई। उसने सोचा कि रतन सुखी नही है। क्यों सुखी नहीं है ? इसका कारण उसकी समझ मे अच्छी तरह न आया, परन्तु किसी आँतरिक दु:ख के लक्षण मौजूद थे। रतन मे विवाह के पूर्व की वह प्रफुल्लता नही दिखलाई पड़ती थी। जान पड़ता था, मानो किसी बोझ से दबी जा रही है। कई बार ललित ने यह बात देखी थी, परन्तु उसका ठीक कारण न पहले समझ में आया था, और न अब।

कुछ अटकल लगाकर ललित ने पूछा—'रतन, तू उदास क्यों रहा करती है बेटी ?'

'नही तो।' रतन ने मुस्कराकर कहा—'तुम भैया यह घर कब तक सूना रक्खोगे ? ब्याह कर लो, मैं हाथ जोड़ती हूँ तुम्हारे।'

'दुर पगली ! क्या जगत् में जितने आदमी पैदा हुये है, सब ब्याह करने के लिये जन्मे है, और क्या विवाह ही सुख की चरम सीमा है ?'

'यह सब शास्त्र तो मैं नही जानती, परन्तु अब यह घर सचमुच बहुत सूना मालूम होता है। न-जाने क्यों बुरा लगा करता है।'

'तुम्हें शायद यह चिंता लगी रहती है कि कही फिर लहचूरा-वहचूरा न जाना पडे, और इसी भ्रम में तपा करती हो। विश्वास रक्खो, घर के सूने छूट जाने की आशंका कभी फलवती न होगी। यहीं सदा रहना होगा। मेरे पीछे भी।' और, भोजन प्राप्त करके ललित बैठक में चला गया।

[२५]

शिवलाल के ऊपर साहूकारों ने जो नालिशें की थी, उनकी डिग्रियाँ बँध गईं। इनके पहले उन्हें अदालत के हुक्म इस्तनाई भी मिल गये थे कि मुकद्दमों के फैसले तक कहीं जायदाद हस्तान्तरित न करना।

तब शिवलाल के आमोद-प्रमोद में कुछ कमी आई, और उन्होने किसानों से लगान वसूल करने मे और अधिक कड़ाई से काम लेना शुरू कर दिया। परन्तु किसानों के पास रुपया न था, इसलिये उगाही बहुत थोड़ी हुई। खर्च के लिये रोज ही काफी रुपये की जरूरत रहा करती थी, इसलिये जो कुछ वसूल हुआ, वह उसी के लिये यथेष्ट न था, तब दूसरा सहारा ललित के धन के बदले में जमीदारी बेचने के सिवा और कुछ न सूझ पडा।

बहुत कठोरता का बर्ताव करने पर भी आसामियों से बहुत कम रुपया कई दिनों मे वसूल कर पाने के बाद भुजबल शिवलाल के पास आया। वैसे कुछ लोग मऊ मे शिवलाल की जमीदारी खरीदने को तैयार थे, परन्तु डिग्रियो और हुक्म इम्तनाइयों के झगडे मे न पड़ने की इच्छा से वे बातचीत करने से भी हिचकते थे। भुजबल और शिवलाल को यह बात मालूम थी। शिवलाल को भुजबल के कौशल पर विश्वास था। ललित और भुजबल के सम्बन्ध पर उसको और भी अधिक भरोसा था। नयागांव साहूकारो के लम्बे हाथो से कुछ दूर भी पड़ता था, इसलिये दोनों ने दीर्घकाल के निवास के लिये नयगाव को पसन्द किया।

स्थान ठीक कर लेने के बाद अकेला भुजबल ललित के पास गया। बहुत अहसान जताने की गरज से बोला—'अब की बार तो बडा सिर खपाना पडा।'

ललित ने पूछा—'काहे में ? काजीजी शहर के किस अन्देशे से दुबले हो रहे हैं ?'

दिल्लगी की परवा न करते हुये भुजबल ने उत्तर दिया—'वही शिवलाल की जमींदारी। अब छोड़िये मत। मुश्किल से राजी कर पाया है। वह यहीं आगये है। स्टाम्प मँगवाकर बैनामा करवा लीजिये, और मऊ में चलकर रजिस्ट्री।'

'नारदजी की चिंता का बस यही कारण है !' ललित ने बिना कोई उत्साह दिखाते हुये, परन्तु हसकर कहा—'जमींदारी खरीदने की अपेक्षा मैने एक और बहुत लाभपूर्ण बात सोची

भुजबल भीतर-ही-भीतर तिलमिला-सा गया ।

'कौन-सा लाभपूर्ण यत्न सोचा है ?' भुजबल ने पूछा ।

'कई नई पल्टने आ गई हैं ।'

'अच्छा !'

'बंगलों का किराया बढती पर है ।'

किसी दिन जब पल्टने चली जायेगी, तब गिर भी जायगा ।'

'प्रबन्ध में दिक्कत न होगी ।'

'यह तो कोई बात नही है ।'

'तुम्ही को प्रबन्ध करना है । सहज और सुगम रहेगा । दूसरे कामों के लिय काफी अवकाश मिलेगा ।'

'हारमोनियम का बजाना क्या अब कुछ ज्यादा तरक्की पर है ?'

'उसका बजाना इस समय अधिक न आता सही, किंतु किसी-न-किसी दिन अवश्य अच्छ आ जायगा । परन्तु हारमोनियम से और वर्तमान चर्चा से कोई सम्बन्ध नहीं है ।',

भुजबल ललित के स्वाभाव की दृढ़ता को जानता था । बोला–'तब क्या और बंगले बनवाइयेगा ? आप तो बड़ी आफत का सामान इकट्ठा कर रहे हैं ।'

ललित ने कहा—'अभी तो मन में यही आ रहा है । किराये की बंधी-बंधाई आय से जमीदारी का बखेड़ा किसी हालत में अच्छा नहीं हो सकता ।'

भुजबल ने सिर नीचा करके सोचते-सोचते कहा—'मैं बड़ी विषम समस्या में उलझ गया हूँ । आपकी स्वीकृत पाकर शिवलाल को जैसे-तैसे राजी कर पाया था । अन्य कई साहूकार उनकी जमीदारी

खरीदने के लिये सिर दिये फिरते है, मुश्किल से उन्हे टाल पाया। अब आप यदि नाही करते हैं, तो मैं शिवलाल को क्या मुँह दिखाऊँगा?'

ललित ने हँसकर कहा – 'खूब साबुन से मुँह धोकर शिवलाल के पास चले जाइये, और कह दीजिये कि दूसरे साहूकारों के हाथ उस इज्जत को बेच दे। साहूकारो को खरीदने के लिये तैयार करने में आपको बहुत समय न लगेगा।'

'परन्तु मैंने निश्चय किया है कि आप ही शिवलाल की जमीदारी खरीदें।'

भुजबल बोला—'मैं इस सम्पत्ति को भरसक हाथ से न जाने दूँगा। जमीदारी यहाँ से बहुत थोड़ी दूर है। प्रबन्ध में किसी तरह की गड़बड़ी नही पड़ सकती। बंगलों के बनवाने और निरन्तर बढ़ती हुई रकम प्राप्त करने की आशा मे दिमाग खराब करना बिलकुल व्यर्थ है।'

'और मैंने निश्चय किया है कि जमीदारी मे हाथ न लगाऊँगा और न लगाने दूँगा। जमीदारी यहां से थोड़ी दूर है, और बंगले बिलकुल नाक के नीचे। तुम्हे इस कारण रहना भी सदा यहाँ ही होगा।' ललित ने कहा।

भुजबल अपने निश्चय का रुख बदलकर बोला,—'परन्तु बङ्गलो के बनवाने की विधि जब तक बिलकुल पक्की न हो जाय, शिवलाल को अन्तिम जवाब न दिया जाय, मैं उसे तब तक अटकाये रखना चाहता हूँ।' भुजबल के स्वर मे बहुत विनय थी।

ललित ने कहा—'जैसी आपकी मर्जी, परन्तु मैं अपना निश्चय न बदलूँगा।'

[२६]

जब भुजबल लगान-वसूली के काम से लौटकर नयेगांव आया था, तब कुछ सिपाहियों को उगाही के काम पर छोड़ आया था, और हिदायत कर आया था कि वैसे न दें, तो खाल खींचकर लेना। पैलू और बुद्धा को वह किसानों का अगुआ समझता था, और उन्हे विशेष तौर पर अपना

ध्यान-भाजन बनाया था। सिपाहियों ने भी उन दोनों को मार-मारकर चूर कर दिया। तब शिवलाल का पता लगाकर दोनो नयेगाव आये। उन्हे देखकर शिवलाल का क्रोध अपने साहूकारों को भूल-सा गया। खूब गालियाँ देकर उसने कहा—'तुम्हीं लोगों ने हमे इस हालत में पहुंचाया है। तुम्हारे साथ जो रियायते मैंने की है, उसी का यह सब फल है।'

वे दोनो देर तक केवल अपना दुःख रोते रहे। भुजबल ललित के पास गया हुआ था। शिवलाल उसके उत्तर लाने की आशा बाँधे बैठा हुआ था, इसलिये इन किसानों के आने से उसे जितना हर्ष हुआ होगा, उसका अनुमान-भर किया जा सकता है।

थोड़ी देर में भुजबल आ गया। उसके चेहरे पर आशाजनक प्रफुल्लता तो न थी, परन्तु उदासी भी नहीं दिखाई पड़ती थी। भुजबल भाव बनाना जानता था। शिवलाल ने किसानों की उपस्थिति का ख्याल न करते हुय पूछा—'क्यों, क्या कहा ?'

भुजबल ने माथा सिकोडकर किसानों की ओर सकेत करके कहा—'ये बदमाश यहाँ भी आ पहुंचे ? इनके मारे नाकोंदम है। तुम लोग अब तक जीते हो ?'

पैलू बोला—'मरे के बराबर है। हम यह कहने आये हैं कि हमारे पास रुपया नही है। अपनी जमीन ले लो, परन्तु हमारे प्राण छोड दो।'

'न जमीन छोड़ेगे, और न तुम्हारे प्राण। देखें, तुम बचकर कहाँ जाते हो ?'

बुद्धा ने जमीन पर नाखून गड़ाते हुय कहा—'हम तो मरने को ही आये हैं। घर में एक दाना खाने को नही है। बाल-बच्चों-समेत हमको मार डालो। बडा पुण्य होगा।'

शिवलाल ने कहा—'साथ में कुछ खाना-वाना बाँधकर भी लाये हो या नही ? या हमारा सिर खाकर ही चैन लोगे ?'

बुद्धा बोला—'मालिक के घर आयेगे, और खाना साथ बाँध लायेंगे !'

भुजबल ने तमककर कहा—'आप ही ने इन पाजियों को बिगाड़ा है। जाओ यहाँ से। कोई सुनवाई न होगी।'

शिवलाल ने भी क्रुद्ध स्वर में कहा—'हटो! मैं कुछ न सुनूँगा। एक-दो सेर आटा हमारा खराब करने आये हो। खाओ-पियो, और काला मुँह करके चले जाओ।

भुजबल चकित दृष्टि से शिवलाल की ओर देखने लगा। पैलू ने कहा—'हम तो अब रियासत में जाते है, वही खेती-बारी करेगे। अपनी जमीन आप सँभालिये। अब और नहीं सहा जाता। उठ रे बुद्धा! चल। अभी दो कोस और चलना है।'

भुजबल ने कुछ विस्मित होकर पूछा—'कहाँ जा रहे हो?'

'जहाँ सीग समावे!' पैलू ने बेधड़क होकर कहा।

बुद्धा बीच में बोल उठा—'नातेदारी मे सिंगरावन जा रहे हैं। जो खेती पाती का कुछ ठीक हो गया, तो वही रहेगे।'

'अच्छा, जाओ। निकलो! हटो!' भुजबल तडपकर बोला।

शिवलाल ने कुछ नरम होकर कहा—'खैर, इन्हे एक चिलम तंबाकू पी लेने दो। फिर चाहे भाड़ में चले जायें।'

बुद्धा इतना आश्रय पाकर चिलम तैयार करने लगा। उसका अधीर साथी किसी आंतरिक भाव या व्यथा के कारण काँप रहा था। उसकी आंखें लाल थी, परन्तु चिलम पीने के लिये ठहर गया।

शिवलाल ने भुजबल से पूछा—'उधर का क्या हाल है?'

देखा कि शिवलाल जानने के लिये व्यग्र हो रहा है, तब भुजबल ने मन के भाव को दबाकर कहा—'बुरा नहीं है। मैंने उनसे बातचीत की थी। उनकी तबियत कुछ अस्वस्थ है। कुछ दिन ठहरने को कहा है।'

'क्या हर्ज है?' शिवलाल बोला—'कुछ दिनों मे बिगड़ता ही क्या है? साहूकारों की डिग्रियों की इजराय बहुत जल्दी तो नहीं हो सकती। यदि जायदाद को नीलाम पर चढाना चाहेंगे, तो नये गाँव में इत्तिलानामा की तामील के लिये बहुत दिन चाहिये। तब तक सब ठीक हो जायगा।

बलोचियों के घोड़े अवश्य अब न मिलेंगे; वे बेचारे निराश होकर चले भी गये होगे। जब रुपया हाथ मे आ जायगा, बहुत घोड़े हो जायँगे।'

शिवलाल को इतना आशामय देखकर भुजबल को कुछ संतोष हुआ परन्तु उन दोनों किसानों की वहां पर उपस्थिति भुजबल को बहुत खटक रही थी, और उनके समक्ष अपनी सांपत्तिक अवस्था का नंगा वर्णन। किसानों से बोला—'सिगरावन मे किसके पास जाओगे ?'

पैलू ने उत्तर दिया—'अभी कुछ ठीक नही है।'

बुद्धा बोला—'नातेदार है। उनके यहां जायँगे।'

भुजबल ने गर्व के साथ कहा—'हमारे नातेदार वहाँ पर भी हैं। हम वहाँ पर भी तुम्हे समझेंगे।'

'तुम हमें कच्चा चबा लेना।' पैलू ने निर्भीकता के साथ कहा—'ऐसा अन्याय उस रियासत में न होगा, जैसा तुमने मचा रक्खा है।'

बुद्धा ने भुजबल और शिवलाल के कोप का अंदाजा लगाकर पैलू को रोकते हुये कहा—'चुप क्यों नही रहता ?'

भुजबल की आँख से सचमुच कम-से-कम पैलू को कच्चा चबा लेने का भाव टपक रहा था।

उसने बात बदलकर शिवलाल से कहा—'सिगरावन में रिश्तेदारी में एक ब्याह हाल ही में है। दो दिन के लिये तब तक मैं वहाँ हुये आता हूँ। तब तक बाबू ललितसेन का ठीक-ठाक हो जायगा।'

'मैं यहां पड़ा-पड़ा क्या करूँगा ? मेरे लिये निमंत्रण होता, तो मैं भी तुम्हारे साथ चलता। देहात की सुन्दरियो की भी सैर हो आती।'

भुजबल ने उत्साह के साथ कहा—'निमन्त्रण तुरन्त आ जायगा। आपका कुछ दूर का रिश्ता भी उन लोगों से होता है।'

शिवलाल ने प्रस्ताव किया—'पैलू और बुद्धा भी वहीं जा रहे हैं, हमारा सामान लिये चलेंगे।' पैलू चुप रहा।

बुद्धा ने कहा—'बहुत अच्छा। हम मालिक के साथ चलेंगे।'

शिवलाल ने दोनों रुख रखते हुए कहा-'तुम लोग बदमाशी न करो, तो कुछ दुश्मन थोडे ही हो। खाना-वाना खा लो। कल चलेगे।' भुजबल ने अपने हाथ से निमन्त्रण लिखकर शिवलाल को दे दिया।

[२७]

जाति के सम्पत्तिशाली लोगों को साधारण जन दो कारणों से विवाहों के अवसर पर निमंत्रण देते हैं। एक तो यह कि सब लोग यह जान जायें कि बड़े-बड़े लोगों से रिश्ता है, और दूसरे यह कि आराशय और सजाने का सामान उनके यहाँ से मिल जाता है। बहुतेरों की इच्छा निमंत्रण देने पर यह भी रहती है कि सामान तो अवश्य मिल जाय, परन्तु यदि निमंत्रित बृहज्जन आने की कृपा न करे, तो अच्छा। उनकी आवभगत में ही सारे आदमी और सामान लग जायेगे।

सिगरावन में भुजबल की सास का मायका था। उनके यहाँ लड़की का ब्याह था। भुजबल के पास निमत्रण आया, और ललितसेन के यहाँ भी। ललितसेन भुजबल का साला था, और उनके यहाँ चांदनी और चन्दोबे थे।

वैसे इस तरह के निमन्त्रणो में ललित बहुत ही कम जाया करता था, परन्तु भुजबल के आग्रह पर तैयार हो गया। शिवलाल भी जा रहा था, इसलिये भुजबल के आग्रह मे कुछ विशेष दृढ़ता थी, परन्तु ललित को न मालूम था कि शिवलाल किराये की धूमधाम के साथ एक साधारण गृहस्थ की लड़की के विवाह में शरीक होने जा रहा है। घर से चल देने पर उसे यह बात मालूम हुई।

तीनों आदमी एक शिकरम में गये। पैलू और बुद्धा भी साथ थे। उन्हें कोई सामान नहीं लादना पड़ा, और न शिवलाल ने वास्तव में उन लोगो को इस प्रयोजन से अटकाया ही था। उसने इन लोगों को अपनी महत्ता में सहायक होने के लिये ही रोक लिया था।

सिगरावन नयेगाँव छावनी से करीब दो कोस था, परन्तु यह छोटी सी यात्रा भी ललित को बड़ी मालूम हो रही थी। उसके साथ बातचीत

करने की इच्छा शिवलाल के मन में न थी; और न किसी के साथ बातचीत करने की इच्छा ललितसेन के मन में ही थी। परन्तु कदाचित् बातचीत करने से इतनी थकावट नहीं जान पड़ती, जितनी चुप रहने में मालूम होती है। भुजबल ने पहले तो इस सर्वव्याप्त चुप्पी का साधन शिकरम की खड़खड़ाहट को निर्धारित करके अपना मन समझा लिया, परन्तु अधिक समय तक तबियत को काबू मे न रख सकने के कारण वह ललितसेन से बोला—'आपको देहात में जाने का बहुत कम मौका मिलता है। शिकरम में तबियत परेशान ही उठी होगी।'

ललित ने अन्यमनस्क होकर कहा—'ऐसा तो कुछ नहीं है। वहाँ कितने दिन ठहरना होगा ?'

शिवलाल बोला—'देहात से इतना भयभीत होने से कैसे काम चलेगा ? आखिर लहचूरा की तरफ जमींदारी देखने के लिये तो आपको अक्सर जाना ही पड़ेगा।'

किसी कुरङ्ग का खयाल करके भुजबल ने विषयधारा को तुरन्त पलटते हुये कहा—'आज रात को टीका हो जायगा। दरवाजे की शोभा करके सवेरे लौट आइयेगा।'

शिवलाल के मन में जो था, वह इस तरह निरुद्ध नहीं किया जा सकता था।

वोला—'भाई, हम तो न्यौता पूरा करके आवेंगे। जब तक भोजन के समय स्त्रियों की दो चार गालियों से कान पवित्र न कर लेंगे, दम न लेंगे। आप लहचूरा से भी क्या इसी तरह असमय ऊब-ऊबकर चले आया करेंगे ?'

ललित ने रुखाई के साथ कहा—'लहचूरा से मुझे मतलब ही क्या रहेगा ?'

'यह लीजिये।' शिवलाल ने उङ्गलियाँ घुमाकर आश्चर्य प्रकट करते हुये कहा—'अभी बैनामा नही हुआ, तब तो इतनी अरुचि है, जब बैनामा हो जायगा, तब शायद लहचूरा के नाम से ही नफरत हुआ करेगी।'

ललित ने शिवलाल की आँख मे खूब आँख मिलाकर कहा—'काहे का बैनामा ? किस तरह का बैनामा ?'

भुजबल की आंख मे निवारण करने के अभिप्राय से जितनी विनय आ गई थी, उतनी शायद ही पहले कभी देखी गई हो। परन्तु उसका कुछ फल न होते देखकर बोला—'यह समय किसी बैनामे की बातचीत के लिये उपयुक्त नही मालूम होता। और; इस समय तो हम लोग सिंगरावन चल रहे है, लहचूरा की बातचीत से संबध ही नही है।' फिर ललित से प्रश्न किया—'आप कभी पहले सिंगरावन गये है ?'

ललित ने केवल सिर हिलाकर नाही कर दी।

फिस उसने तुरन्त शिवलाल से कहा—'आप भी कभी न गये होंगे। सिंगरावन मे कोई खास चीज तो नही है, परन्तु एक पुराना तालाब है। सुनते है, चदेलों का बनवाया हुआ है। आपको इतिहास का शौक है ?'

शिवलाल का शौक इतिहास के सम्बन्ध मे शायद अपनी दो एक पीढियो के नाम से भले ही रहा हो, परन्तु इससे अधिक न तो वह इतिहास को जानता ही था, और न जानने की इच्छा थी। इतिहास की ओर किया हुआ विषयातर उसे अच्छा नहीं लगा। ललितसेन की भी विशेष रुचि न थी। वह चुप था। शिवलाल के जी मे जो बात खटक रही थी, उसने कही – 'आपसे क्या भुजबल ने मेरी जमीदारी के बैंनामे के विषय मे कुछ भी नही कहा ?'

भुजबल ने आँख से यथाशक्ति और यथासमय रोका, परन्तु ललित में रुकने की आदत न थी। बोला—'बहुत किया, परन्तु मेरा मन नही भरता। मैं किसी किस्म की जमींदारी नहीं खरीदना चाहता।'

किसी तरह से निवाह न होता देखकर भुजबल ने शिवलाल से मुँह फेरकर कहा—'आप हरएक बात मे जल्दी करते है, और समय-कुसमय कुछ नही देखते है।'

बारूद में आग पड़ चुकी थी। शिवलाल अप्रतिहत भाव से बोला–'मैं क्या मुफ्त में रुपया लेना चाहता हूं ? दो पैसे लूँगा, तो चार पैसे की चीज भी तो दूँगा।'

'मुझे एक पैसे में सौ की भी जमींदारी नहीं चाहिये।' ललित ने शांत और अव्याकुल चित्त से कहा।

शिवलाल रुष्ठ स्वर में बोला—'आपके कोई हाथ थोड़े ही जोड़ता है।' और, सड़क की ओर मुँह करके देखने लगा।

ललित ने कोई उत्तर नही दिया। भुजबल कुछ कहना चाहता था कि एक ओर टहलता हुआ अजितकुमार दिखलाई दिया। वार्तालाप के लिये अच्छा विषय पाकर भुजबल ने ललित से कहा—'मास्टर साहब कहा से आ रहे होंगे ?'

भुजबल को ललित का अतीत व्यवहार न मालूम था।

ललित ने कहा—'आते होंगे। हमसे इनका कोई सम्बन्ध नही है।'

शिवलाल ने अपमान का बदला चुकाने ने लिये भुजबल से कहा—'यह आदमी तो बहुत अच्छे है।' पास आने पर शिवलाल ने बहुत थोड़ी जान-पहचान पर भी अजित को प्रणाम किया। उसने न पहचाना, इसलिये विशेष ध्यान के साथ शिकरम की सवारियों को देखा। भुजबल ने प्रणाम किया। अजित ने उत्तर दिया, और कुछ कहना ही चाहता था कि ललित को देखकर चुपचाप सिर अकड़ाकर दूसरी ओर चल दिया। शिकरम वाले किसी मानसिक युद्ध मे निमग्न सिगरावन चुपचाप चले गये।

(२८)

संध्या से पहले ही ये लोग सिगरावन पहुंच गये। जिनके यहां बारात आने वाली थी, वे लोग बारात की अगवानी की तैयारी में व्यस्त थे, परन्तु इन आगन्तुकों की खातिर बारात से बढ़कर करनी पड़ी। पास ही के एक घर को तुरन्त साफ कराकर डेरा डलवाया गया।

जब तक वह घर साफ नही किया गया, तब तक दरवाजे से लगे हुये चबूतरे पर आगन्तुकों को अच्छे आसन पर बिठला दिया गया। चबूतरे पर नीम का पेड़ था, छाया थी। वैसे ही सूर्य ढल चुका था।

दरवाजे के पास से आगन्तुकों को दो लड़किया देख रही थीं। एक तो सात-आठ बरस की थी, जिसका विवाह होने वाला था। तरह-तरह के बड़े और मोटे आभूषणों से लदी हुई, जैसे दो बरस का लँगड़ा आम पहली ही फसल में बड़े-बड़े फलों से लद जाये। दूसरी पूना थी। मामा की लड़की के विवाह में मां के साथ न्योते में आई थी।

जब तक डेरे वाले, मकान की सफाई होती रही, तीनों आगन्तुक चुपचाप चबूतरे पर बैठे रहे। आसपास के छोटे-छोटे अनाकर्षक घरों के छान-छप्पर देखते-देखते जब उनकी आंखें थक गईं, तब उस दरवाजे की ओर गईं। भुजबल को इस ओर मुंह फेरते देखकर पूना मुस्कराई। भुजबल ने देखा, पूना थोडे ही समय में कुछ अधिक बड़ी पड़ने लगी है, और रंग निखर रहा है। ललितसेन को वह अनोखे सौदर्य की प्रतिमा सदृश्य जान पड़ी। परन्तु उसने एक बार अच्छी तरह देख लेने की चेष्टा करके तुरन्त अपना मुँह मोड़ लिया। शिवलाल अनिमेष नेत्रों से देखने लगा। उसको देखकर पूना वहां से हटकर भीतर चली गई। उसके मामा की लड़की वहां से नहीं हटना चाहती थी। पूछा—'जिज्जी, जे को आएँ?'

इधर ललितसेन ने अपने मन मे कहा—छोटे से गांव मे इतना बड़ा सौदर्य? यह कौन होगी?'

शिवलाल ने भुजबल का हाथ दबाकर चुटकी ली। ललित दूसरी ओर मुँह किये था। उपयुक्त अवसर समझकर शिवलाल ने कुटिल मुस्कराकट के साथ एक आंख का कोना जरा दबाकर इशारे में भुजबल से पूछा—'यह कौन है?'

स्पष्ट प्रश्न न होने पर भी भुजबल को समझने मे देर न लगी, और उसके कलेजे मे आग-सी धधक गई। दूसरी ओर मुँह फेर लिया। शिवलाल ने फिर चुटकी लेकर अपनी ओर उसको सम्मुख किया, और

फिर उसी तरह एक आंख का कोना दबाकर खूब सिर हिलाया। शिवलाल ने पूना को मुस्कराते हुये देख लिया था। उसका कुछ अर्थ लगाकर शिवलाल ने भुजबल की ओर कनखियों से देखकर फिर सिर हिलाया, और जरा-सा खाँसा। भुजबल ने शायद ही कभी ऐसा जलाने वाला मूक व्याख्यान सुना हो।

(२६)

पूना को मालूम हो गया कि पास वाले मकान में भुजबल को डेरा मिला है। परन्तु उतावली मे उसे यह मालूम न हुआ कि उसके साथ ही दो मनुष्यों को भी वही स्थान दिया गया है।

बहनोई से बात करने के लिये माँ का आदेश लेकर पहुँची।

अँधेरा हो गया था। दीपक जल गये थे। भुजबल बैठा था। ललित और शिवलाल लेटे थे। पूना ने नहीं देखा। बोला—'जीजाजू, आप अच्छी तरह है?'

भुजबल थोड़ी सी बात करके उसको वहाँ से बिदा करना चाहता था। उत्तर दिया—'बहुत अच्छी तरह हूँ। मां मऊ से आई है?'

'हाँ, आई हैं। आपने तो हम लोगों की सुधि ही बिसार दी है। उन्होंने बुलाया है।'

'अभी आता हूं। तुम चलो'

'जिज्जी कहां है?'

अन्तिम बात उसने बड़ी मिठास के साथ पूछी।

शिवलाल हाथ के सहारे अध बैठा सा हो गया, और ललित ओट में से देखने लगा।

वैसे पूना कुछ और बात करने के लिये ठिठक रही थी, परन्तु शिवलाल को बैठते देखकर तुरन्त वहां से चल दी।

शिवलाल ने पूछा—'यह कौन है?'

ललितसेन ने पूछा—'यह कौन थी?'

भुजबल ने उत्तर दिया—'यह मऊ सहानिया वाली मेरी साली है। इसके मामा की लड़की का ब्याह है।'

ललित फिर आराम से लेट गया। भुजबल बैठ गया।

शिवलाल बोला—'इसका ब्याह नहीं हुआ ?'

'नही, अभी तक कही जन्म-कुँडली नही मिली है।'

'अभी तक ?' शिवलाल ने कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुये कहा—'ऐसी लड़की के साथ विवाह करने के लिये तो चाहे जो कोई तैयार हो जायेगा।'

भुजबल ने ललित को संबोधन करके कहा—'आपके यहां जो मास्टर थे, उनके साथ कुँडली मिली थी, परन्तु उसकी माँ ने पसन्द नहीं किया।'

ललित ने कुछ जोश के साथ मत प्रकट किया—'बहुत अच्छा किया। अजितकुमार-सरीखे काँटे के साथ इस फूल का मेल नही बन सकता "

'काँटा !' भुजबल ने कहा—'आदमी देखने मे तो अच्छा मालूम होता है।'

ललित ने जोर देकर कहा—'उसकी चर्चा छोड़ो। कोई और घर देखो।'

भुजबल कुछ मजाक के ढग पर बोला—'आपके साथ इसकी टीपना मिल गई थी, परन्तु आपने स्वीकार ही नही किया।'

'किसके साथ मिली थी ?' ललित ने कहा। फिर तुरन्त अपने प्रश्न पर मन में खीझकर बोला—'मुझे तो विवाह करना ही न था।'

शिवलाल ने प्रस्ताव किया—'मेरे सन्तान नहीं होती है। यदि जन्म-पत्री मिल जाये, तो मैं विवाह करने के लिये तैयार हूँ।'

इस पर ललितसेन स्वभाव-विरुद्ध बहुत जोर से हँसा। देर तक हँसा, परन्तु कुछ बोला नहीं।

शिवलाल चिढ़ गया।

बोला—'मैं न तो हँसी कर रहा हूं, और न हँसी की कोई बात ही कह रहा हूं। यदि उसकी माँ की इच्छा हो, तो मैं राजी हूं।'

भुजबल ने धीरे से कहा—'आपके साथ जन्म-पत्री नहीं मिलेगी।'

शिवलाल—'बिना मिलान किये ही कह दिया।'

भुजबल—'उसकी माँ भी न मानेगी।'

शिवलाल—'उनसे पूछो तो।'

इस पर फिर ललितसेन जोर से हँसा। भुजबल ने उसे इतना हँसते हुये कभी न देखा था। हँसी और जमुहाई का कायदा है कि छूतैले रोग की तरह फैलती है।

भुजबल भी हँसा। बोला—'बुढ़ापे में तमाशा कराइयेगा क्या?'

शिवलाल ने डपटकर कहा—'कौन मुझे बुड्ढा कहता है?'

भुजबल ने कहा—'कोई संदेह नहीं करता, परंतु अपनी-अपनी रुचि तो है।'

शिवलाल झूमने लगा, और मूँछों पर ताव देकर कुछ सोचने लगा। चारों ओर हँसी की आँधी देखकर वह भी जबरदस्ती हँसकर भुजबल से बोला—'क्या तुम अपनी पीवट की फिक्र में हो? दूसरा विवाह करोगे?'

ललितसेन की हँसी बन्द हो गई। चिहुंककर उठ बैठा। फिर एक क्षण बाद लेट गया। कुछ देर सन्नाटा रहने के बाद भुजबल ने कहा—'मुझे बुलाया था। मैं थोड़ी देर मे आता हूँ।' वह गया, और उसके पीछे दिसा के लिये ललित और शिवलाल भी चले गये।

(३०)

भुजबल थोड़ी देर में अपनी सास के पास से लौट आया। पूना के मामा के यहाँ जो रिश्तेदार आये थे, उनमें से कई लोग बारात के दरवाजे पर आने के पहले ललितसेन के डेरे पर बातचीत के लिये आये। बातचीत के विषय—कौन कहां ब्याहा है, किसके साले के कितने लड़के हैं, लड़कियों के लिये जन्म कुँडलियों की आवश्यकता है; इत्यादि थे। सबको

मालूम था कि ललित कुंवारा था, परन्तु फिर—फिर उसी बात को खोद-खोदकर आश्चर्य प्रकट किया जाने लगा।

इतने में बारात आ गई। जनवासा, पौनछक की पूड़ी इत्यादि महत्व-पूर्ण विषयों पर खूब लड़ाई-झगड़े होने के बाद पौने पांच बजे सवेरे दूल्हा टीका के लिये आया। तब तक भुजबल और शिवलाल ने एक-एक नींद ले ली थी, परन्तु ललितसेन न सोया था।

टीके का रमतूला बजने और बुलाने के कोलाहल होने पर भुजबल और शिवलाल जाग उठे, और टीका देखने के लिये गये। बारातियों को ललितसेन के आने की सूचना मिल गई थी। अहम्मन्यता पर उनके कौतूहल का जितना दबाव पड़ सका, उतने से उन लोगों ने ललित की ओर झांका-झूंकी की। ललितसेन कभी-कभी एक-एक इधर-उधर दृष्टिपात कर उठता था; जैसे किसी को खोज रहा हो। एक ओर भुलबल को ले जाकर उससे कहने लगा—'यह गोल-माल, धूम-धड़ाका, शोरगुल और खलबली कुछ बुरी नहीं मालूम पड़ती। कितने आदमियों के हृदय में इससे उमंगें भर रही होंगी।'

भुजबल ने ऐसे विषय पर इतना उत्साह दिखलाते हुये ललित को न देखा था। बोला—'हम देहाती अपना भाग्य सराहते हैं कि यहां कुछ तो आपको पसंद आया।'

'मैं भी तो मनुष्य हूं।'

'मेरा यह खयाल था कि विवाह और विवाह से संबंध रखने-वाली सब धूम-धाम से आपको नफरत है।'

ललित ने हँसकर पूछा—'तुम्हें भीतर किस लिये बुलाया था ?'

'क्या बतलाऊँ, बड़ी आफत में हूँ। पूना की मां ने जन्म-कुंडली का तकाजा अब की बार बहुत रोकर किया है। प्राणों पर आ बनी है। दो-तीन महीने के भीतर वह पूना का ब्याह कर देना चाहती है। उनकी

बहुत अभिलाषा थी कि आपके साथ पूना का विवाह कर दिया जाता, परन्तु आपने तो उस प्रस्ताव को ही असंभव कर दिया है।'

'क्यो ?' ललितसेन ने कहा, और फिर तुरन्त अपने को सुधारते या सँभालते हुये बोला—'अर्थात् हाँ, मैंने यह कहा था कि विवाह न करूँगा।'

'वही तो।' भुजबल ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा—'आपने अब ऐसा सम्बन्ध स्थापित कर लिया है कि हम लोग जबरदस्ती भी पूना का ब्याह आपके साथ करना चाहे, तो नहीं कर सकते।'

ललितसेन चुपचाप भुजबल के मुंह की ओर देखने लगा। एक क्षण बाद दूर खड़े हुये बारातियों की ओर दृष्टि फेर दी।

भुजबल कहता चला गया—'अब मुझे सचमुच पूना की बहुत चिंता लग रही है। कुंडली कहीं मिलती नहीं है। शिवलाल सरीखे लोग तो मिल सकते है, परन्तु योग्य वर नही मिलता।'

'शिवलाल ?' ललित ने कुछ भयंकर स्वर में कहा—'वह गधा, बूढ़ा बैल ! और शायद एक स्त्री के घर में होते हुये भी !'

'खैर, यह तो कोई बात नहीं है। एक स्त्री के होते हुये भी दो-दो, तीन-तीन विवाह हो जाते हैं। रीति और धर्म के खिलाफ इसमें कोई बात नही है। अपनी समाई के ऊपर निर्भर है।'

'कदापि नही। नैसर्गिक नियम के बिलकुल विपरीत है।'

भुजबल ने कुछ दृढ़ता के साथ कहा—'लाला, मैं यह नहीं मानता, नैसर्गिक नियम के विरुद्ध होता, तो शास्त्रो में इसकी मनाही होती।'

ललितसेन ने पूछा—'तब क्या यह कह आये हो कि इस गिरगिट के साथ उस गरीब लड़की को बरबाद करोगे ?'

भुजबल ने हँसकर कहा—'मै ऐसा बेवकूफ नही हू, परन्तु हैरान हूं कि क्या करूँ।'

ललित ने आश्वासन देते हुये कहा—'नयेगाँव चलकर इस विषय पर अच्छी तरह विचार करेंगे, तब किसी के साथ कोई बात पक्की न करना।'

भुजबल ने तुरन्त स्वीकृति देते हुये उत्तर दिया—'बहुत अच्छा।'

भुजबल को ढूढते-खोजते इस अवसर पर शिवलाल आ गया। ललित अंधेरे में खड़ा था। उसने उसको पहचान नहीं पाया।

बोला—'बडे उस्ताद दिखाई देते हो, किसकी टोह लगा रहे हो।'

'आपको देख रहा था।' भुजबल ने हँसकर स्थिरता के साथ उत्तर दिया।

'अरे रहने दे यार ! हमारी टोह में काहे को खड़ा होगा ? कसम जवानी की, ऐसी खूबसूरत साली-सलहजों की दुनियाँ में रहते टोह न लगाना ही अचम्भे की बात होती।'

'चलिये, डेरे पर चलें।'

'क्या उड़ाते हो ? डेरे पर तो चलेंगे ही। हम सच कहते हैं, दो घोड़ों या दो गाड़ियों की सवारी अकेले न करने पाओगे। अपनी साली के साथ जन्म-पत्री मिलवा दो, तो जिन्दगी चैन से गुजर जाये।'

अपरिचित आदमी की उपस्थिति में इस तरह की बात करना शिवलाल के संकोच के दायरे में न था। कुछ और कहता, परन्तु ललित-सेन बीच में बोल उठा—'इस तरह बेहूदगी सुनने का मुझे अभ्यास नहीं है। मैं डेरे पर जाता हूं।' और, वह वहाँ से चला गया। शिवलाल जरा-सा सन्नाटे मे आ गया, परन्तु बहुत ही थोड़ी देर के लिये।

ललितसेन के चले जाने के बाद कुपित स्वर में भुजबल से बोला—'तुम्हारे साले साहब अपने को न मालूम किस मर्ज की दवा समझते हैं। यदि तुम्हारे साले न होते, तो गुस्सा तो इतना आ गया था कि यहीं गला दबा देता। मालूम नही, किस बात की ऐंठ मे भँजे चले जाते हैं।'

भुजबल ने एक क्षण कुछ सोचकर कहा—'बात सीधी-सी है। मेरी साली रिश्ते मे उनकी बहिन होती है। हँसी-मजाक की मंडली में वह

कभी बैठे-उठे नही है, इसलिये आपे से बाहर हो गये। आपको भी इस तरह की दिल्लगी उनके सामने नही करनी चाहिये। चलिये, बारात अब जनवासे को जाने के लिये है। हम लोग भी आराम करें।'

दोनों डेरे पर गये, और चुपचाप जा लेटे। सबेरे देर तक सोते रहे। जब आँख खुली, तो एक कोने में पैलू और बुद्धा को बैठे देखा। ललित पहले ही जाग पड़ा था, या सोया ही नही था, सो नही कहा जा सकता।

शिवलाल को जागते देखकर पैलू ने कहा—'हमारे लिए हुक्म हो जाये। लगान अगले साल ले लिया जाये, तो बच जायेगे, नही तो बस समझ लीजिये कि घर-बार तो सदा के लिए छूट ही चुका है।'

शिवलाल ने जरा जोर से और राजाओं-जैसी शान दिखलाते हुये कहा—'बारात से लौटकर जब हम नयेगांव जायें, तब दो-एक दिन पीछे आना। हम वहाँ तुम्हारा इंसाफ कर देगे। हमारे मुख्तार साहब भी वहां होंगे। अभी जाओ, घबराओ मत।' ऐसी मीठी बात उन किसानों ने अपने जमीदार से बहुत दिनों से नहीं सुनी थी। बहुत प्रसन्न होकर चले गये।

(३१)

न्योता करने के बाद शिवलाल नयेगाँव छावनी को लौट आया। ललितसेन से रुपया पाने की उसे आशा न थी, परन्तु उसे विश्वास था कि झांसी जिले के साहूकार नयेगांव में बहुत दिनों के बाद कहीं तंग कर पावेंगे। इसके सिवा भुजबल पर सिंगरावन से लौटने के बाद कुछ अधिक स्नेह हो गया था। ललितसेन भुजबल को छावनी छोड़कर जाने नहीं देना चाहता था, और न भुजबल के पास कोई विशेष कारण छावनी छोड़ने का था ही। वह ललित के पास एक ही मकान में रहता था। उसका दिन का अधिकांश समय शिवलाल के पास कटता था।

लौटने के एक ही दो दिन बाद संध्या के पहले शिवलाल नयेगाँव–छत्रपुर सड़क पर हवा खाकर वापस आ रहा था। इधर से अजितकुमार मिल गया। भुजबल के द्वारा थोड़ा-सा परिचय हो गया था। परन्तु

शिवलाल उन लोगों में से था, जो थोड़े से परिचय को गाढ़ी मित्रता के रूप मे देखा करते हैं। इसके सिवा शिवलाल का यह विश्वास था कि वार्तालाप की कला में उससे बढ़कर बहुत कम लोग निकलेगे। इसलिये अजित को आगे बढने से रोककर बोला—'बंदगी अर्ज मास्टर साहब। अकेले-अकेले हवाखोरी का मजा आप खूब लूटा करते हैं।'

कुछ मनचले लोग अपना विद्या-दंभ स्वल्प परिचितों पर उर्दू-भाषा के द्वारा जान-बूझकर दिखलाया करते हैं। अजित ने इस दंभ का प्रतिवाद न करते हुये मुस्कराकर कहा—'मुझे एकांत-सेवन बहुत भला मालूम होता है। आप भी तो अकेले ही कही से आ रहे हैं।'

'यह बात सच है कि तखलिये में तबियत को बहुत फरहत मिलती है। आप तो कभी मिलते ही नही।'

'समय नहीं मिलता।'

अजित बात को समाप्त करके वहां से जाना ही चाहता था कि दो आदमी शिवलाल के पास आकर खड़े हो गये। एक बोला—'आपका नाम ?'

शिवलाल ने बड़ी दबंगी के साथ उत्तर दिया—'बाबू शिवलाल जागीरदार।'

'लहचूरा के।'

'हाँ जी, फिर।'

'आपके नाम एक अदालती नोटिस है। इसे लीजिये।'

बाबू शिवलाल जागीरदार का दंभ चल बसा। वे दोनों कचहरी के चपरासी मालूम होते थे। शिवलाल को नोटिस लेना पड़ा।

चपरासी ने गवाही के दस्तखत के लिये अजितकुमार से कहा। उसने सोचा—'कहाँ झंझट में पड़े।' परन्तु गवाही कर दी। चपरासी अकेले न थे। उनके पीछे-पीछे एक और आदमी भी जरा दूरी पर खड़ा था। उसी के साथ वे लोग लौट गये, और शिवलाल तथा अजितकुमार तखलिये में एक दूसरे के सामने खड़े रह गये।

अजित ने शिवलाल से पूछा—'यह क्या नोटिस था, जिसके दूसरे पर्त पर मेरी गवाही कराई गई है ?'

'एक इत्तिलामाना है।'

'वैसे तो मुझे कोई प्रश्न करने का अधिकार न था, और न किसी के रहस्यों के भीतर प्रवेश करने की मेरे मन में इच्छा ही रहती है, परन्तु जब मेरे दस्तखत लिये गये हैं, तब थोड़ा-सा जान लेना चाहता हूँ।'

शिवलाल ने संक्षेप में पहले अपनी बड़ी जमीदारी की हद बतलाई, और फिर लम्बे कर्जे को छोटा बतलाने की चेष्टा की, परंतु यह निःसकोच कह दिया कि रुपये की जरूरत है, और उसी के अनुसंधान में छावनी में रहना पड़ रहा है। रुपये के मामले में शिवलाल ललितसेन से निराश हो चुका था, परन्तु अपने किसी भी परिचित से या उसके द्वारा रुपये पाने की आशा उसके भीतर बलवती हो गई थी, इसीलिये उसने अपनी कथा के इस भाग को कुछ अधिक समय दिया।

अजितकुमार ने उससे बिदा होते समय कहा—'मेरे पास तो कुछ नही है, और न कोई संपत्तिशाली व्यक्ति मेरा मित्र है, परन्तु यदि कहीं से आपको रुपया मिल सकता होगा, तो मैं पूरा प्रयत्न करूँगा।'

[३२]

उन्ही दिनों एक रात ललितसेन भुजबल को अपना हारमोनियम सुना रहा था—अर्थात् अजितकुमार के मास्टरी छोड़ने के बाद उँगलियाँ चलाकर तेजी के साथ धौंकनी को धौंककर जितनी आवाज या आवाजें ललितसेन उस छोटे-से बाजे में से निकाल सकते थे, निकाल रहे थे।

भुजबल अरसिकता जाहिर न करने का दृढ़ प्रण करके बैठा हुआ था, तो भी जमुहाइयों ने न माना। जब शायद ललितसेन के हाथ दुखने लगे, तब उसने भुजबल की ओर एकटक दृष्टि से कुछ क्षण देखा।

भुजबल ने कहा—'मुझे अभी नीद नही आ रही है, और बजाइये।'

'मुझे कुछ पूछना है।' ललित ने कहा—'इसलिये बाजा बन्द कर दिया है।'

'आप अटा-सटा जानते हैं।'

'यह क्या बला है, सो मैं नहीं जानता।'

'राजपूतों और खत्रियों की कुछ उपजातियों में होता है।'

'क्या होता है।'

'अटा-सटा।'

'कैसा ? क्यों ? कब ? क्या ?'

ललित हँस पड़ा। बोला—'इतने प्रश्न एक साथ।'

भुजबल ने भी हँसकर उत्तर दिया—'तब क्या करूँ ? यह शब्द तो मैंने आज ही सुना है। इसका अर्थ क्या है ?'

ललित ने गम्भीर होकर कहा—'साले-बहनोई के बीच में एक दूसरे की बहन के साथ विवाह-सम्बन्ध।'

असाधारण विषयों पर वार्तालाप करने की ललितसेन की प्रकृति को भुजबल जानता था। परन्तु हारमोनियम की आवाजों से अटा-सटा का क्या सम्बन्ध है, यह बात भुजबल की समझ में इस व्याख्या के बाद भी न धँसी।

उत्सुक दृष्टि से देखने लगा। ललित ने कहा—'मैं विवाह करूँगा।'

भुजबल ने सोचा, शायद कानों ने धोका दिया। इसलिए पूछा—'क्या कहा ?'

ललित ने गम्भीर मुख और दृढ़ स्वर में कहा—'मैं विवाह करूँगा।'

भुजबल ने एक क्षण आश्चर्य में डूबकर कहा—'और पहले यह इच्छा प्रकट कर दी होती।'

'अब प्रकट कर दी, तो क्या अन्तर पड़ गया ?'

'अब लड़की की तलाश करनी पड़ेगी, अर्थात् सुपात्र लड़की की।'

'लड़की मैंने ढूढ़ ली है।'

'क्या सचमुच ? मुझे आज बतलाया !'

'नहीं बहुत दिन नहीं हुये। इसलिये यह नही कहना चाहिये कि मैंने बहुत समय तक इस विषय को छिपाया है ?'

'उस सौभाग्यवती का नाम क्या है ?'

'जिससे पहले टीपना मिली थी।'

'किससे ?' भुजबल ने कुछ विस्मित और कुछ भयभीत होकर पूछा।

ललित ने उसी स्थिरता के साथ उत्तर दिया—'पूना से।'

भुजबल विचार सागर में डूबकर गोते खाने लगा।

ललितसेन ने उसे उबारने की मंशा से कहा—'क्यों ? कैसे रह गये। ऐसी कोई कठिनाई तो सामने है नहीं। उसकी मां तो चाहती ही थी। आपकी उत्कट लालसा थी।'

भुजबल को जैसे निद्रा से तत्काल जाग्रत किया गया हो, कहा—'अब यह सम्भव नही है। पूना सम्बन्ध में आपकी बहन होती है।'

ललित ने अकुंठित भाव से कहा—'अटा-सटा का सिद्धांत हमारे प्रक्ष में है। उस सिद्धांत के अनुसार मैं आपकी बहन के साथ विवाह कर सकता हूं। फिर वह तो अपकी साली ही है। मेरी बहन वह किसी प्रकार नहीं हो सकती।'

भुजबल देर तक कुछ सोचता रहा। कुछ भी निश्चय न कर सकने के कारण बोला—'कुछ समय के लिये इसको स्थगित कर दीजिये। देखा जायेगा।'

ललित ने कहा—'मैंने मन में निर्णय कर लिया है—अर्थात् यदि उसकी माँ ने अस्वीकृत न किया, तो ?'

[२२]

सवेरे भुजबल ललितसेन की नजर बचाकर शिवलाल के मकान पर गया। वहां होकर उसकी इच्छा पूना की मां के पास सिगरावन जाने की थी। उसको मालूम था कि वह अभी सिगरावन से मऊ—सहानिया न गई होगी।

उसके आते ही शिवलाल ने कहा—'अब तो यहाँ भी बचना मुश्किल है।'

'क्यों, क्या हुआ ?' भुजबल ने पूछा।

'कल साहूकारों का नोटिस मिला है।'

कहकर नोटिस भुजबल के सामने डाल दिया।

नोटिस जायदाद के नीलाम पर चढ़ाए जाने की इत्तिला का था।

भुजबल ने माथा टटोलकर कहा—'मैं नहीं जानता था कि यह कार्रवाई इतनी जल्दी शुरू हो जाएगी।'

भुजबल को अपने संपूर्ण दुर्भाग्य का कारण समझकर शिवलाल ने व्यंग-स्वर में कहा—'आपका सब अंदाजा इसी तरह का है। मुख्तार साहब, मेम साहब को चैन से लेकर यहां पड़े हो, तुम्हें दूसरों की क्या चिंता ? जान जाने की नौबत आ रही है।'

परन्तु अन्तिम अवस्था का कोई चिन्ह शिवलाल के मुख पर नहीं दिखलाई पड़ता था। उल्टे उस दिन भुजबल ने लक्ष्य किया कि बालों में तेल पड़ा हुआ है, और सँवारे हुये हैं। लम्बी मूँछें कटवाकर बहुत छोटी करवा डाली गई हैं, जिससे प्रत्यागत यौवन का परिचय मिल रहा था।

भुजबल ने कहा—'मैं बहुत जल्दी प्रबन्ध करता हूं। जहां हो सकेगा, वहां करूंगा। कसम खाता हूं।'

'उससे भी अधिक चिंता मुझे आजकल एक और लग रही है।' शिवलाल ने गले को चिंता में घोलने की चेष्टा करते हुए कहा।

'वह क्या है ?'

'उम्र बढ़ती जाती है, परन्तु इस स्त्री से कोई संतान नही होती दिखलाई पड़ती।'

'चिंता की बात अवश्य है। किंतु ऋण-शोध के प्रस्तुत विषय से कोसों दूर है।'

'मेरा ऐसा खयाल नही है। यदि आज मर जाऊँ, तो इतनी बड़ी जायदाद का कोई सँभालने वाला नही। जल-दान तक के लिए कोई नहीं।'

'खैर, इसकी बाबत पीछे सोचा जाएगा।'

'नहीं भाई, इसका निवारण अभी करना होगा। मैं विवाह करूंगा।'

‘विवाह !’ भुजबल ने आश्चर्य के साथ कहा, और एक क्षण कुछ सोचकर बोला—‘कर लीजियेगा । कुछ हर्ज नही, लड़की खोजकर यह भी हो जायगा ।’

‘लड़की है ।’

‘कौन ?’

‘तुम्हारी साली । वही; जिसका—क्या नाम है ? टीपना मिले या न मिले, मैं दिलोजान से तैयार हूं ।’

भुजबल के सिर पर मानो किसी ने पत्थर मारा । परन्तु बहुत देर सोच-विचार न करके बोला—‘उसकी मां किसी हालत में मंजूर न करेगी ।’

‘मैं उसको या उसकी माँ को अपनी आधी जायदाद आज ही दे दूंगा ।’ शिवलाल ने निश्चय प्रकट करते हुये कहा—‘और आधी जायदाद तुम्हें दे दूंगा; यदि तुम इसमें मेरी सहायता करो ।’

इस प्रस्ताव पर भुजबल को कुछ समय तक सोच-विचार करना पड़ा । कुछ देर बाद बोला—‘साहूकार क्या करेंगे ?’

शिवलाल ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया—‘घास खायें साले । मेरे बाप ने यह जायदाद इन हरामजादों के लिये थोड़े ही छोड़ी है । अब तुम्हारी दोस्ती और वफादारी को परखना है ।’

भुजबल ने टूटे-फूटे स्वर में कहा—‘मैं आज ही सिगरावन जा रहा हूं । मेरी सास वही पर है । मैं उनके सामने प्रस्ताव रक्खूंगा । यदि वह मान गईं, तो टीपना लेता आऊंगा ।’

शिवलाल ने बहुत उत्साहित होकर कहा—‘तुम्हारी जवांमर्दी देखनी है । परन्तु मैं टीपना-वीपना के झंझट मे नही पड़ना चाहता । मिल जाय, तो वाह-वाह, और न मिल जाय, तो कुछ परवा नहीं ।’

(३४)

इसके बाद भुजबल सिगरावन चला गया।

भुजबल उसी दिन सिगरावन पहुचा, और अपनी सास से मिला।

'मैंने इन तीन-चार दिन में ही वर की खोज के लिये जितनी सिरखपी की है, उसको सुनकर तुमको अचरज होगा।' भुजबल ने कहा।

लम्बे घूँघट को और भी लम्बा खीचकर उसने कहा—'कोई वर मिला ?'

'ललितसेन ने आग्रह के साथ विवाह के लिये कहा है। तुम्हें स्वीकृत है ?'

घूंघट में से ही जलती आंखें दो उँगलियों के बीच में दिखलाते हुये वह बोली—'क्या हम गरीबों के साथ ठठोली करने आये हो ?'

भुजबल ने कहा—मैंने उनसे पहले ही कह दिया था। परन्तु ज़रा धीरज के साथ सुनती जाओ। दूसरा वर वह जमीदर है, जिसका मैं मुख्तार हूं। आयु पचास के लगभग है। घर में एक स्त्री मौजूद है, और कोई नहीं है। जमीदारी बहुत है, लेकिन देखने में साठ साल का मालूम होता है।'

सास रोने लगी। रोते-रोते बोली--'हमारे भाग फूट गये हैं। तब तो इतना श्रम करने पर भी तुम्हे ये वर मिले हैं।'

भुजबल ने कहा—'और लोग भी मिले। आयु कम है। घर भी अच्छे हैं। उधर घर मे बराबर तबियत खराब बनी रहती है। वैद्य कहते है, सतान का सुख देखने को न मिलेगा। न-मालूम कौन जन्म की रोगिन है। जमीदारी के इतजाम और अदालती झगड़ो से जब कभी फ़ुरसत मिलती है, तो कूलने-कराहने के मारे नाकोंदम आता है। यदि पूना के लिये और कहीं सुयोग न हुआ; तो उसकी बहन का पुराना उजड़ा-सा घर फिर हरा-भरा हो जायगा। मगर कहते हैं, लड़की सयानी हो गई है।'

सास ने रुदन बन्द करके कहा—'तब तो मै इसी समय मर जाऊँ, तो अच्छा हो, और धरती फट जाए, तो पूना भी उसमें समा जाए।'

भुजबल ने भरोसा दिलाते हुए कहा—'इतना घबराना नहीं चाहिए, मैंने एक बात सोची है।'

'वह क्या ?' सास ने उत्कंठित होकर पूछा।

भुजबल ने कहना आरम्भ किया—'पहले तो मैं भरसक पूना के लिए योग्य और सुपात्र वर ढूंढूंगा। इसके लिए एक महीना समय नियत किया है। ढूंढ़-खोज मे आकाश-पाताल एक कर दूंगा। अधिक समय नष्ट करने की अब हिम्मत नही पड़ती। तुम्हारी तबियत दिनोंदिन बिगड़ती चली जा रही है। यदि तुम इस बीच में चल बसीं, तो बड़ी आफत होगी। पूना बराबर सयानी होती चली जा रही है। लोग-बाग सयानी लड़की के साथ यदि अपना विवाह न करना चाहेंगे, तो मैं ही फलदान ले लूंगा।' पूना की मां बहुत देर तक चुप रही। क्षणिक शांति के गर्भ मे किसी उठते हुए तूफान का चिन्ह देखकर भुजबल ने तुरन्त कहा—'मेरी बात बिलकुल, बिलकुल अन्त में उठाने की आवश्यकता होगी। जहाँ तक मुझसे बनेगा, मैं ऐसा न होने दूंगा; जो कुछ आजकल दुःख भुगतना पड़ता है, भुगतता रहूँगा, परन्तु यदि और किसी तरह काम बनता न दिखाई पड़ेगा, तो तुम्हें कष्ट में यों ही मरने न दूंगा।'

पूना की मां ने क्षीण स्वर में पूछा—'और मास्टर, जिसके लिए तुमने एक बार कहा था।'

भुजबल ने चट उत्तर दिया—'वह तो बिलकुल अयोग्य है। आजकल पागल-सा हो गया है। न मालूम दिन-रात किस सिड़ीपने में क्या सोचता हुआ घूमता रहता है। सिंगरावन की पहाड़ियों में भी एक बार मैंने उसको मटरगश्त करते हुए और कुछ बड़बड़ाते हुए देखा था। उससे तो वह बूढ़ा जमींदार अच्छा है।'

पूना की माँ ने घूंघट को फिर पीछे जरा-सा हटाकर कहा—'जो तुम्हें अच्छा दिखलाई पड़े, सो करो। और कही ठीक न हो सके, तो

तुम्हीं उसके पीले हाथ कर लेना। टीपना मिली-मिलाई रक्खी है। यदि तुमने पहले ही कहा होता, तो कुछ बात ही न थी। ललितसेन क्या कहेगा ?'

भुजबल ने आत्मविश्वास के साथ कहा—'ओह, कुछ नहीं'। वह बिलकुल हाथ के है। उनकी बहन बहुत सीधी-सादी औरत है। पूना को किसी तरह का कष्ट न होगा।'

इतने में पूना ने एक दूसरे घर में से कुछ कर्कश स्वर में कहा—'माँ, तुम्हारी बात ही पूरी होने नहीं आती। जिनको खिलाना-पिलाना हो, खिला-पिला दो, नहीं तो मैं अपना और काम देखूं।'

माँ धरती पर और फिर घुटने पर हाथ टेककर उठी, और कहा—'ठहरो, लिवाये लाती हूँ।'

फिर भुजबल से कहा—'चलो, रसोई तैयार है।'

[३५]

सिगरावन से आकर भुजबल सीधा ललितसेन के पास पहुँचा। ललित ने चकित होकर पूछा—'क्यों जी, आज दिन भर कहाँ रहे ? कुछ थके-से मालूम होते हो।'

'सिगरावन गया था।'

'सिगरावन काहे के लिये ?'

'गत रात्रि की आपकी बातचीत ने भेजा।' ललित भुजबल के पास आकर बैठ गया।

बोला—'मैं यह नहीं जानता था कि तुम इतनी जल्दी मेरे लिये तत्पर हो जाओगे।'

भुजबल ने चेहरे पर हाथ फेरकर उत्तर दिया—'आपके निश्चयों से बहुत डरता हूं, विलम्ब होने से यदि कोई बात ऐसी हो जाती, जो काबू की न रहती, तो न जाने आप क्या से क्या कहते इसलिये मैं उनके पास सबेरे ही उठकर चल दिया था। मैं आपके एक निश्चय के परिणाम को तो वैसे ही भोग रहा हू।'

'कौन-से निश्चय का ?' ललित ने कोमलता के साथ प्रश्न किया।

'वही' भुजबल ने उत्तर दिया—'पहले आपने कहा था कि शिवलाल की कुछ जमीदारी खरीद लेगे, और फिर पीछे निश्चय प्रकट किया कि न लेगे।'

'इससे तुम्हारे सिर कौन-सी आफत आई ?'

'आफत ? घोर संकट मे पड़ गया हूं। लोगों मे शोर हो गया कि आप उस जमीदारी को खरीदने वाले है। किसी से फिर बात भी नहीं की। अब इजराय डिग्री की कारवाई में अदालत का इश्तहार नीलाम आ गया है। कोई खरीदने ही क्यों चला ?'

ललित देर तक कुछ सोचता रहा। इसके बाद बोला—'उस जमीदारी में कुछ फायदा है ?'

'है, और नही भी है।' भुजबल ने जवाब दिया—'यदि प्रबन्ध ठीक-ठीक किया जाय, और व्यय परिमित हो, तो लाभ-ही लाभ है, नही तो जमीदारी से बढकर दूसरी बला कोई और नही।'

'सिगरावन का क्या समाचार है ?' ललित ने पूछा।

भुजबल ने कहा—'अभी तो आशा कम है। उनकी समझ में आपका अटा-सटा नही आया। अपनी जाति में यह प्रथा नहीं है तो भी ऐसा करने मे कोई हानि नही, यह बात उनके दिल पर इतनी जल्दी में नही बिठलाई जा सकी। कुछ समय चाहिये। तब तक मुझे किसी तरह शिवलाल की जमीदारी को संकट से छुटाना है।'

ललित ने खूब हँसकर कहा—'शिवलाल को नहीं; बल्कि उसकी जायदाद को संकट से छुटाना है! मजेदार समस्या है। अच्छा, मैं तुम्हारे इस शुभ कार्य में सहायक बनूंगा। कब तक बैनामा हो जायेगा ?'

'अदालत की इजाजत लेकर इश्तहार नीलाम के राक्षस को विवश करने के बाद तक कही बैनामे की नौबत आ पावेगी। शिवलाल भी सनकी है। देखें, कही वह न बहक गया हो।'

'तब जाने दो।' ललित ने गम्भीर होकर कहा—'खुशामद करके बैनामा कराने की गरज नहीं है।'

'जायदाद यों ही नहीं मिल जाती। शिवलाल इस तरह का गधा है कि सब भले ही नाश हो जाये, परन्तु मूर्ख अपने हठ पर डटा रहेगा। इसमें हम लोगों का भी नुकसान है।'

'अच्छा, तो जो उचित समझो, करो। यदि वह बेचने पर राजी हो जाये, तो मैं खरीदने को तैयार हूं। इससे अधिक और कह ही क्या सकता हूँ?'

'एक बात पूछता हूं। यदि सास ने विवाह-सम्बन्ध से इन्कार कर दिया, जिसकी इस समय आशंका नहीं है, तब किसी दूसरी जगह लड़की की खोज करनी पड़ेगी या नही?'

'कदापि नहीं। विवाह करूंगा, तो वहां, नही तो कहीं भी नहीं। इस निश्चय में शिथिलता नहीं आवेगी।'

'बैनामा किसके नाम होगा?'

यह बात भुजबल ने इस तरह से पूछी; जैसे कहने में बहुत संकोच और श्रम हुआ हो, और उक्त भाव को बहुत दबाने की चेष्टा की हो, परन्तु दबा न सका हो।

ललित प्रश्न समझ गया। उसे यह प्रश्न स्वाभाविक और उसका संकोच-नियन्त्रण बहुत प्राकृतिक जान पड़ा। उसने सोचा, बहन ने कहा होगा।

वह लापरवाही के साथ बोला—'चाहे जिसके नाम करा लेना, या बहन के नाम हो जायेगा। नही तो मैं अपने ही नाम करा लूंगा, अथवा कुछ जायदाद मेरे नाम और कुछ तुम अपने या बहन के नाम करा लेना। किसी के नाम हो, प्रबन्ध का सारा भार तुम्हारे सिर पड़ना है, इसलिए जो उचित मालूम पड़े, कर लेना। परन्तु बैनामे से पहले मैं एक बार लहचूरा देखना चाहता हूँ।'

'यह तो बहुत आसान है।' भुजबल ने हर्ष-पूर्वक कहा।

[३६]

भुजबल ने जो योजना अपने दिमाग में तैयार की थी, उसे अग्रसर होता हुआ पाकर वह बहुत खुश था। इस योजना का अंतिम भाग कैसे सफल होगा, उसके विषय मे भुजबल को अपनी अतीत संचित आतरिक शक्तियों पर तो भरोसा था ही, और इस सीधी-सी बात पर और अधिक कि ललितसेन रतन का दूसरा विवाह करके भी मुझे कूड़ा-घर में न फेक सकेगा। वह जानता था कि हिंदू-समाज पुरुष का दूसरा विवाह तो सहन कर जायेगा, परन्तु स्त्री का दूसरा विवाह असंभव कर देगा, और ललितसेन चाहे हिदू-शास्त्रों को माने या न माने, न तो हिन्दू-समाज को गर्दनिया सकेगा, और न रतन को पुर्नविवाह-जैसी अनहोनी बात के लिये राजी कर सकेगा।

रतन को, जिसे लोग पति का सुख कहते हैं, पूरा था; परन्तु प्रेम की पूजा उसकी हृदय-वेदी पर कभी की गई या नहीं, इसे वह नहीं जानती थी।

जिस समय भुजबल अपने कमरे में गया, वह सो चुकी थी। वह भुजबल को चाहती थी। कौन हिंदू-स्त्री अपने पति को न चाहती होगी? परन्तु वह उससे डरती थी। भुजबल ने कभी कोई बुरा व्यवहार उसके साथ न किया था, और उसे मालूम था कि भाई का आश्रित न होने पर भी, सम्बन्ध में बड़ा होने पर भी किसी बात में भाई से छोटा है, तो भी वह उससे डरती थी। भुजबल ने उसको जगाया। उठ बैठी। बोली—'बड़ी देर में आये? मैंने सोचा था, कहीं फिर न चले जायें, इसलिये सो गई थी।'

भुजबल ने किसी अनियंत्रित सत्ताधारी सम्राट्-सरीखी चिन्ता में माथा सिकोड़कर और ठोड़ी पर हाथ रखकर कहा—'बड़ी परेशानी में हूं।'

'क्या?'

'आज सिगरावन जाना पड़ा था। मेरी जो साली पूना है, सयानी हो गई है। कहीं उसके विवाह का ठीक नहीं पड़ता। उसकी मां इसी फिक्र में बीमार हो गई है, और आजकल में चल बसे, तो अचरज नहीं। उसके लिए कहीं कोई वर नहीं मिलता।'

'है तो चिंता की बात, पर जो कुछ होना होगा, वही होगा।'

'बाबू ललितसेन उसके साथ विवाह करने को तैयार हैं, पर··· '

रतन को पसीना आ गया। आश्चर्य के साथ बोली—'यह कैसे हो सकता है? धर्म के विरुद्ध है।'

भुजबल ने कहा—'वह इस तरह का धर्म नहीं मानते। पूना की मां कुछ राजी है, कुछ नहीं। दबाने से मान जाएगी, परन्तु लोग क्या कहेंगे।'

'भैया मान जायेंगे।'

'मानें या न मानें, पर तुम उनसे चर्चा न छेड़ना, मेरी कसम है।'

रतन ने बहुत नम्रता के साथ कहा—'मैं उनसे कभी न कहूंगी, पर उन्होंने खुद कहा, तो क्या करूँगी?'

'कह देना, धर्म के विरुद्ध है, और कुछ कहने की जरूरत न होगी।'

रतन ने तुरन्त स्वीकार कर लिया। भुजबल बोला—'बाबू जी कुछ जमींदारी खरीदना चाहते हैं।'

'पहले तो बंगले बनवाने के लिए कह रहे थे।'

'अब कुछ रुचि जमींदारी की तरफ हुई है। तुम्हारे या मेरे नाम से खरीदना चाहते हैं।'

'मेरे नाम से! मैं जमींदारी का क्या जानूँ? मुझे इस आफत से बचाना। कहो, तो मैं पहले ही उनसे कहकर उसका निवारण कर लूँ।'

'नहीं, अभी कुछ मत कहना।' फिर कुछ सोचकर कहा—'यदि वह स्वयं हठ करे, तो मान लेना, इन्कार मत करना।'

'यह तो मुझसे न होगा।' रतन बोली—'आप अमर रहें, मुझे जमींदारी का क्या करना है।'

भुजबल ने सन्तुष्ट हँसी हँसकर कहा—'नही, मैं जो कह रहा हू, वह मानो। मैं उनके स्वभाव को खूब जानता हूं। उनकी इच्छा का जब अवरोध होता है, तब वह कभी-कभी न मालूम क्या-क्या नतीजे पर पहुंच जाते हैं। तुम्हारे नाम से खरीदेंगे, तो वह मेरे ही नाम से खरीदने के बराबर होगा।'

रतन चुप हो गई।

[३७]

दूसरे दिन भुजबल के आने मे शिवलाल को कुछ देर दिखलाई पड़ी, तब उसने किसी के द्वारा उसको बुलवा भेजा।

भुजबल के आने पर उसने पूछा—'क्यों भाई, क्या जवाब ले आये? है कुछ आशा, या तड़पते-तड़पते प्राण खोने पड़ेगे?'

'आशा है।' भुजबल ने उत्तर दिया—'परन्तु शर्त बहुत कड़ी है।'

'वह क्या है?' शिवलाल ने उतावली के साथ पूछा—'जवाँमर्दों के लिए विघ्न-बाधा कोई चीज नहीं।'

'यह मे जानता हूँ।'

'फिर बतलाओ न कि वह कौन-सी शर्त है।'

'उसकी मां ने कहा है कि लड़की को कुछ जायदाद ब्याह के पहले ही देनी पड़ेगी।'

'ब्याह के पहले ही जायदाद देनी पड़ेगी? यानी जर जेवर?'

'नही, कुछ जमीदारी?'

शिवलाल सोच में पड़ गया। भुजबल ने कहा—'कुछ जमींदारी की रजिस्ट्री उसके हक में करानी होगी।'

'बख्शिशनामा!'

'जी नही।'

'तब क्या पट्टा!'

'पट्टा नही, बैनामा। फर्जी दस्तावेज।'

'बख्शिशनामा क्यों नहीं?'

'इसलिये, जिसमें लोग यह न कह सकें कि मां ने लड़की को बेचा है।'

'क्यों बख्शिशनामा तो लड़की के नाम से होगा ?'

'मगर वह तो कानून की दृष्टि में नाबालिग है। वली सरपरस्त तो उसकी माँ ही रहेगी।'

'बैनामे मे वली सरपरस्त कौन होगा?'

'उसकी मां।'

'और यदि बख्शिशनामा करूँ, और वली सरपरस्त खुद बना रहूँ, तो ?'

'यह असंभव है, उसकी मां इस ढर्रे पर नहीं चढ़ेगी।'

शिवलाल देर तक सोचता रहा। तब तक भुजबल कई बार छत की ओर मुंह उठाकर कह गया—'बड़ी मुश्किल है ! बड़ी आफत !'

शिवलाल ने बड़ी होशियारी से बात करने का ढङ्ग दिखलाते हुये कहा—'अदालत का हुक्म इम्तनाई जो सिर पर खड़ा है, बैनामा या कोई नामा कैसे लिखा जा सकता है ?'

भुजबल ने सरलता के साथ उत्तर दिया—'यह तो कोई बड़ा बिघ्न नही है। बाबू ललितसेन के यहाँ कुछ जमींदारी बेच डालिये। कुछ जमींदारी फर्जी बैनामे के जरिये उस लड़की को दे दीजिये। कुछ अपने नाम रखिये। आखिर वह जमीदारी भी तो आपके ही पास रहेगी। वह लड़की उसे लेकर कही भाग तो जायगी नही।'

शिवलाल भुजबल की ओर देखने लगा, और कुछ सोचने लगा।

भुजबल ने हाथ की उँगलिया मोड़ते हुये कहा—'मैं बड़ी घबराहट में हूँ कि इस गोरख-धन्धे में कहाँ से आकर फँस गया। टोह में तो था साहूकारों का कर्ज पटाने और निर्वाह के लिये कुछ रुपया खड़ा करने की, परन्तु मारा-मारा फिर रहा हूं वर-वधू की जन्म-कुंडलियाँ मिलाने में।' और सिर हिलाकर हँस दिया।

शिवलाल ने कहा—'भाई, मेरे लिये जैसे इतना कष्ट सहा, थोड़ा और सह लो।'

फिर एक क्षण बाद बोला—'तो लड़की की माँ इस बैनामे से कम में राजी नहीं होती ?'

'नहीं।'

'यह विचित्र खेल उसे सुझाया किसने होगा ?'

'मैंने। शायद आपके मन में इस समय यही शंका उठ रही होगी। यदि वास्तव में ऐसा है, तो इस विषय को खत्म करिये। मैं सौगन्ध खाकर कहता हूं कि ये सब बातें मैं अपने मन के खिलाफ कर रहा हूँ, परन्तु आपकी मर्जी रखने के विचार से इस कीचड़ में पैर डाले हैं।'

शिवलाल कुछ डर-सा गया, बोला—'लो, तुम नाराज हो गये। अच्छा भाई, मैं वचन देता हूं, पर बात तो पक्की है ?'

'बिलकुल पक्की, बैनामे से एकाध महीने के भीतर ही ब्याह हो जायेगा, भगवान् साक्षी हैं।'

'तब फिर साहूकारों का रुपया अदा करने के लिये पहले ललितसेन के यहाँ बैनामा करो, जिससे कुछ रुपया भी हाथ आवे, और अदालत से खलासी हो जाय। वधू के लिये कुछ जेवर भी बनवाने पड़ेंगे। न्योते-बुलावे में भी कुछ खर्च करना पड़ेगा। किसी मर भुक्खे का तो ब्याह है नहीं।' शिवलाल ने उत्साह के साथ कहा।

भुजबल बोला—'उसका बन्दोबस्त शीघ्र ही करता हूं। आपको एक दिन मऊ चलकर कुछ कागजों पर दस्तखत-भर करना पड़ेंगे। सिर्फ इतना ही कष्ट।'

शिवलाल ने कहा—'इसकी कुछ परवा नहीं। इसके लिये कोई दिन नियुक्त कर लीजिये।'

'मेरे लिये तो सब दिन बराबर हैं।'

शिवलाल हँसकर बोला—'अपने नाजुक दिमाग सालारजंग से दिन मुकर्रर करवा लो।'

भुजबल भी हँसकर बोला—'आपने खूब कहा। जिस-जिस जमींदारी को वह खरीदना चाहते हैं, उसकी सूची बनाकर देनी पड़ेगी। फिर बैनामा भी उसका एक न होगा। कुछ अपने नाम से खरीदेंगे, कुछ अपनी बहन के नाम से और कुछ को शायद मेरे नाम से। साहब, ऐसा खब्तुलहवास आदमी मुश्किल से कहीं मिलेगा। परन्तु मैंने एक बात सोची है। यदि आप मान जायें।'

'वह क्या ?' शिवलाल ने पूछा।

'आप जितनी जमीदारी उस लड़की को देना चाहें, वह चाहे बहुत न हो, परन्तु सबसे अच्छी हो। उससे कम अच्छी ललितसेन को।' भुजबल ने उत्तर दिया।

'और सबसे कम अच्छी मै अपने लिये रक्खूं !' शिवलाल ने खूब हँसकर कहा—'परन्तु मेरी स्त्री के पास जो जमींदारी रहेगी, वह असल में रहेगी तो मेरी ही। अच्छा भाई, मंजूर है। और, यह भी मंजूर है कि चाहे ललितसेन एक बैनामे से जमींदारी का भाग खरीद लें; और चाहे दस बैनामों से, मुझे कोई उज्र नहीं। चाहे जिसके नाम से लें, परन्तु जो कुछ करना हो, जल्दी करें, क्योंकि अदालत के जरिये नीलाम हो जाने से फिर चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा छा जायगा।'

[३८]

उस दिन भुजबल के सिगरावन से चले जाने के बाद पूना और उसकी मां दोनों से भोजन अच्छी तरह न किया गया। देर तक एक दूसरे से किनारा-सा खीचे रही। एक दूसरी से कुछ बात भी करती थीं, तो अत्यन्त असाधारण विषयों पर और बड़ी सावधानी के साथ। दोनों शंकित-सी थीं। परन्तु किसी ने एक दूसरे से किसी तरह की शंका का कोई कारण नहीं पूछा। थोड़ी ही देर में इतनी बड़ी दूरी दोनों के बीच में पड़ गई कि सबसे पहले शायद मां उस अन्तर की प्रबलता से विषण्ण हो गई।

पूना ने कुछ नहीं कहा ।

मां बोली—'मेरे मरने के बाद तुम्हारा क्या होगा ?'

पूना ने दृढ़ता के साथ कहा—'यह बात तुम मुझसे मत कहा करो मां । अब यहां और अधिक दिन मत रहो । अपने घर चलो । घर का काम-धन्धा खराब हो रहा होगा । भैंसें भूखों मर रही होंगी । आंगन में कूड़ा-कर्कट का ढेर लग गया होगा । खेती खड़ी उजड़ रही होगी । कटाई का समय आ रहा है । सब प्रबन्ध करना है । अपने लिये तो दयालु भगवान ने इतना काम दिया है कि और बातों के सोचने का समय ही नही है । तुलसी जी बिना पानी के सूख रही होंगी उनकी भी मां, तुम्हे चिंता है या नही ?'

'सूखने दो ।' मां ने कुछ कड़ाई के साथ कहा—'खाक हो जाने दो । बहुत पानी डाला, पूजा की, कुछ भी फल नहीं हुआ ।'

'ऐसी बात मत कहो, मां ।' पूना ने कुछ भय-विकल स्वर में कहा—'मन की अवस्था पर किसी तरह की विपद् का कोई बुरा प्रभाव न पड़ना चाहिये ।'

मां ने धीरे से कहा—'बेटी, मैंने जो सोचा है, वह तुम्हें बतलाना चाहती हूं । तुम सयानी हो गई हो, नही तो कुछ न कहती ।'

'कुछ न कहो । अभी आराम करो । जब मन अच्छा हो जाये, तब कुछ कहना ।' पूना ने मां के अङ्ग दबाते-दबाते कहा ।

मां कुछ नही बोली । हिम्मत नही पड़ी । सोचा—'इसने बातचीत सुन तो नही ली ? सुन भी ली हो, तो क्या ? परन्तु फिर किसी दिन मऊ-सहानिया चलकर कहूँगी ।' बोली—'घर बहुत जल्दी चलेंगे बेटी ।'

[३६]

भुजबल बहुत प्रसन्न था । ललित भी प्रफुल्ल-मन दिखलाई पड़ता था । शिवलाल और ललित के बीच में अब कोई जाहिरी वैर-भाव न मालूम होता था, और शिवलाल भी काफी खुश था । इस मानसिक

अवस्था में तीनो झाँसी आये। अदालत से बैनामा के करने की इजाजत ले ली, और मऊ मे आकर रजिस्ट्री करा दी। दो गांवों का बैनामा पूना के नाम से हुआ। तीन का ललित के नाम से, दो का रतन के और एक का भुजबल के नाम से हुआ। भुजबल असन्तुष्ट न था। वह सोचता था कि पाँच गांव का असल में बैनामा उसके नाम से हुआ है। पूना वाले गाँव भी तो आखिर मुझी को मिलेंगे, यह भुजबल ने सोचा।

यह तो सब सहज ही हो गया, पर आगे खेल की सभी चालें कठिन हैं, और बड़ी सावधानी तथा बड़े पुरुषार्थ के साथ खेलनी पड़ेंगी, यह विचार करता हुआ भुजबल अपने दोनो साथियों के संग छावनी लौट आया।

दूसरे दिन जब शिवलाल के मकान पर भुजबल उसके साथ किसी ब्योंत की उधेड़बुन में उलझा हुआ था, बुद्धा आया। इसकी जमीन-जोत भुजबल के बैनामे में आकर पड़ी थी।

देखते ही भुजबल ने तेज होकर कहा—'क्यो बे सुअर, किस लिये आया है ?'

'तुम तो बाबूजी गाली देते हो, न जाने क्या आदत पड़ गई है।' बुद्धा ने नम्रता-पूर्वक प्रतिवाद किया।

भुजबल के ऊपर उसका वही प्रभाव पड़ा, जो हिम-सदृश मिट्टी के तेल के छिड़काव का आग पर पड़ सकता है।

गरम होकर बोला—'वह कमबख्त पैलुआ आया होता, तो आज सचमुच उसे कच्चा खा जाता। तू अपनी कुशल चाहता हो, तो लहचूरा लौटकर मत जाना, और यहां से भी अभी चला जा। एक पैसा भी नहीं छोड़ूँगा, और जमीन से तो तुम लोग अपने को बेदखल समझो ही।'

बुद्धा ने उसी पौर में हठपूर्वक बैठते हुये कहा—'अगर मारना ही चाहोगे, तो किसी दिन मरना है, मार डालो।'

'क्यों बे हरामजादे, यहां से जायगा या धक्के देकर निकालूं ?' भुजबल ने खड़े होकर धमकी दी।

शिवलाल ने बीच-बचाव करने की नियत से दयालुता दिखलाते हुये कहा—'जाने भी दो भाई साहब, अब तो यह तुम्हारी ही रियाया है। रुपया तो देगा ही। बिना दिये कहाँ छूटकर जायगा। हँसी-खुशी में रंज मत करो।'

बुद्धा ने कुछ आड़ पाकर कहा—'मैं तो मालिक के पास फरियाद के लिये आया था। यह बीच में ही पत्थर पटकने उठ बैठे।' और बैठे बैठे सिर को गर्दन में सिकोड़कर कुछ दीन मुस्कराहट और कुछ निर्बल ढिठाई के साथ भुजबल की ओर देखने लगा। यह भुजबल से न सहा गया।

वज्र-नाद करके बोला—'अबे हरामजादे, अब मैं मालिक हूं। साला पाजी, हँसता है। हमें उल्लू समझता है!' और, एक लकड़ी उठाकर बुद्धा को जोर से मारने लगा।

बुद्धा कहता जाता था—'मैंने क्या किया ? मैंने क्या किया ?' और भुजबल उसे मारता ही चला जाता था। फिर कुछ न कह सकने के कारण बैल की तरह डकार डकार कर रोने लगा। पड़ोस के आदमी हल्ला सुनकर दरवाजे के पास जमा हो गये, पर भीतर कोई न आया, और न किसी ने बाहर से ही कुछ कहा।

शिवलाल ने यह समझकर कि कहीं अधिक मार के कारण मर न जाय, भुजबल से कहा—'बस करो, मर जायगा।'

'मर जाय।' भुजबल ने हाँफते-हाँफते कहा—'मैं इसे और इस तरह के सब आदमियों को यह स्पष्ट बतला देना चाहता हूं कि मैं जिस बात का निश्चय कर लेता हूं, वह पूरी है, और रोष का दबाना भी जानता हू, और यमराज का-सा क्रोध भी दिखलाना जानता हूं।' और अर्द्धचेत बुद्धा को लाठी और लातों से दरवाजे के बाहर कुत्ते की तरह फेंक दिया।

अब एक पड़ोसी ने कहा—'क्यों साहब, क्या बात है ?'

दूसरे ने कहा—'मैं भी यही पूछना चाहता था। इसने क्या किया था ?'

कई कण्ठों से यही बात निकली। परन्तु क्रोध किसी को आया न दीखता था।

भुजबल ने कुछ शांत होकर, परन्तु खुर्राये हुये स्वर में कहा—'यह साला चोर है, चोरी करने आया था, इसीलिये इतना मारा। अगर जब्त न कर लेता, तो आज इसे मार ही डालता।'

'चोर नहीं है।' एक नवागन्तुक के कण्ठ से पैनी आवाज में बात निकली—'बेचारा गरीब किसान है, मै इसे जानता हूं। मैंने कई बार देखा है।'

सब लोगों की निगाह इसी की तरफ गई। भुजबल ने भी देखा। अजितकुमार था। भुजबल कुछ नरम होकर बोला—'आपको इन झगड़ों में पड़ने की जरूरत नही मास्टर साहब। आप अपना काम देखिये।'

'दुनियाँ मे अब सिवा इन झगड़ों के मुझे कोई और काम नहीं है।' अजित ने कहा, और बुड्ढा के पास जाकर उसे देखने लगा। बोला—'अभी जीवित है। मैं इसे अस्पताल ले जाऊँगा। क्या आप लोगों में से कोई एक गाड़ी देंगे ?'

भुजबल ने जरा अकड़कर कहा—'आपको उसके ऊपर कोई अधिकार नहीं है। यह मेरा जोता है। बदमाशी करता था, इसलिये मारा।'

तमाशा देखने वालों मे से एक बोला—'आसामी है। देने-लेने में तङ्ग करता होगा, इसलिये मार दिया। कोई बड़ी बात नहीं हुई। जरा-सा पानी छिडको, और हवा कर दो, अभी अच्छा हो जायगा, और पीछे पक्के एक सेर की रोटियाँ खिला देना, हँसने-खेलने लगेगा। रोज ही हुआ करता है।'

यह सुव्यवस्था सबको पसन्द आई। तमाशे में ज्यादा दिलचस्पी का कारण न देखकर और बैलगाड़ी की इल्लत तथा किसी अनिश्चित तहकीकात और गवाही-साखी की आशंका देखकर पडोसी लोग खिसकने लगे। परन्तु अजित न हटा। कठोरता के साथ बोला—'कुछ तो दया करो। जरा तो धर्म चीन्हो। एक गरीब मर रहा है, और तुम टाला-टूली करके घर भाग रहे हो। बैलगाड़ी न मिलती हो, तो आदमी ही आगे बढ़ आओ। इसे लेकर अस्पताल चले।'

यह प्रस्ताव अजित को भले ही बैलगाड़ीवाले प्रस्ताव की अपेक्षा कुछ अधिक सहज और सुगम जान पड़ा हो, परन्तु इसका जो कुछ प्रभाव सुननेवालो पर पड़ा, वह यह था कि तमाशबीनों की संख्या वहाँ पर जल्दी करीब-करीब शून्य रह गई। केवल थोड़े-से आवारा लड़के खड़े रह गये।

भुजबल ने अपनी पूर्ण विजय का अनुभव करके मीठा गला करके कहा—'मास्टर साहब, आप नाहक हैरान न हों। यह आदमी हमको जन्म-भर हैरान करने के लिये अभी बहुत जियेगा। आप जायें। होश मे आने पर वह इसी घर में आवेगा, और वास्तव में यह चेत में है। महज मक्कारी कर रहा है।'

'कभी नहीं।' अजित ने दृढ़ता के साथ कहा—'मैं अकेले इसे अस्पताल ले जाऊँगा।'

'आपको उससे कोई ताल्लुक नही।'

'सो मैं दिखलाये देता हूँ।' और तुरन्त अजितकुमार बुड्ढा को गठरी की तरह हाथों मे लेकर वहां से चल पड़ा। शिवलाल आँखें फाड़ता हुआ दरवाजे पर अवाक् खड़ा रहा गया।

भुजबल ने बड़बड़ाते हुये कहा—'इसे देखूँगा। परन्तु कोई मुकद्दमा नही चल सकता। गवाह नही मिलेगे।'

अजित बुड्ढा को थोड़ी ही दूर लेकर चला होगा कि उसे कुछ होश आया। कराहते-कराहते बोला—'कहाँ लिये जाते हो ?'

'अस्पताल ।'

'न जाऊँगा ।'

'वहाँ जल्दी अच्छे हो जाओगे । चैन से रहोगे ।'

'नही नही, वह लोग मार डालेंगे । वहाँ तो नहीं जाऊँगा । क्यों मारे डालते हो ?'

बहुत-से लड़के इस विचित्र तमाशे को देखते हुये पीछे हो लिये । अजित का मन खीझ-खीझ उठने लगा ।

बुद्धा ने कहा—'अस्पताल मत ले चलो । सिगरावन पहुंचा दो ।'

अजित ठिठक गया । लड़कों ने चारों ओर से घेर लिया ।

बुद्धा ने कहा—'अस्पताल न जाऊँगा । हा, हा, मेरे प्राण बचा लो । मुझे सिगरावन पहुचा दो ।'

अजित ने कहा—'अच्छा, यही सही । पहले तुम्हे अपने घर लिये चलता हू । फिर गाड़ी का बंदोबस्त करके सिगरावन ले चलूँगा ।' अजित उसे अपने घर ले गया । फिर लड़कों ने अधिक पीछा नही किया ।

लोगों ने भी घर जाकर अपनी पूर्व व्यवस्था में संशोधन कर दिया । 'भुजबल ने बुरा किया । इतना नही मारना चाहिये था । मास्टर अच्छा आदमी है । दया को पहचानता है ।' परन्तु मन-ही-मन ।

[४०]

अजितकुमार ने बुद्धा की, अपने घर लाकर, सावधानी के साथ सुश्रूषा की । थोड़ा-सा दूध पिलाया । उसे मुंदी चोटे बहुत लगी थीं, और ज्वर हो आया था, इसलिये अजित जरा चिंतित हुआ । अन्त में वह बैलगाड़ी किराये पर करके उसे सिगरावन ले गया । दिन नही डूबा था, जब वह गाँव में पहुंच गया ।

उसे गाँव वालों ने घेर लिया । सवाल करने शुरू किये । अजित को भुजबल की रिश्तेदारी का हाल मालूम था, इसलिये उसने आहृत करने वाले का नाम न लेकर और बाकी सब गई-गुजरी सुना दी—केवल यथाशक्ति अपने काम के बखान को बचाया । परन्तु लोगों ने कल्पना

कर ली। बुड्ढा को इतने जोर का बुखार चढ़ आया था कि वह स्वयं कुछ न कह सकता था।

पैलू सब समझ गया। उसने निर्णय कर लिया कि सिवा भुजबल या शिवलाल के और किसी ने यह दुर्गति न की होगी।

निराला पाने पर पैलुआ ने अजित से धीरे से पूछा—'शिवलाल या भुजबल ? किसने ?'

'पीछे बतलाऊँगा।' अजित ने उत्तर दिया—'अभी इसे देखो।'

बुड्ढे की आखे जल उठी। बोला—'अबकी बार मारकर मरूँगा। बहुत दिन जी लिया। इसे अच्छा हो जाने दो।'

फिर दोनों मे कोई बातचीत नहीं हुई। थोड़ी देर में एक अपरिचित पुरुष अजित के पास आया। अजित उसी घर में ठहर गया था, जहाँ पैलुआ और बुड्ढा थे।

आगन्तुक ने कहा—'आप छावनी से आये हैं ?'

'जी हाँ। कहिये।'

'आप वैद्य है ?'

'नही तो।'

'परन्तु कुछ वैद्यक तो अवश्य जानते होंगे। मेरी बहन की बहुत बुरी हालत हो रही है। उसको जरा चलकर देख लीजिये। शायद आपके स्पर्श से ही कुछ लाभ हो। लोग गाव मे आपका बड़ा गुणगान कर रहे हैं।'

'मैं सचमुच कुछ भी नही जानता हूं। परन्तु आपके साथ चलूँगा अवश्य, और जो कुछ सेवा बने, उसके करने में कोई कोताही नहीं करूँगा। जरूरत पड़े, तो छावनी से डॉक्टर या वैद्य को लिवा लाऊँगा।'

उस व्यक्ति ने निःवास परित्याग करके कहा—'शायद ही, हालत बहुत बुरी है, परन्तु शायद उसके भाग्य मे आपके हाथ का यश लिखा हो !'

अजित उस व्यक्ति के पीछे हो लिया, वह बिल्कुल पास के एक मकान में अजित को ले गया। दरवाजे से लगा हुआ एक तरफ चबूतरा था, और उस पर नीम का पेड़।

रोगी की चारपाई के पास अजित ने जाकर अवस्था देखी। दिया टिमटिमा रहा था। चारों ओर से हवा और रोशनी के रुकाव के लिये फटे कपड़ो के पर्दे डाल दिये गये थे इसलिये अन्धकार और भी घनिष्ट था। देर तक वस्तु परिचय न हो सका।

रोगी को देखते-देखते अजित ने खटिया के पास ही एक सिमटी हुई सी किसी ढकी हुई चीज का रुँधा हुआ करुण रोदन सुना। उस ओर देखा। मुह खुला हुआ था, परन्तु दूसरी ओर, इसलिये पहिचान न सका। बोला—'ये पर्दे हटा देने चाहिये। पवन और प्रकाश के रोकने से भी रोगी की दशा बुरी हो जाती है।'

परन्तु इस सलाह को किसी ने नही माना।

रोगी मे दम बाकी था। परन्तु जाने मे अधिक विलम्ब न था।

अजित ने पूछा—'आप कहे, तो मै अभी दौड़कर किसी वैद्य को बुला लाऊँ? शायद बच जाये।'

इतने में रोगी के मुंह से निकला—'पूना—बेटी!' स्वर बहुत क्षीण था। परन्तु न जाने क्यों अजितकुमार कुछ चौक-सा पड़ा। शायद उसके स्मृति-पटल को किसी नाम ने जरा-सा हिला दिया।

और पास बैठी हुई दूसरी ओर मुह किये जो एक लड़की धीरे-धीरे सिसक रही थी, वह निस्संकोच भाव से रोगी की ओर खुला हुआ मुंह किये खिसक आई, और बहुत ही कोमल स्वर में बोली—'मां, मैं यह हूं।'

अजितकुमार ने पहिचान लिया। पूना थी, और मृत्यु-शय्या पर उसकी मां। जिस दिने भुजबल उससे बातचीत करके छावनी गया, उसी दिन से वह बीमार पड़ गई थी। फिर कभी न उठी।

रोगी ने पूना के सिर पर हाथ फेरने को उठाया। बीच में ही खिचकर रह गया। पूना समझ गई। वह और भी पास जाकर सट गई। फिर हाथ उठा। परंतु पूना को छू-भर गया। सिर तक न पहुच सका।

रोगी के मुंह से बहुत क्षीण स्वर मे निकला—'मास्टर—पूना'—सबने सुन लिया, परन्तु शायद ही किसी ने ठीक-ठीक समझा हो।

अजित को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा—'रोगी अभी बहुत सचेत है। मुझे एक बार इसने मऊ-सहानिया में देखा था, अब भी भूली नहीं है।' बोला—'घबराने की बात नहीं है। मैं ही वह मास्टर हूं। यहाँ तुम्हारे सामने खड़ा हूं। अच्छी हुई जाती हो। बेचैन मत हो। मैं सेवा करने को आ गया हूँ। निश्चित हो जाओ।'

परन्तु रोगी ने नही सुना। जोर से ऊर्ध्व श्वास चलने लगी। पूना करुण क्रन्दन करने लगी। जो व्यक्ति अजितकुमार को बुद्धा के पास से लिवा लाया था, पूना का मामा था। बोला—'बेटी, रोओ मत। जो भाग्य मे होता है, वही होकर रहता है। रोओ मत। शायद अच्छी हो जाये। जब तक साँस, तब तक आस।' परन्तु न तो रोगिणी अच्छी हुई, और न पूना का क्रन्दन बन्द हुआ। थोड़ी देर में पूना की मां परलोक-गामिनी हो गई !

जगह-जगह चर्चा होने लगी— बड़ी भली थी। ऐसी जल्दी प्राण निकल गये ! मरने में कोई कष्ट नहीं हुआ। ठीक मरते-मरते क्षण तक खूब बातचीत करती रही।'

जो गाँव वाले दिन-भर की मेहनत-मजदूरी के मारे अपने-अपने घरों में दाखिल हो चुके थे, वे भी मृतक के सम्बन्धियों के पास आ बैठे।

पूना का रोना-पीटना बन्द न हुआ। मृतक मा से लिपट–लिपट कर रोने लगी।

अजित वही पर बैठा था। पूना का परिचित होने के कारण और इस कारण भी कि पूना की माँ ने मरने से पहले उसे याद किया था, वह वहाँ से चले आने की इच्छा रखते हुये भी उठ न सका। पूना को

बार-बार शांत करने की चेष्टा करता था। परन्तु पूना के अधैर्य का पार न था।

पूना का मामा भी पास खड़ा था। वह रो चुका था, और अब क्या करना चाहिए, केवल यही सोच रहा था। बोला—'लाला, भुजबल को नयेगांव छावनी से तुरन्त बुला लेना चाहिये।'

पूना का रुदन तुरन्त बन्द हो गया—'नहीं, अभी मत बुलाओ मामा। काहे को बुलाते हो?'

'न बुलाऊँगा, तो बुरा मानेंगे। सबेरे दाह होगा। उसमे उनका शरीक हो जाना अच्छा होगा। न बुलाने से बुरा मानेंगे।'

पूना ने क्षीण स्वर में कहा—'मत बुलाओ। कोई अटक नही है। दाह करने के लिये गाव-भर है। मास्टर साहब भी है ही।'

मामा चुप हो गया।

पूना फिर रोने लगी। घर की औरतें बाहर से ही रो रही थी। उनकी भीतर आने की इच्छा अवगत करके अजित और पूना के मामा बाहर निकल आये। स्त्रियाँ पूना को रो-रोकर समझाने-बुझाने लगी।

[४१]

यद्यपि पूना ने मना कर दिया था, तो भी उसके मामा ने छावनी से भुजबल को बुला भेजा। ललितसेन का बहनोई होने के कारण भुजबल की गणना रिश्तेदारों में बड़े आदमियों में हो चुकी थी।

दाह-संस्कार के लिये सब लोग उसके आने तक रुके रहे।

अजितकुमार को वहां देखकर भुजबल को आश्चर्य की अपेक्षा क्रोध अधिक हुआ। परन्तु उसने प्रकट न तो आश्चर्य को ही किया, और न क्रोध को। उपेक्षा करके उससे बोला भी नहीं।

छावनी में भुजबल को मालूम हो गया था कि अजित बुद्धा को सिंगरावन ले गया है। वह इस ओर से निश्चित सा था। जानता था कि बुद्धा कुछ न कर सकेगा।

उसको अपने मंसूबों के पूर्ण सफल होने में बहुत सन्देह नहीं था, परन्तु कुछ अकारण ही अजित का स्मरण उसे कभी-कभी बेचैन-सा कर देता था।

दाह क्रिया से फारिग होने के बाद भुजबल सिगरावन में ही रह गया, और तेरहीं तक वहीं बना रहा। दो-एक मर्तबे छावनी गया भी, तो जल्दी लौट आया।

अजितकुमार एक ही दिन बाद चला गया था। परन्तु बुद्धा की दवा-दारू के लिए वह दिन में एक बार अवश्य हो जाता था। घूमने-टहलने के लिये वह स्थान उसे बहुत भला मालूम हुआ। सिगरावन के तालाब के किनारे और उसके सामने की चकरई पहाड़ी पर बहुधा कुछ देर बैठकर लौट जाया करता था।

बुद्धा की चोटें तो अच्छी हो गई थी, परन्तु बुखार न टूटा था। अजितकुमार को उसकी चिंता थी। अजितकुमार के पास रुपया-पैसा बहुत कम था, परन्तु किसी का कर्जदार न था। उसी मे से वह बुद्धा के लिए खर्च करता था। पैलू और बुद्धा जिस नातेदार के घर ठहरे हुए थे, वह भी एक साधारण दरिद्र किसान था, परन्तु बेमुरव्वत न था, तो भी बिना अजित की सहायता के वह बुद्धा को आश्रय नही दे सकता था। पैलू अपने नातेदार को खेती-किसानी में मदद देकर दिन काट रहा था।

तेरही हो जाने के बाद भुजबल ने पूना से कहा—उसका मामा भी वहाँ मौजूद था—'तुम हमारे साथ छावनी चलो।' और उसके मामा से कहा—'विवाह का यदि ठीक-ठाक हो गया, तो वही होकर हो जायेगा। और, यदि वहाँ के लिए इनका मन न बोले, तो मऊ लिवा जायेंगे। वहां पर सब लोग-बाग है।'

'मैं वहां नही जाऊँगी। मामा के पास बनी रहूँगी। और, यदि मामा कह देंगे, तो मऊ सहानिया चली जाऊँगी।'

पूना की भैसों और खेती का खयाल करके मामा ने कहा—'पूना को यहाँ बना रहने दीजिये। हमारे यहाँ जो कुछ रूखा-सूखा है, सो हाजिर है। उसकी खेती और भैसो का आप इन्तजाम कर दीजिये।'

'मैं वैसे ही बहुत बन्धनो मे पड़ा रहता हूँ। आप इसे अच्छा सँभालेंगे।' भुजबल ने उत्तर दिया।

'भांजी के धान्य और लोक-लाज से मैं डरता हूँ। सँभाल करने का बोझ लेने को तैयार हूँ, परन्तु आप निगरानी करते और हिसाब लेते रहना।' उस सीधे-सादे देहाती ने कहा।

भुजबल केवल उसे सम्बोधन करके कहने लगा—'पूना के ब्याह की मां को बहुत चिन्ता थी। अब यह चिंता मुझे लग गई है। ललितसेन का और एक बुड्ढे जमीदार का सन्देशा उनके पास आया था, उन्होंने नाहीं कर दी थी। अब योग्य वर की तलाश करनी है।'

पूना वहाँ से उठकर चली गई। उसके मामा को विस्मय था कि उसी के समक्ष यह चर्चा क्यों की गई।

भुजलल बोला—'आप ललितसेन के लिये राजी होंगे। और तो कोई बात नही है, धर्म के विरुद्ध है, और अपनी जाति में ऐसा नहीं होता है।'

'कभी नहीं।' पूना के मामा ने कहा।

'और कोई वर नहीं मिलता। जो मिलते भी हैं, उनसे टीपना का मेल नही खाता। एक बड़ी अजीब बात है।'

'क्या?'

'मेरी टीपना से मिलान मिला है। और मां ने मरने के पहले जोर भी दिया था। परन्तु उन्होंने तब कहा, जब ललितसेन के यहाँ मेरा विवाह हो चुका था।'

'आप जो कुछ ठीक समझे, सो करे। बस, इतना हो जाये कि पूना को दुःख न झेलना पड़े।'

'इसमें क्या सन्देह है।'

उसके साथ भुजबल की और बातचीत नही हुई। परन्तु उसी दिन मौका निकालकर भुजबल पूना से अकेले मे मिला।

बोला—'पून्ना, अब तुम सयानी हो गई हो। तुमसे दो बातें करनी हैं।'

पूना सिर नीचा करके खडी रह गई। उसने फिर कहा—'तुम्हारे मामा सीधे-सादे किसान है। दुनियां का ऊँच-नीच नही समझते। समय बुरा है। तुम्हारा यहां अकेले रहना अच्छा नहीं मालूम होता।'

पूना ने धीरे से कहा—'तब क्या करूँ ?'

'हमारे घर चलो। छावनी ठीक न जान पडे, तो मऊरानीपुर चली चलो।'

'मुझे यहाँ बना रहने दीजिये। मै भी किसान की लड़की हूं। किसानों में मेरा निर्वाह अच्छी तरह हो जायगा।'

'तुम्हारे विवाह की मुझे बड़ी चिन्ता है। पास रहोगी, तो ज्यादा फिक्र बनी रहेगी।'

पूना ने कोई उत्तर नही दिया। भुजबल ने कुछ सोचकर कहा—'यदि इस समय तुम्हारी इच्छा यहाँ रहने की है, तो मैं जिद न करूगा।' फिर कुछ ठहरकर बोला—'ब्याह के विषय में मरने के पहले तुम्हारी माँ ने एक इच्छा प्रकट की थी, तुम्हें मालूम है ?'

पूना सिर नीचा किये खडी रही, परन्तु उहका चेहरा लाल हो गया था।

भुजबल ने कहा—'अच्छा, मैं फिर किसी समय शीघ्र ही बतलाऊँगा, मुझे तुम्हारी बड़ी चिन्ता है।'

पूना ने नीचा सिर किये धीरे से कहा—'आप-जैसा हितू अब मेरा संसार में और कौन है।' और रोने लगी। भुजबल चला आया।

[४२]

एक बार जहाँ अपनी कार्य-विधि को व्यवहारिक क्षेत्र में अवतरित-भर कर पाया कि फिर भुजबल अपनी आंतरिक शक्तियों को चैन नहीं लेने देता था।

परन्तु सिगरावन से लौटने पर उसे ललितसेन से बातचीत करने के लिये अवसर नही तलाश करना पड़ा। दोनों में इस तरह बातचीत चल पड़ी—

'कहो, सिगरावन का क्या हाल है? माँ के मरने से लड़की तो बड़ी व्यथा में होगी?'

'सो तो है ही, परन्तु हम लोग उससे अधिक व्यथा में हैं। पूना के विवाह की समस्या बड़ी उलझी हुई मालूम पड़ती है।'

'उसका कोई रिश्तेदार तो है?'

'कई एक हैं। इस समय वह अपने मामा के पास है। सीधा-सादा लट्ठ देहाती आदमी है। आपके लिये राजी नही मालूम पड़ता।'

'वह क्या चाहता है?'

'निश्चय-पूर्वक कुछ नहीं कहा। एक बात पूछता हूँ।' और फिर हँसकर कहा, 'आपके दर्शन शास्त्र के लिये मसाला है।'

ललितसेन ने बिना हँसे हुये कहा—'वह क्या है?'

'एक स्त्री के रहते हुये मनुष्य दूसरा विवाह कर सकता है या नहीं?' भुजबल बोला।

ललितसेन ने खूब आँख गढ़ाकर कहा—'आपका क्या मतलब है?'

भुजबल ने आँख मिलाये हुये ही जवाब दिया—'कोई विशेष प्रयोजन नही है। परन्तु विषय से सम्बन्ध रखता है, इसलिये पूछा।'

'क्या कोई ऐसा वर भी है?'

'जी हाँ।'

ललितसेन ने क्षुब्ध होकर—'तुम्हारा यह शिवलाल मालूम होता है, अंधा है।'

भुजबल ने हँसकर कहा—'इसमें सन्देह करने के लिये रत्ती भर भी स्थान नहीं, और मेरी चर्चा का कुछ इशारा उस तरफ भी था।'

ललितसेन के कुछ क्षण बाद गम्भीर होकर—'ऐसे जर्जर तन, कूड़ा-करकट, सड़े आदमी का तो एक भी विवाह नही होना चाहिये। अयोग्य मनुष्य का योग्य स्त्री पर अधिकार प्रकृति के नियमों के प्रतिकूल है।'

'यह बिलकुल सच है।' भुजबल बोला,—'परन्तु मेरे प्रश्न पर यह दार्शनिक सम्मति नहीं फबती मेरा तो सवाल ही दूसरा है। सारे पहलू पर जवाब माँगता है।'

ललितसेन ने कहा—'एक मनुष्य के लिये एक स्त्री, यह एक स्वाभाविक बात मालूम पड़ती है। इसीलिये योरुप के देशों मे एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री के साथ विवाह कानून के द्वारा निषिद्ध ठहराया गया है। परन्तु यह विधि बहुत सन्तोषजनक नहीं पाई गई। परम्परा के भक्त इसके दोषों को दूर करने की फिक्र में हैं। तलाक एक उपाय है, परन्तु दवा कभी-कभी मर्ज से भी बुरी हो जाती है। वह विवाह की प्रथा बिलकुल ही नीच नहीं है। खास खास कारणों के उपस्थित होने पर कभी कभी यदि ऐसे विवाह हो जायें, तो निंदनीय नही हैं। परन्तु ऐसी हालत में तलाक को भी किसी न किसी रूप में मानना पड़ेगा।'

'यदि आपके लिये पूना का मामा तैयार न हुआ, और कोई उपयुक्त वर न मिला, तो ऐसी अवस्था में या तो शिवलाल को ग्रहण करना पड़ेगा या इससे कोई अच्छा; परन्तु इसी विवाहित श्रेणी का वर पसन्द करना होगा।'

ललित ने तेज होकर कहा—'कदापि नही। उस फूल को काँटे की नोक पर नहीं कुतरना चाहिये। उसके विषय में बहु-विवाह-समर्थक भी

कभी यह नहीं कह सकते कि जीवन के आरम्भ से ही सौतियाडाह की आग में झुलसा दी जाय।'

भुजबल ने सोचते सोचते कहा—'यथाशक्ति ऐसा न होने पावेगा।'

ललित ने कुछ आकस्मिक वेग के साथ पूछा—'उस लड़की की क्या इच्छा है? वह तो सयानी है।'

'उसकी कोई विशेष इच्छा नहीं है।'

'बिलकुल ठीक मालूम है?'

'हां।'

[४३]

बुद्धा अभी स्वस्थ नहीं हुआ था। अजितकुमार कभी कभी सिंगरावन उसकी दवा-दारू के लिये जाया करता था। यदि उसकी दवा-दारू का विशेष कारण सामने न भी होता, तो इतनी दूर वह वैसे ही अकारण टहल लिया करता था।

उस दिन छावनी छोड़ते ही कुछ दूरी से भुजबल भी उसी ओर जाता दिखलाई पड़ा। अजित रास्ता कतराकर जाने लगा, परन्तु कुछ समय के परिश्रम के बाद एक जगह इकट्ठा होने का अनिवार्य अवसर आ ही गया।

भुजबल बोला—'मास्टर साहब, कहां का चक्कर काट रहे हो?'

अजित ने कहा—'यों ही। जरा सिंगरावन तक जा रहा हूँ।'

'आप बुद्धा की इतनी चिंता न करें। वह मरेगा नहीं।'

थोड़ी देर दोनों चुप रहे। भुजबल फिर बोला—'इन छोटे आदमियों को इतना सिर चढ़ा लेने से ही हम लोगों पर तबाही आ रही है।'

'अभी तबाही नहीं आई है, परन्तु यदि इन लोगों के साथ इसी तरह की बेदर्दी का बर्ताव रहा, तो भयंकर फल होगा।' अजितकुमार ने कहा और मन में बहस न करने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

बहस की आकांक्षा भुजबल के मन में भी बहुत फड़का करती थी। परन्तु वह किसी अंध-प्रेरणा के वश उससे बोला—'उस दिन मैंने अपना

गुस्सा बहुत रोक लिया था। मैं अपने काम में किसी का दखल देना नहीं पसन्द करता हूं।'

'और दूसरों के खून में तो शायद बर्फ ही भरी हुई है ?' अजित ने कहा—'आप अपना काम देखिये, मैं अपना काम देखूंगा। मेरा आपका मार्ग भिन्न है। रार-तकरार मे कुछ लाभ नही दिखलाई पड़ता।'

'इसमें क्या सन्देह है ?' भुजबल होठ सिकोड़कर बोला—'मदरसे के शिक्षक और गांव के जमीदार की गली न्यारी-न्यारी है, परन्तु इस तरह सिंगरावन बहुत जाने के कारण किसी दिन आपको पछताना पड़ेगा।'

अजित ने खूब दृढ और तीक्ष्ण दृष्टि से भुजबल की ओर देखा। एक क्षण बाद स्थिर भाव के साथ बोला—'देखा जायगा।' और तेजी के साथ कदम बढ़ाकर भुजबल से आगे जाने की चेष्टा करने लगा। फिर कोई बातचीत नहीं हुई।

थोड़ी देर में गांव आ गया। जहां से गली लालसिंह के मकान की ओर मुडी थी, वहाँ से बुद्धा का घर तीस-चालीस कदम के लगभग था। जरा आगे लालसिंह का मकान था। एक लडकी उसी ओर चली जा रही थी। पैर की आहट पाकर उसने पीछे मुड़कर देखा। जरा ठिठकी। कपड़ा खींचा, और तेजी के साथ बढ़ने लगी। ५–६ कदम चलकर फिर रुक गई, और एक ओर खड़ी होकर कभी अजित की ओर, और कभी मकान की दीवार की ओर देखने लगी। अजित ने पहिचान लिया, पूना थी।

जब अजित पास पहुंचा, उसे ख्याल हो आया—'इस अनाथ की मां ने मुझे अपने मरने के पहले स्मरण किया था। न-जाने क्या कहना चाहती थी। बोला—'पूना, अच्छी तरह हो ?' खड़ा हो गया।

जाने के लिये उद्यत पूना ने धीरे से कहा—'जी हां।' परतु मुंह दूसरी ओर किये रही। मालूम होता था, जैसे भागने के लिये कही छोटा पतला-सा मार्ग ढूंढ रही हो। शरीर उसका काप-सा रहा था।

इसी समय मोड़ पर भुजबल आ गया। अजितकुमार ने उसे देखकर कहा—'तुम्हारे बहनोई भी आ रहे है, उनका आतिथ्य करो। मैं जाता हूं।'

पूना बहनोई को देखकर सकपका सी गई। तेजी से जाने के लिये पैर उठाया, परन्तु न उठा। भुजबल पास आ गया, वह खड़ी रही। टकटकी लगाकर अपने बहनोई की ओर देखने लगी।

भुजबल की आँखें उसे भयानक-सी मालूम पड़ी। कुछ कहना चाहती थी कि भुजबल ने बहुत धीमे, परन्तु जरा तीव्रता के साथ कहा—'चलो, यहाँ खडी-खड़ी क्या कर रही हो?' पूना कुछ कहना चाहती थी, पर उसके गले में शब्द रुक-सा गया। भुजबल के पीछे-पीछे चल दी।

घर पहुंचने पर जब भुजबल ने एकांत पाया, तब लालसिंह से कहा—'मैंने आज पूना के लिये निश्चय कर लिया है।'

'क्या?' लालसिंह ने पूछा।

भुजबल ने उत्तर दिया—'पूना की सगाई के विषय में।'

लालसिंह ने फिर वही प्रश्न किया।

कुछ देर सोचने के पश्चात् भुजबल बोला—'फिर बतलाऊँगा। अभी नही।'

लालसिंह ने और कुछ नही पूछा।

सिगरावन से छावनी के लिये चलने के समय भुजबल ने पूना को अकेले मे बुलाया। वह किवाड़ पकडकर मुँह छिपाये हुये खड़ी हो गई।

भुजबल ने धीरे-धीरे कहा—'अगले महीने मे विवाह होगा पूना तुम्हारा। तुम छोटी होती, तो न कहता। सयानी हो गई हो इसलिये कहा।'

पूना बिलकुल चुपचाप खड़ी रही। भुजबल फिर बोला—'किसके साथ तुम्हारा विवाह होगा, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि तुम जानती हो।'

वह बिलकुल निष्पद खड़ी रही। भुजबल ने कहा—'आज से ठीक बीसवें दिन। इसलिये जल्दी है कि दुनिया के ढंग अच्छे नहीं है।'

एक क्षण चुप रहने के बाद फिर बोला—'तुम्हारा गांव में इधर-उधर फिरना अच्छा नही मालूम होता।'

'कहां ?' पूना ने बहुत प्रयत्न के बाद बहुत क्षीण स्वर में प्रश्न के आवरण में उत्तर दिया।

'कहां ?' भुजबल ने कुछ आश्चर्य और रुखाई के साथ दुहराते हुये कहा—'इन सब बातों पर तर्क करने की जरूरत नहीं मालूम पड़ती। घर का काम देखो, और जो कुछ तुम्हारे बड़े तुम्हारे लिये तय करें, उसे मानो।'

'उसे तो मानती ही हूं।' पूना ने कांपते हुये गले से कहा।

भुजबल नरम होकर बोला—'यह बात ठीक है। अब मैं जाता हूं। अपनी पूजा-पत्री बराबर करती रहो। तुम्हारी मां ने मरने के पहले मुझे जो आज्ञा दी, और मैंने उन्हे जो वचन दिया था, उसके निभाने के लिये मैं तैयार हो गया हूं। कोई कुछ कहे, अब और किसी तरह निवारण होता नहीं दिखता। तुम्हारे लिये सोने के कितने गहनों की जरूरत पड़ेगी ?' अन्तिम प्रश्न करते ही भुजबल के चेहरे पर एक हलकी लालिमा दौड़ गई।

पूना ने साफ गले से कहा—'किसी की नही।' और तुरन्त भीतर चली गई।

[४४]

जितनी देर भुजबल सिगरावन में ठहरा, उससे अधिक समय तक ठहरे रहने के लिए अजित को जरूरत नही पड़ी। जिस समय वह छावनी जाने के लिये तैयार हुआ, उसको खबर मिली कि भुजबल भी जाने को है।

मार्ग में फिर तर्क वितर्क न हो, इसलिये उसने एक कोस के चक्कर से उत्तर की ओर तालाब और चकरई की पहाडी और नयेगांव ग्राम के पास से होकर तिंदरी और फांटा की पहाड़ियों के निकट जाने का निश्चय किया।

वह इधर से गया, और उधर से पूना तालाब से नहा-धोकर कंधे के सहारे भरा लोटा हाथ की गदेली पर और दूसरे कंधे पर गीली धोती रक्खे हुये आती हुई मिली। तप्त स्वर्ण-सदृश निखरा हुआ रंग और प्रभामय मुख-मण्डल। अजित ने कुछ कौतूहल के साथ देखा। किसी आंतरिक पीड़ा के कारण स्वभाव-सहज उल्लास मुख पर न था। पूना नीचा मुह किये हुये चली गई। अजित की इच्छा हुई कि कुछ बात करें, परन्तु बेरुख देखकर चुपचाप चला गया। उसे ऐसा मालूम पड़ा, जैसे किसी वन में कुहरे से ढका हुआ गेहूं का खेत आँख के सामने एक क्षण के लिये आकर ओट हो गया हो।

यकायक उदास हो गया। सिर घूमने सा लगा। जैसे चक्कर आने को हो। पास ही चकरई पहाड़ी और उसके ऊपर प्राचीन काल के बने हुये एक कोठे को देखकर उस पर चढ़ गया। थोड़ी देर के लिये छाया मे बैठकर तालाब की ओर रिक्त दृष्टि से देखने लगा। मन में कहा—'इससे अधिक और चाहता ही क्या हूँ ? कभी दर्शन नही होते। न हों। कभी कान मे कूज नही पड़ती। न पडे। मेरा शायद ही कभी स्मरण होता हो। न हो। परन्तु मेरे स्मृति-पटल पर से किसकी मजाल, जो उस चित्र को पोंछ सके ?' फिर जेब से एक चित्र निकालकर उसे देखने लगा।

रतन का चित्र था।

मन में बोला—'यह यदि सुखी रहे, तो कोई चिंता की बात नहीं। सुखी न होगी ? परन्तु यह तो मेरा स्वार्थपूर्ण भाव है। क्यों सुखी न होगी ? घर सम्पन्न है ! भाई भला आदमी है। यदि भुजबल अच्छा आदमी होता ! कैसे क्रूर मनुष्य का साथ हुआ है ! परन्तु भुजबल क्या इतना पशु होगा कि ऐसे कोमल, ऐसे सुन्दर कुसुम को जान-बूझकर शीर्ण कर दे ? भुजबल का बर्ताव दीन किसानों के साथ जैसा हो, परन्तु उसके साथ ऐसा न होगा। वह गायन-वादन का भी प्रेमी है। उसके हृदय में अवश्य ही एक ललित कोना होगा, जहाँ रतन ने स्थान पा लिया होगा ?'

फिर आह खींचकर थोड़ी देर निरपेक्ष भाव के साथ तालाब की ओर देखता रहा। जल की एक बारीक रेखा-मात्र वहां से दिखती थी, परन्तु वह उसी को खूब ध्यान लगाकर देख रहा था। थोड़े समय बाद ट्यूशन का याद करके उठ खड़ा हुआ, और चित्र को जेब में रख लिया।

मन में कहा—'मैं भुजबल से कभी नहीं लड़ूँगा। वह मेरे साथ चाहे जैसा बुरा बर्ताव करे, मैं उसको दुखी न करूँगा। भुजबल के दुखी होने पर रतन सुखी न रह सकेगी।'

[४५]

भुजबल की अनुपस्थिति में ललितसेन ने एक दिन लालसिंह को बुलवाया। मैली धोती, होली के दिनों की, रंग के छींटों से रंग-बिरंगी, अँगरखी पहने, और बड़े एतियात से रक्खा हुआ बिलकुल सफेद साफा बांधे, मोटी लकड़ी हाथ में लिये लालसिंह दरवाजे तक मजे में आ गया। बैठक में घँसने का साहस न हुआ। वहीं से बोला—'मुझे हुक्म हुआ था, सो आ गया।'

ललितसेन उठकर आया, और बैठक मे ले जाकर उसे बिठला लिया।

ललितसेन ने बिना भूमिका बांधे हुए कहा—'आप अपनी भांजी का विवाह करना चाहते है?'

'जी हाँ, उसके लिये तो मारे-मारे ही फिर रहे है।' लालसिंह ने कहा—'परन्तु वर नहीं मिलता।'

'किसी के साथ टीपना मिली है?'

'जी हाँ, टीपनायें मिली है।'

'किसकी?'

'एक तो भुजबल की और एक कोई मास्टर है, जो गरीबों की दवा-दारू करते हैं।'

ललितसेन ने कुछ चकित होकर कहा—'भुजबल की?' फिर हँसकर बोला—'यह तो असम्भव है। परन्तु मास्टर कौन है?'

लालसिंह ने भोलेपन के साथ कहा—'एक मास्टर यहाँ छावनी में है, जो कुछ पागल या सनकी से सुने जाते है।'

'नाम अजितकुमार है ?' ललितसेन ने पूछा।

लालसिंह—'नाम नही मालूम।'

ललित—'परन्तु यह आज ही मालूम हुआ कि वह पागल हो गया है।'

इसके एक क्षण बाद ललित ने पूछा—'आपकी इच्छा क्या है ?'

उसने उत्तर दिया—'जो भुजबल जी की इच्छा होगी, और आप चार जनों की मर्जी होगी।'

ललित ने बेधड़क कहा—'मेरी और भुजबल की एक ही इच्छा है। उन्होंने जो कुछ कहा होगा, उससे मैं सहमत हूं।'

लालसिंह नम्रता के साथ बोला—'सो आपकी आज्ञा सिर माथे है। आप तो हम लोगों के सिर-मौर है।'

'जन्मपत्री तो बहुत पहले ही मिल चुकी थी। अब कोई और विशेष विघ्न तो है नही ?'

'कुछ भी नही।'

'इस घर मे आपकी लडकी को देवी की तरह रक्खा जायेगा।'

'किस घर मे ?'

'इसी मे।'

'तो भुजबल जी मऊ न ले जायेंगे। एक जगह रहने मे लड़ाई झगड़े का डर रहता है।'

'लड़ाई—झगड़े का डर ! किसके साथ ?'

'भूल क्षमा कीजियेगा। मैं गाँव का आदमी हूँ।'

ललित ने लालसिंह को अपने शिष्टाचार से प्रसन्न करने के प्रयोजन से कहा—'मैं पान ले आऊँ, अभी तो मेरा पान खाने में कोई हर्ज नही है। सम्बन्ध हो जाने के बाद फिर चाहे न खाइयेगा।'

'फिर क्या हो जायगा ?' लालसिंह ने पूछा।

'यही कि लोग दामाद के यहाँ का जल भी ग्रहण नहीं करते।' ललित ने उत्तर दिया।

लालसिंह बोला—'आपके साथ सम्बन्ध थोड़ा ही होना है।'

और सबसे पहले अब की बार थोड़ा-सा मुस्कराया।

ललितसेन ने इस बात में उस देहाती की सहज-सुलभ मूढ़ता देखकर कहा—'इसका मैं अर्थ नही समझा। अभी तो आप कहते थे कि मेरे साथ सम्बन्ध करने मे आपको उज्र नहीं है।'

'वाह साहब, वाह!' देहाती बोला—'मैंने तो यह कभी नहीं कहा। आप बड़े आदमी होकर ऐसे अधर्म की बात कहते है! बहन के साथ क्या इस कलिकाल मे भी किसी का विवाह हो सकता है?'

ललित की समझ मे अब कुछ आ गया। भौंचक्का सा रह गया। परन्तु शीघ्र सँभलकर बोला—'मैंने यही पूछने के लिये बुलाया था। यदि आपकी इच्छा नही है, तो कोई जबरदस्ती थोड़े ही है।' और देर तक चुप रहा। लालसिंह ने वहां अपनी उपस्थिति की उपयोगिता की समाप्ति समझकर उठते हुये पूछा—'तो मैं जाऊँ?' ललितसेन ने किसी विचार में गोते खाते हुये अन्यमनस्क होकर कहा—'जी हाँ।'

[४६]

यद्यपि थोड़े ही दिन पहले निराश होकर बिलोची लोग अपने घोड़े लेकर चले गये थे, और शिवलाल को अपनी गुणग्राहकता प्रकट करने का मौका न मिल पाया था, तथापि शिवलाल के मन मे जो बात समा गई थी, उसके अनुकूल परिस्थिति मे व्यावहारिक रूप मिल गया। शिवलाल ने दो घोड़ों की एक फिटन मोल ले ली।

जमीदारी के किसी काम से लौटकर आते ही भुजबल शिवलाल के पास गया। जुती हुई फिटन बाहर खड़ी थी। शिवलाल हवाखोरी के लिये जाने को तैयार हो रहा था।

भुजबल को देखते ही आत्मसंतोष के साथ बोला—'सस्ते मोल मिल गई है। घोड़े भी मजे के हैं। चलो, रास्ते मे बातचीत होती

चलेगी। आज बदली है। मंद-मंद समीर बह रहा है, कवियों को पुलकित करनेवाला।'

भुजबल ने कहा—'मैं साथ न जा सकूंगा।'

'कुछ कहना है, थोड़ी-सी बातचीत करके जाऊँगा।'

थोड़ी दूर हटकर दोनों मे बातचीत होने लगी।

भुजबल बोला—'अदालत में साहूकारों का रुपया अब तक जमा नही किया? मियाद आजकल में जानेवाली है। यदि मियाद निकल गई, तो सर्वनाश हो जायेगा।'

'अजी अभी काफी मियाद है।' शिवलाल ने कहा—'और फिर तुम अपने हथकण्डों से और भी मियाद ले लोगे।'

भुजबल तीखेपन के साथ बोला—'अब मुहलत न मिलेगी। मियाद समाप्त होते ही बैनामों की सारी कारवाई मिट्टी मे मिल जायेगी।'

'क्यों?'

'कानून है। इसी शर्त पर अदालत की अनुमति बैनामा करने को मिली थी। यदि साहूकारों की डिग्री का रुपया दाखिल न किया गया तो सब बैनामे कानून के विरुद्ध समझे जाकर नष्ट हो जायेंगे।'

'और जायदाद के मालिक क्या साले साहूकार बन जायेंगे?'

'सो तो नही है, परन्तु जायदाद नीलाम हो जायेगी। बाबू ललित-सेन का दस हजार रुपया मारा जायेगा।'

'मैं तो कही भाग नही जाऊँगा।'

'परन्तु हम लोगो ने ललितसेन को विश्वास दे रक्खा है कि अदालत में रुपया जमा कर दिया है। वह जब सुनेंगे, तब क्या कहेगे?'

'कुछ परेशान होने की बात नही है, मै भी इतना कानून जानता हूं कि नीलाम होने के पहले यदि रुपया दाखिल हो जाये, तो जायदाद बच जाती है। फिर मेरी आधी जायदाद तो बची हुई है। बाबू ललितसेन के रुपये की इतनी चिंता न करो।' भुजबल मुँह लटकाकर रह गया। पूछा—'फिटन और घोड़ों में कितना रुपया बिगाड़ा है?'

'बिगाड़ा है ?' शिवलाल ने नाक सिकोड़कर कहा—'आठ सौ रुपये में ऐसी सस्ती चीज कहीं नहीं मिल सकती थी। एक कर्नल साहब की है। बेचारे विलायत जा रहे है। उनकी बात कहाँ मिलती ? इसलिये ले ली। काम देगी। बहार रहेगी।'

भुलबल दांत पीसकर रह गया। एक क्षण बाद बोला—'और कितना रुपया फूकने से बचा है ?'

शिवलाल हँसकर बोला—'यह लीजिये। अब आप बिगड़ गये। अजी साहब, रुपये की सिर्फ शकल बदल गई है। रुपया न सही, माल तो पास है। कुछ सोने के गहने बनवा लिये हैं। विवाह यदि जल्दी होने को हुआ, तो जेवर का शीघ्र जुटाना लगभग असम्भव हो जाता। बनवा लिया। जल्द काम मे आवेगा। घबराइये मत जनाब, जरूरत पड़ने पर गहने के फिर रुपये खड़े किये जा सकते हैं। कर्नल साहब को खुश रखने की नियत से अभी लोग एक हजार रुपया घोड़ा-गाड़ी का दे देंगे। बाकी रुपये अभी रक्खे हुये हैं।'

माथा टटोलने के बाद भुजबल ने कहा—'खूब किया! अच्छा किया! अब देखें, क्या आफत आती है!'

शिवलाल ने टोककर कहा—'तुम तो बुढ़ियों की तरह रोना ले बैठे। कसम जवानी की, यह चर्चा अब और न छेड़ने दूँगा।'

'तब क्या कहूं, और क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता ?' भुजबल ने निर्बल स्वर में कहा, और उसका मुँह बिलकुल मुर्झा सा गया।

शिवलाल ने उसे उत्साहित करने के इरादे से कहा—'यह बात बहुत हो ली, अब मतलब की बात करो। सगाई-सम्बन्ध की बात किस सीढ़ी पर पहुँची है ?'

'वह नहीं होती दीखती। लड़की की माँ के मर जाने से स्थिति में बड़ा परिवर्तन हो गया है। उसका मामा बहुत हठी मालूम होता है।' भुजबल ने उत्तर दिया। शिवलाल उत्तेजित होकर बोला—'उसके

मामा की क्या दम, जो इनकार कर सके ? मै इतना खर्च कर चुका हूं। जमीदारी दे चुका हूं। अब विवाह को क्या कोई रोक सकता है ?'

भुजबल ने कुछ शाति प्राप्त करके कहा—'जमीदारी जैसी दी, वैसी न दी। डिग्रियों का रुपया दाखिल न करने से वह सब देना-लेना बराबर हो जायेगा।'

शिवलाल सोचकर बोला—'उसका मामा बड़ा काइयां मालूम होता है। जमीदारी को सुरक्षित समझकर शायद मुझे अँगूठा दिखला देगा। मैं तो भाई, रुपये अभी कदापि दाखिल न करूँगा यह सब विवाह होने के बाद होगा। इसमे तुम्हारे ललित जी चाहे नाराज हो जायें, और चाहे खुश रहे—मैंने तय कर लिया है।'

भुजबल ने अकस्मात अपना भाव बदलकर कहा—'विवाह तो कोई कठिन बात नहीं है। 'मैं उसके मामा को बात-की-बात में सीधा कर लूँगा, परन्तु जैसे बने, वैसे अदालत में रुपया तुरन्त दाखिल होना चाहिये।'

'तुम्हे याद होगा कि हमने रजिस्ट्री के समय कहा था कि रुपया दाखिल कर दो।' शिवलाल बोला—'परन्तु तुम्हीं ने कहा था कि अभी ऐसी जल्दी नही है, छावनी चलकर देखा जायेगा। और तुमको स्मरण होगा कि कुछ रुपया तो तुम्हारे ही पास है। उसकी मुझे परवा नहीं, परन्तु यह निश्चय है कि विवाह पहले होगा, रुपया पीछे दाखिल किया जायेगा।'

भुजबल ने फिर हठपूर्वक मुस्कराकर कहा- 'आप बडे जिद्दी हैं। यह तो सोचिये कि यदि विवाह हो भी, तो चार दिन में कैसे सब रीतें निभ जायेंगी ? फलदान है, लगन है, और न मालूम कितने नेग और होते है।'

'अच्छा, यही सही। फलदान हो जाए, उसके बाद रुपया दाखिल कर दिया जायेगा। कब होगा फलदान ?' शिवलाल ने प्रश्न किया।

भुजबल कुछ देर तक सोचता रहा। सोचने के अनन्तर बोला—'परसों।'

बहुत प्रसन्न होकर शिवलाल ने कहा—'भाई, बुरा मत मानना। बात यह है कि तुमने पहले सौदा किया है। तुमने जमींदारी पहले बैनामा कराई होती, तो मैं यह हठ न करता। अब चलो, घूम आवें।'

'इस समय क्षमा कीजिये। बहुत काम करना है।' कहता हुआ भुजबल वहाँ से चला गया।

उसके जाते-जाते शिवलाल ने फबती कसी—'जिसके गायन-वादन के सुनने के लिये इतने आतुर होकर चले जा रहे हो, हमे फिर कभी न सुनवाया, देखूँगा।'

[४७]

शिवलाल जब हवा खाकर लौट आया, तो पानी बरसने लगा। खाना खाकर जा लेटा, और शृङ्खला-विहीन विचारो और कल्पनाओं मे लतपत होने लगा। पानी रिमझिम बरस रहा था, परन्तु उसके मन में मूसलाधार-सी हो रही थी।

पूना का प्रसन्न वदन, हेम-वर्ण और अङ्ग, विशेषत: लजीले नेत्र, विविध भांति के आकर्षक, उत्तेजक और मोहक रूप धारण कर-करके आँखों के सामने आने लगे, और उसकी असंयत अनिश्चित प्यास को बढ़ाने लगे। विवाह की और विवाहित अवस्था की असंख्य कल्पनाओं में मन को उलझाकर कामियों के कल्पित स्वर्ग का आनन्द लूटने लगा। वर्तमान की वास्तविक वस्तु-स्थिति जब-जब कुछ निराश करती, तब-तब विवाह करने की उत्कट इच्छा को दृढ़ प्रण, कठोर हठ का रूप देने लगा।

परन्तु एक नतीजे पर पहुंचकर मन को विश्रान्ति देना शिवलाल के स्वभाव में न था। कामुकता की लहर में पूना की तुलना न मालूम अपने किस-किस अनुभव के साथ की। परन्तु इन्द्रिय-लोलुप मौजी शिवलाल भी इस तुलना मे पूना को उसके लावण्य से अधिक न जाने किस बात में

उसे बढ़ा-चढा हुआ देखने लगा। इतने में किसी समय किसी के मधुर कण्ठ से निकली हुई स्वरावलि की ध्वनि कान में गूंजी; और कोई सुन्दर मुख आंखों के सामने से घूम गया। कई बार चेष्टा की, कई बार प्रार्थना की, परन्तु गले की वह तान फिर न सुनने को मिली, वह दर्शन फिर न हुआ। शिवलाल यह सोचकर व्याकुल हो गया।

मन में कहा—'भुजबल'बड़ा स्वार्थी, पामर है। वैसे न-मालूम कहां-कहां हमारा साथ किया, परन्तु अपनी स्त्री का गाना उस दिन के बाद फिर कभी न नसीब होने दिया। जैसे होगा, वैसे कल गाना तो जरूर सुनूंगा।' कभी पूना, कभी रतन, कभी घोड़ा-गाड़ी और कभी गहने—इस तरह के ऊट-पटाँग खयालों में डूबते-उतराते अन्त में साहूकारों की डिग्रियों की विभीषिका और लापरवाही के निश्चय से उत्तेजना की धारा के परिवर्तन में किंचित् शांति पाकर उखड़ी-पछड़ी नींद में सो गया।

सबेरे उठकर बैठक मे गया। उसी समय अजितकुमार आया। नौकर मौजूद थे। उसके आने से बहुत प्रसन्न न होकर शिवलाल बोला—'आज सबेरे ही कैसे तकलीफ की मास्टर साहब?'

अजित के उत्तर दिया—'आपने एक बार ऋण पर रुपया लेने के लिये इच्छा प्रकट की थी।'

'सो?' नौकरों की उपस्थिति मे यह चर्चा सुनकर कठिनाई से अपनी असप्रन्नता को छिपाकर उसने पूछा।

'ऋण पर नही, वैसे ही बहुत-सा रुपया मिल सकता है।' अजित ने मुक्त हास के साथ कहा।

'सो कैसे?' शिवलाल ने अप्रसन्नता कम और विस्मय अधिक प्रकट करते हुये कहा।

'आज सुबह मैं अपने मकान के पीछे के खँडहर में लघुशंका के लिये गया, तो स्वर्ण-मुहरों से भरा हुआ एक घड़ा पानी के प्रवाह के कारण

पृथ्वी मे से कुछ उभरा हुआ दिखलाई पड़ा। मैंने उसको उखाड़ लिया। चाहिये हो, तो दे जाऊँ।'

पहले शिवलाल ने सोचा कि किसी ने सुना तो नहीं। नौकर पास ही खड़े सुन रहे थे। बोला—'आप ही क्यों नहीं ले लेते?'

अजित ने हँसकर कहा—'लावारिस माल है। नाठ का धन। मुझे जरूरत भी नहीं है।'

शिवलाल नौकरों की ओर देखते हुये बोला—'नाठ का धन मुझे नही चाहिये। प्रेतात्मा सांप का शरीर धारण करके उसकी रक्षा किया करते हैं। जो इस तरह का धन अपने कब्जे में करता है, निर्वंश हो जाता है। आप ही को मुबारक हो। मैं न लूँगा।'

अजित ने कहा—'पहले मेरी भी इच्छा हुई थी कि आपको न दूँ, परन्तु यह सोचकर कि आपको यह संपत्ति कठिनाइयों का सामना करने में सहायता करेगी, और एक बार आपको वचन दिया था, यद्यपि बहुत शिथिलता के साथ, इसलिये कहने आया था। अब जो उसका हकदार दिखलाई पड़ रहा है, उसे जा कर दे दूँगा।'

'किसको?' शिवलाल ने प्रश्न किया, परन्तु बिना उत्तर दिये अजित वहाँ से चला गया। शिवलाल मन मे कभी नौकरों को, कभी धर्म को, कभी अजित को और कभी अपने को देर तक गालियां देता रहा। अजित ने वह सब धन मैजिस्ट्रेट की कचहरी में जमा कर दिया।

[४८]

संध्या का समय था। बदली अब भी छाई हुई थी। कभी-कभी एकाध बूंद टपक जाती थी। अन्धकार व्याप्त न हुआ था। ललितसेन का दरवाजा खुला हुआ था, परन्तु बैठक खाली था। भीतर से हारमोनियम पर किसी बारीक मधुर कण्ठ के गायन का शब्द लहरा रहा था। गायन धीमा था। और करुण-सा। बदली से छाये हुए नभ में पूर्ण तिमिर के प्रवेश के समय वह तान किसी व्याकुल तन्त्री की झनकार जान पड़ती थी।

इसी समय अजित वहां होकर निकला। इस मार्ग से वह बहुत कम आया-जाया करता था। आज ज्यों ही ललित के मकान के पास पहुचा, त्यों ही दूर निर्झरित स्वर के कान मे पड़ते ही इस तरह खड़ा हो गया, जैसे किसी ने पैर थाम लिए हों। 'कोई आ जाय, तो क्या सोचेगा ?'

यह प्रश्न मन में उठा, और उसका असुविधा-जनक उत्तर भी मन में आया, परन्तु वहा से जा न सका, कुछ छिपा-सा एक कोने के पीछे खड़ा हो गया।

मकान के सामने सड़क पर किसी की गाड़ी के आने की आहट मालूम पड़ी। वह सटकर खड़ा हो गया, जैसे कोई चोर या अपराधी हो। गाड़ी दरवाजे पर खड़ी हो गई। मेघाच्छादित संध्या के उस निर्बल प्रकाश में अजित ने गाडी से उतरने वाले व्यक्ति को पहचान न पाया। अजितकुमार को कुछ अचरज हुआ। उस व्यक्ति ने दरवाजे पर खड़े हो कर झाका। बैठक सूनी थी। भीतर से गाने का शब्द आ रहा था।

गाड़ीवान से उस व्यक्ति ने कहा—'तुम जाओ। मैं आ जाऊँगा। छाता पास है।' गाड़ी चली गई, और वह बैठक मे पहुंच गया।

अजितकुमार की इच्छा चले जाने की हुई। परन्तु गायन बन्द न हुआ था। वहां से चले जाने की कई बार इच्छा करने पर भी रुका रहा। करीब आधा घण्टा गाना और होता रहा। इतने में निविड़ अंधकार हो गया।

गाना बन्द हुआ, और कुछ ही क्षण बाद बैठक के किवाड़ बन्द हो गए, परन्तु बैठक में उजेला न दिखलाई पड़ा।

अजित ने सोचा—'ललितसेन और भुजबल कहाँ हैं ?'

इसके बाद ही उसके मन में तरह-तरह की शंकाएं और उनके तरह-तरह के समाधान उठने लगे। देर तक कान लगाए रहने के बाद घर के भीतर से कोई आवाज न सुनाई पड़ी। अजित को अकारण भय लगा। इतने मे किसी ने कहा—'कौन है ? क्यों आए हो ? निकलो।' यह रतन का कण्ठ था। उसी बात को एक और स्त्री ने दुहराया।

किसी मनुष्य ने उत्तर दिया—'बाबू ललितसेन से मिलने आया था। उनके दर्शनों की आशा से अँधेरे में ही बैठक मे बैठा रहा। इतने में नौकरानी किवाड़ बन्द करके भीतर चली गई। असमंजस में पड़ गया। बैठा रहा। पानी टिपटिपा रहा है। घर दूर है। सवारी पास नहीं। सवेरे चला जाऊँगा।'

तब किसी ने चिल्लाकर कहा—'जाइए, वे लोग यहाँ नहीं है। जब आ जायें, मिल लीजिएगा। इस समय आपका यहाँ कोई काम नही।'

यह रतन का स्वर था। उस मनुष्य ने इस पर जिद करते हुए कहा—'यह तो आपकी बडी बेरहमी है। ऐसी अच्छी गलेबाजी के बाद ऐसी कठोरता। मैं भुजबलजी का मित्र हूं। घबराइए नही।'

अजितकुमार आपे से बाहर हो गया। किवाड़ पर जोर कि दस्तक देकर बोला—'खोल दो। निकाल दो इस बदमाश को घबराओ मत, मैं आ गया हूँ।'

एक क्षण में नौकरानी ने किवाड़ खोल दिये। लालटेन हाथ में लिये थी। पास ही रतन खड़ी हुई थी। एक ओर जलती हुई-सी आँखें निकाले, शिवलाल हाथ में छाता लिए हुए अकडा खड़ा हुआ था।

अजित ने गरजकर कहा—'क्यों रे नीच, अधम, यहाँ से निकलता है या नहीं? अथवा एक लात में सड़क पर फेकूं?'

शिवलाल अकड़ा खड़ा रहा, परन्तु खर्राये हुये गले से बोला—'आप अपने पागलपन का नाटक यहाँ भी खेलेंगे? मैं तो अपने मित्र के घर आया था, पर आप किसके यहाँ आये हैं?'

अजित ने शोर करते हुये कहा—'निकल! नही तो एक घूंसे से जान ले लूँगा।'

रतन काँप गई।

अजित की आकृति भीषण हो गई। उसकी आँखों की भयानकता ने शिवलाल को बैठक छोड़ने पर विवश किया। धीरे-धीरे चला गया।

जाते समय कह गया—'इस अनाधिकार चेष्टा के लिये तुमको पछताना पड़ेगा। जब मेरे मित्र मुझे मिलेंगे, तब उनसे कहूंगा।'

शिवलाल के चले जाने पर अजित इस बात को शायद भूल गया कि मुझे भी जाना है।

वह कभी खुले दरवाजे की ओर और कभी रतन की ओर देखने लगा।

रतन शिवलाल के इस तरह घुस आने से इतनी भयभीत न हुई होगी, जितनी अजितकुमार के शोर-गुल से डर गई।

एक बार तस्वीर उतारने के बाद ही जब ललित आ गया था—तब और आज, भय से थर्रा गई।

अजित ने भीख सी माँगते हुये कहा—'यह अच्छा आदमी नहीं है। नौकरानी की असावधानी से बैठा रह गया। इसे फिर कभी न आने देना।' अजित को प्रतीति थी कि अब भी उपदेश देने का उसको हक प्राप्त है।

नौकरानी ने अपनी सफाई में कहा—'वह सचमुच कोई बदमाश न था। जरूर बाबूजी के कोई मिलनेवाले थे। मेरी भूल से बैठक में बैठे रह गये। आपको इतनी हल्लादराजी न करनी चाहिये थी।'

रतन का चेहरा सूखा हुआ था। निर्बल स्वर में बोली—'यदि वह भैया का मिलनेवाला न होता, तो ऐसा साहस नहीं कर सकता था। यह सब हल्ला-गुल्ला जब सब लोग सुनेंगे, तो न-जाने क्या कहेंगे-सुनेंगे।'

अजित का कलेजा भीतर धंस गया। कठिनाई से बोला—'मैंने जो कुछ किया, न-मालूम किस प्रेरणा से किया। क्षमा करना। जाता हूं।' और नीचा सिर कर लिया।

रतन और सहम गई। क्षीण स्वर में बोली—'मास्टर साहब, आप भैया के पास बहुत दिनों से कभी नहीं आते. परन्तु यह जो अभी यहाँ से चले गये हैं, उनके मिलने-जुलनेवालों में से मालूम पड़ते है। एक जरा

सी बात के लिये आपको अपने मन में बतंगड़ नहीं खड़ा करना चाहिये था।'

अजित ने नीची आंखें किये हुये ही कहा—'तुम्हारा कहना यथार्थ मालूम होता है।' फिर गला साफ करके एक क्षण बाद बोला 'मैं फिर कभी नहीं दिखलाई पड़ूँगा। परन्तु केवल एक प्रश्न करना चाहता 'हूं—तुम सुखी हो ?'

जैसे कंठ को प्रबल शक्ति मिल गई हो, रतन स्पष्ट स्वर में बोली—'यह सब बात करने की आपको कोई जरूरत नहीं है। इस समय न मेरे भाई यहां है और न और लोग।' फिर नौकरानी से यह कहकर भीतर चली गई—'किवाड़ अच्छी तरह बंद करके आ जाओ।'

अजित की आंखों में बिजली-जैसी चकाचौंध लग गई। वह बैठक में से चला आया। नौकरानी ने किवाड़ बन्द कर दिये।

उसे उस रात यह अवगत न हुआ कि घर किस तरह जा पहुंचा था।

[४६]

एकाध दिन पीछे थोड़ी रात गये भुजबल और ललितसेन कहीं से घर लौट आये। नौकरानी ने एक-दो बार प्रश्न करके और परिचय पाने के बाद किवाड़ खोल दिये। ललित के चेहरे पर क्षोभ और चिंता की छाप लगी हुई थी, भुजबल भी प्रसन्न न मालूम होता था। एक दूसरे से बिना कुछ कहे-सुने दोनों अपने-अपने शयनागार को चले गये।

रतन अभी सोई नहीं थी। कुछ कहना चाहती थी, परन्तु स्वामी को सुचित्त न देखकर चुप रही।

भुजबल ने क्षणिक विश्राम के बाद कहा—'बड़ी आफत में हूँ। कुछ समझ में नहीं आता।'

रतन ने भय-कम्पित स्वर में पूछा—'क्या कोई बात हो गई है ?'

'पूना जो मेरी साली है, उसके विवाह की चिंता में जान जा रही है।'

'क्या कोई वर नहीं मिलता ?'

'मेरे जमींदार मित्र बाबू शिवलाल से जन्मपत्रिका का कुछ मिलान हुआ था। पूना की माँ की तरफ से कुछ सह उसे मिली, तो अपनी जमींदारी का एक खासा भाग उसे दे दिया। वह मरीं और मेरे ऊपर पहाड़ टूटा। पूना का मामा बिलकुल इनकारी हो गया है। इधर बाबू से दस हजार रुपये लेकर जो बैनामे हमारे-तुम्हारे और उनके नाम उन्होंने किये थे, उन बैनामों का रुपया लेकर बाबू शिवलाल ने अदालत में जमा नहीं किया सो उन बैनामों के मंसूख होने की नौबत आ रही है, और दस हजार की बड़ी रकम खटाई में पडी जा रही है। इसका तो खैर हम लोग कुछ उपाय कर रहे हैं, परन्तु बूढा शिवलाल ब्याह के पीछे बेतरह पड़ा हुआ है। उधर पूना सयानी हो गई है, और वह गाँव भले आदमियों का नहीं है। यदि उसका विवाह झमेले में पड़ गया, तो उसके आवारा हो जाने का पूरा डर है। 'मेरे विवाह होने के पहले पूना के साथ मेरी जन्मपत्री मिल गई थी, इस पर वह बेवकूफ मामा मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ा हुआ है कि तुम्हीं पीले हाथ कर दो। तुम्हारे रहते मैं दूसरा विवाह करूँ, यह शैतान बात एक क्षण के लिये मेरे मन में नहीं ठहरती। क्या करूँ, तुम्हीं बतलाओ।'

रतन ने जरा ठहरकर उत्तर दिया—'आपके रुपये-पैसे और जायदाद के झगड़ों को मैं नहीं जानती, परन्तु मेरे जी में तो यह आता है कि उस लड़की के लिये कोई लड़का शीघ्र ढूंढ़ दो।'

भुजबल जरा झुंझलाकर अपनी बेबसी प्रकट करता हुआ बोला—'इतना कह देना तो बहुत आसान है, परन्तु लड़का ढूंढ़ते-ढूंढ़ते मैं तो आधा रह गया हूं। या तो उसका विवाह उस बूढ़े शनीचर के साथ होता है, या कुछ दिन बाद वह लड़की बिगड़ती है, और समझ में नहीं आता।' और रतन की ओर देखने लगा।

रतन ने इस घोर समस्या को सुलझाने में अपने को असमर्थ समझकर कहा—'आप जो कुछ ठीक समझें, करें, परन्तु यदि विवाह होने तक पूना को आप यहां बुला लें, तो कैसा हो?'

'तुम्हारी उसकी पट जायगी ?'

'आज तक आपने किसी के साथ मुझे लड़ते देखा ?'

भुजबल ने दुलार के साथ कहा—'यह लो, करने लगीं न उल्टी बातें। लड़ने और न पटने में जरा अन्तर है। बाबू न जाने क्या कहेंगे ?'

रतन उत्साहित होकर बोली—'भैया को मैं खूब जानती हूं। उन्हें पूना के आने से बड़ा हर्ष होगा।'

भुजबल ने धीरे से कहा—'तुम्हें एक बात नही मालूम। बतलाता हूं। किसी से कहना मत।'

रतन के फीके चेहरे पर हलकी-सी मुस्कराहट दौड़ गई। बोली—'मुझे मालूम है।'

भुजबल ने आश्चर्य के साथ कहा—'कैसे ? किसने कहा ?'

फिर हँसकर बोला—'तुम स्त्रियाँ विचित्र जीव हो। न मालूम क्या-क्या जासूसी बेचारे मनुष्यों की किया करती हो।'

रतन नीची आँखों से ऊँचे देखते हुए मुस्कराती रही। भुजबल ने कहा—'उनकी इच्छा विवाह की थी। परन्तु धर्म-विरुद्ध होने के कारण वह इच्छा पूरी नहीं हो सकती। वह शायद मान गये होंगे, परन्तु पूना के यहाँ आने पर उनके हृदय को क्लेश होगा। मैंने सोचा है कि पूना को अपने घर भेज दूं।'

'पूना के मामाजी राजी हो जायँगे ?' रतन ने पूछा।

भुजबल ने सिर हिलाकर कहा—'सो तो सहज नहीं जान पड़ता। वह बहुत हठी और बेढब है। मैंने कहा था कि विवाह होने तक मेरे साथ छावनी भेज दो, परन्तु बाबू के नाम से ऐसा सनका हुआ है कि किसी तरह मानता ही नहीं है। एक शर्त लगाता है—विचित्र और विकट।'

'कौन-सी ?'

'कहता है कि यदि तुम्हें अपने घर लिवा जाना हो, तो उसके साथ भांवर डाल लो, फिर लिवा जाओ।'

रतन थोड़ी देर चुप रहकर बोली—'कोई वर न मिले, तो ऐसा ही कर लीजिये।' फिर मुस्कराकर कहा, जैसे सूखा फूल खिलने का प्रयास करे 'हम लोग एक से दो हो जायेंगे।' और नीचे देखने लगी।

भुजबल ने उसको सोचने का अवसर न देकर कहा—'तुमने झटपट कह दिया। यह नही सोचा कि लोग बाग क्या कहेंगे? बाबू क्या कहेंगे? और तुम्हें अपना मुँह कैसे दिखलाऊँगा। पूना की रक्षा के लिये यदि मुझे कष्ट उठाना पड़े, तो मैं धीरज के साथ सह लूँगा, परन्तु तुम?'

रतन ने सिर उठाकर खनकते हुये गले से कहा—'मुझे कोई कष्ट न होगा। आपको दुःख न हो, यही चाहती हूं। परन्तु आप दिल्लगी कर रहे है।'

भुजबल ने मुस्कराकर कहा—'अभी तो दिल्लगी ही है, परन्तु संसार मे कर्म का विचित्र खेल हुआ करता है। कौन जानता था, कौन कह सकता था कि तुम्हारे साथ मेरा विवाह हो जायगा? भाग्य में जो कुछ होता है, होकर रहता है। न मालूम कब क्या हो जायगा?'

'सो तो है ही।' रतन ने भाग्य की अखण्डनीय दलील को स्वीकार करते हुये कहा—'जो कुछ होना होगा, सो तो होगा ही, परन्तु अपनी शक्ति में उस लड़की की रक्षा करने में कोई कसर नहीं लगानी चाहिये।'

'मैं कसर नहीं लगाऊँगा।' भुजबल ने दृढ़ता के साथ कहा, और शांत होकर लेट गया।

रतन कुछ समय से कुछ कहने के लिये, जमुहाइयां ले रही थी। अनुकूल अवसर पाकर बोली—'परसों की बात सुनी है?'

'क्या?'

'आपके जमींदार मित्र संध्या-समय आपसे मिलने के लिये आये। कमरे में अंधेरा था। हम लोग भीतर थे। वह बैठे रहे। नौकरानी अंधेरे में किवाड़ लगा आई। आहट मालूम होने पर हम लोग लालटेन लेकर गये, उन्हे देखकर घबराये। पूछतांछ की। इतने में मुझे जो पहले एक मास्टर पढ़ाते थे—नाम याद नहीं आता—किवाड़ों को ठोककर हल्ला

करने लगे। किवाड़ खुलने पर अंड-बंड बकने लगे। आपके मित्र तो चले गये, परन्तु वह बैठक में अचल से हो गये। हम लोगों ने कहा-सुनी की, तब हटे। आप नौकरानी से पूछ लेना।'

भुजबल यकायक उठ बैठा। फिर से सारी कथा को सुनकर बोला—'उस बदमाश, पाजी की यह हिम्मत ! इस कमीने अजितकुमार को पीस डालूंगा, तब चैन लूंगा।'

रतन ने उसे शांत करने की चेष्टा की, परन्तु उस रात भुजबल को नींद आई या नहीं, यह एक कठिन प्रश्न है।

[५०]

सवेरे जब भुजबल और ललितसेन ने बिस्तरे छोड़े, तब एक दूसरे से किनारा काटना चाहते थे, परन्तु नौकरानी ने ललितसेन से कुछ कहा। ललितसेन अपनी बहन से बात करके बैठक में आया। भुजबल भी आ गया। भुजबल एक पुस्तक के पन्ने लौटने लगा। ललितसेन चुपचाप बैठा सोचने लगा।

निदान ललितसेन बोला—'परसों की बात तुमने सुनी है ?'

भुजबल ने कहा —'हां, कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। वह आधा क्या पूरा पागल हो गया है। मेरी समझ में उसे तो पागलखाने में भेजने का बन्दोवस्त करना चाहिये।'

'पागलखाना या जेलखाना, इनमें से एक की व्यवस्था अवश्य करनी पड़ेगी।' ललितसेन ने अपनी ठोड़ी पोछते हुये कहा—'मेरी समझ में नहीं आता कि वह बदमाश शिवलाल यहां क्यों आया था। इस शिवलाल के कारण जितनी परेशानी हुई, उतनी कभी किसी पागल ने किसी को नही पहुंचाई होगी।' और, कुपित दृष्टि से एक बार भुजबल की ओर ताककर दूसरी ओर देखने लगा।

भुजबल ने आत्मरक्षा का पैतरा बदलते हुये कहा—'वह जैसा पाजी है, यह मैने अब जाना, और उसके होश ठीक करने के लिये जो कुछ हो सकता है, वह करवा ही आया हूं, परन्तु इस वनचर को तो देखिये।'

भुजबल ने अनुनय के साथ कहा—'आप इस समय दिल्लगी मत करिये। अजित के मामले को यों ही छोड़ देने से बदनामी होगी। न मालूम यह नौकरानी क्या-क्या कहती फिरती होगी। लत्ते का साँप बन जायगा। और हम लोग मुंह दिखाने के लायक न रहेंगे! अजित पर फौजदारी मे दावा करना चाहिये।'

'और शिवलाल को कही के सिंहासन पर बिठला देना चाहिये।' ललित ने व्यङ्ग किया।

भुजबल बोला—'उसका प्रबन्ध तो हम लोग पहले ही कर चुके हैं। अब इसे देखना चाहिये। मदाखलत बेजा में दावा होगा।'

'करो।' ललित ने कहा—'खूब पीसो उस बेईमान अजित को। पर गवाही कौन देगा? रतन तो कचहरी में जायगी नहीं, चाहे आप मुँह दिखाने योग्य न रहें, और चाहे मैं।'

'कोई जरूरत नहीं।' भुजबल ने कहा—'अकेली नौकरानी की गवाही होगी। आप मैजिस्ट्रेट से जरा मिल लें।'

सोचकर ललितसेन ने कहा—'यह ठीक है। वैसे भी उस राक्षस सर्व-भक्षी शिवलाल के बारे में मैजिस्ट्रेट से कहना-सुनना पड़ेगा। इसके विषय में भी कह आऊँगा। उन दोनों पर दावा करना पड़ेगा। एक पर चोरी का और दूसरे पर मुँहजोरी का।'

ललितसेन कमरे में टहलने लगा। मूछों पर हाथ फेरता हुआ बोला—'क्या बात है! अच्छी जमींदारी मोल ली। दस हजार रुपये पर पानी फिर गया। अब मुकदमेबाजी करने पर उतारू हुआ हूं। एक झाँसी में दूसरा छावनी में। मैजिस्ट्रेटों और वकीलों की खुशामद करनी होगी। भविष्य बड़ा उज्ज्वल है।'

फिर जरा तड़ककर बोला—'तुमने खूब फँसाया।' फिर यकायक थमकर और धीरे से बोला—'नही, आपका कोई दोष नहीं। मैं ही बड़ा गधा हूँ। अपने सदा के निश्चय पर अड़ा रहता, तो यह अवसर न

आता। तुम सचमुच ऐब से पाक हो। मैंने यदि विवाह का निश्चय न किया होता, तो यह जिल्लत न उठानी पड़ती।'

भुजबल चुप रहा। ललित थोड़ी देर टहलने के बाद बोला—'मैं न-जाने क्या-क्या कह गया हूं। भाई, बुरा न मानना, चित्त ठिकाने न था। उस लड़की के विवाह के सम्बन्ध में कुछ हुआ? परन्तु तुम भी तो उसी उलझन में अटक रहे हो, जिसमें मैं। तुम्हे क्या पता?'

भुजबल ने मिठास के साथ कहा—'कुछ पता तो है। एक भयंकर विकट समस्या खड़ी हो रही है। जो चाहता है, उसके साथ विवाह नहीं हो रहा है, और जो नहीं चाहता है, उसके मत्थे इस आफत के मढ़े जाने का हठ किया जा रहा है।'

'कौन? कैसा?' ललित ने शांति के साथ पूछा।

'आप चाहते थे। शिवलाल चाहता था। लड़की का मामा किसी के लिये राजी न हुआ। अब मेरे सिर हुआ है। अचम्भा मत करिये। मैं गाली दे-देकर उसको हटाता हूँ, और मेरे सिर आता है। कहता है—मरने के पहले उसकी माँ कह गई है।'

बहुत देर बाद ललित के चेहरे पर हँसी आई। बोला—'बेशक, इस कुल मामले में काफी मजाक भरा हुआ मालूम होता है। मैं तो अब इस तरह के झगड़ों से सदा के लिये हाथ धो बैठा हूँ। मुकद्दमों से फुरसत पाकर तुम उस भोली लड़की के ब्याह का कहीं ठीक-ठाक कर दो।'

'मैं इस विषय मे बहुत शीघ्रता करना चाहता हूँ।' भुजबल ने उत्तर दिया। फिर माथे पर दोनों हाथ रखकर, आखे मूंदे हुये बोला—'बड़ी विपत्ति में हूँ। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ।'

[५१]

ललितसेन को शांत देखकर भी भुजबल कुछ बेचैन था। कार्य-विधि की कोई अन्तिम कड़ी अनिश्चित और अस्पष्ट भविष्य के धुंधलेपन में उसकी सारी शक्तियों के प्रयोग का आवाहन कर रही थी। परन्तु वह एक आशा पर काम कर रहा था—अन्त में विजय। सफलता के पवन-

यान में वह उड़ता चला जा रहा था। लिहाज, मुरव्वत और विघ्न-बाधाओं का उसे वहीं तक बेखयाल था, जहाँ तक असफलता के खड्डे में उसे गिराने का बल न रखते हों। अन्यथा उसके चरित्र में इस तरह के अटकाव या उलझाव पर मनोनिग्रह कर लेने के लिये स्थान न था। कानून जहाँ तक पकड़ न सके, तहाँ तक उसकी परवा नहीं थी। ललित-सेन की किसी विशेष अवसर पर क्या मनोवृत्ति होगी, किसी कंप के समय क्या विस्फोट, क्या गर्जन-तर्जन होगा, उसकी विभीषिका कभी-कभी उसे बेचैन कर देती थी, परन्तु वह अपने मंसूबे में इतना मस्त था, अपनी लगन पर इतना लट्टू था, अपनी आशा में इतना चूर था कि वह विभीषिका एकाध क्षण के लिये ही उसे संतप्त कर पाती थी। उसकी लचीली प्रकृति चोट खाकर फिर यथावत अपने स्थान पर आ जाती थी।

ललितसेन के पास से भुजबल शिवलाल के पास गया। वह बेताबों की तरह मिला। भुजबल के चेहरे पर मुस्कराहट थी।

'क्यों जी, इतने दिन कहां थे ? न मालूम कितना तलाश किया।'

'एक काम से बाहर गया था।'

'वह परसों तो निकल गया। अब एक और परसों निकल जाने के लिये आने वाला है ये सब बेबूझ पहेलियां हैं—सीधी बात यह है कि शादी होगी या नहीं ?'

'होगी।'

'कब ?'

'अतेरसों।'

'अब की बार अतरसों ! खैर, आवे और निकल जावे। परन्तु भविष्य की सोच लेना। तुम्हारे कराये सब बैनामों पर पानी पड़ ही जायेगा—तुम्ही ने बतलाया था, और थोड़ा-सा मैं भी जानता हूँ।'

भुजबल ने बेफिक्री के साथ कहा—'आपका कहना बिलकुल सही है। रुपया दाखिल कर देना चाहिये, वरना आप भी मुसीबत में पड़ेंगे।'

'मैं अकेला ?' शिवलाल ने अचंभे के साथ पूछा—'चार हजार रुपये तो तुम्हारे पास रक्खे हैं। उन्हे ही जमा कर दो। इससे मुहलत मिल जायगी। बाकी का इंतजाम फिर हो जायगा।'

'हाँ, अच्छी बात है। हो ही जायगा ?'

भुजबल ने जमुहाई लेते हुये कहा—'शादी अतरसों के लिये पक्की है। मैं अभी सिगरावन जाकर प्रबन्ध करता हूं। मैं अपना कर्तव्य-पालन किये देता हूं, आप अपना करिये।

'कौन-सा ?' शिवलाल ने उत्सुकता के साथ पूछा।

'अदालत में जमा करने के लिये कम-से-कम छै हजार रुपये तैयार कर लीजिये।'

'इतना रुपया तो पास नही है।'

'तो विवाह न होगा, इसमें जरा भी संदेह नही।'

'परन्तु अदालत में रुपया दाखिल करने के बाद मामाजी की नाहीं का सवाल अवश्य ही फिर पैदा होने का पूरा अंदेशा है।'

'अदालत में दाखिल मत करिये। घर में रखिये। अमानत में किसी के पास भी नहीं। और पक्का वचन दे दीजिये कि आप उस रुपये का अपव्यय न करके ब्याह के बाद अदालत में दाखिल कर देंगे।'

'पक्का वचन देता हूं।'

'यह बहुत सहज है, परन्तु ठोस थैली और घर में रख लीजिये, तब विश्वास होगा।'

शिवलाल के चेहरे पर चिंता की छाया पड़ गई। थोड़ी देर सोचकर बोला—'गहने बनवा लिये हैं। घोड़ा-गाड़ी ले ली है, कुछ नकदी भी है। पूरे छः हजार हो पाना तो कठिन है।'

भुजबल ने कहा—'पाँच हजार ही सही।'

शिवलाल ने उत्साह के साथ उत्तर दिया—'वह हो जायगा। यानी जितना हो जायगा, कल तुम्हें दिखला दूंगा।'

[५२]

समय को भुजबल ने अपने कार्य-क्रम में यथोचित स्थान दे रक्खा था। वह जानता था कि योजना की सिद्धि होनी है, तो भली-बुरी जैसी भी परिस्थिति है, इसकी अपेक्षा अच्छी शायद ही कभी उपलब्ध हो। समय थोड़ा और काम बहुत, इस बात का खयाल करके उसकी प्रेरक शक्ति कुंठित नहीं, किन्तु उत्तेजित हुई। •

भुजबल उसी दिन सिगरावन पहुंचा। लालसिंह मिला, उदास था।

भुजबल से बोला—'किसी ने पूना को सताया है।'

'किसने?' भुजबल ने विस्मय और व्यग्रता के साथ पूछा।

लालसिंह ने उत्तर दिया—'सयाने कहते हैं कि उसकी माँ ने सताया है। मरने के ठीक पहले उसने पूना का नाम लिया था।'

भुजबल ने खिसियाकर प्रश्न किया—'आप भी क्या खूब हैं! बतलाइये तो है क्या उसे?'

लालसिंह की त्योरी हिली डुली नहीं। जवाब दिया—'देखने में ज्वर है। परन्तु शरीर गरम नहीं है। माथे से पसीना आता है। कभी-कभी अचेत-सी हो जाती है। कई बार बोली—'कहाँ लिये जाते हो? वह कहां है? मां, ठहरो, मैं भी आती हूँ।'

भुजबल ने एक क्षण ठहरकर पूछा—'कोई दवा दी?'

'दवा का काम नहीं है। आज रात को पीपल में झिझरी लटका आऊँगा। दुर्गाजी ने चाहा, तो कल चंगी हो जायेगी।'

भुजबल ने आराम से साँस लेकर कहा—'तब कुछ चिंता की बात नहीं है। वह मुहूर्त परसों रात तक को बैठता है।'

'परसों रात को! इतनी जल्दी! फलदान, लगन, मण्डप, तेल इत्यादि सब एक दिन में कैसे हो जायेंगे?'

'जल्दी का कारण है। शिवलाल से जो गाँव का बैनामा कराया था, वह यह भड़ी देकर कि पूना को ब्याह देंगे—आपको शायद मालूम नहीं। माँ जी को यह बात मैंने बतला दी थी। यदि अतरसों तक ब्याह

रुका रहा, तो शिवलाल फौज-पुलिस लेकर यहां आवेगा, और बड़ी कुगति होगी।'

किसान लालसिंह घबरा गया। बोला—'कहाँ की आफत बिसाई मैंने !'

भुजबल बोला—'कोई आफत नही है। बड़ी जाति की लड़की का एक बार ब्याह हो जाने के बाद दूसरी बार फिर नहीं होता। परसों भांवर पड़ जायें, फिर खबर फैलने में देर न लगेगी, फिर कोई पुलिस-फौज बखेड़ा करने न आवेगी। कुँवारी लड़की पर दावा भले ही चल जाय, ब्याही पर थोड़े ही चल सकता है।'

'यह आपको ठीक मालूम है कि शिवलाल कल या परसों ही न आ जायगा ?'

'ठीक मालूम है।'

लालसिंह ने कुछ व्याकुलता के साथ कहा—'मैंने जब से यह सुना था कि किसी बाबू ने अपने गाँव पूना के नाम कर दिये हैं, तभी से मैं डर रहा था। अब क्या करूँ ? कैसे अपनी आबरू बचाऊँ ?'

'डरने की कोई बात नही है जी।' भुजबल ने आश्वासन देते हुये कहा—'अतरसों के पहले उसके आने की संभावना होती, तो मैं आपसे सबसे पहले कहता, और इस काम को और भी जल्दी कर डालने का आग्रह करता। परन्तु ऐसे कामों में उलझ जाना पड़ा कि किसी तरह से उबर न सका।'

लालसिंह ने डरते हुये पूछा—'क्या वे गांव वापस नहीं हो सकते ? हो जायें, तो सिर से बला टल जाय।'

'मैं तो सब कुछ चाहता हूं।' भुजबल ने उत्तर दिया—'परन्तु वह राक्षस तो मानता ही नही।'

जैसे सहसा कोई सहारा मिल गया हो। लालसिंह बोला—'ललित-कुमारजी को भी न्योते में लेते आइयेगा, और उनके साथ थोड़े-से लठैत। उनके आ जाने से हम लोग निर्भय हो जायेंगे। बड़े आदमी हैं।'

भुजबल ने अवहेलना के साथ कहा—'इस चिन्ता में तुम बिलकुल मत पड़ो। बाबू ललितसेन को बहुत काम है, शायद न आ सकें। तुम घबराओ मत। मेरी तदबीर आदमियों की लाठी के बल से कहीं ज्यादा ताकत वाली है'।'

'तो क्या रिश्तेदारों को न बुलाओगे ?'

'जितनों को आसानी से और बिना खबर फैलाये बुलाया जा सकता है, उतनों को बुला लेंगे। भीड़-भाड़ करने से शिवलाल को खबर लग जायगी, तो बंटाधार हो जायगा। बिनी किसी धूमधाम के चुपचाप विवाह होगा।'

'बाबू ललितसेन तो न कह देंगे शिवलाल से ?' लालसिंह ने कहा।

'कभी नही। परन्तु मैं तो इस तरह से काम करना चाहता हूं कि ललितसेन को क्या, किसी को कानोकान खबर न हो। समझ गये ?'

लालसिंह ने सिर हिलाकर कहा—'हां।'

फिर बोला—'आपकी तरफ के ये दो किसान, बुद्धा और पैलुआ, यहां पर हैं। कहीं शिवलाल से ये न कह दें ? इन्हें गांवों के देने का हाल मालूम है।'

'वे लोग वहां न जायेंगे—और जायें भी, तो कुछ भय नहीं। यह जाहिर न हो कि मेरे साथ ब्याह हो रहा है।'

यह बात लालसिंह की समझ में न आई। भुजबल समझ गया।

बोला—'अच्छा, उन्हें बुलवा लीजिये। मैं ठीक किये देता हूं।'

लालसिंह ने नम्रता के साथ कहा—'उन्हें यहां मत मारिये-पीटियेगा। बड़े दुखिया हैं।'

'आप बुलाइये तो।' भुजबल ने जरा झुंझलाकर कहा—'मैं कोई मरकहा बैल थोड़े ही हूँ।'

थोड़ी देर में लालालसिंह उन दोनों को लिवा लाया। बुद्धा का बुखार छूट गया था, परन्तु दुर्बल बहुत था। बुद्धा भयातुर-सा और पैलू निर्भीक गति के साथ आया।

भुजबल ने मुस्कराते हुये मीठे स्वर में कहा—'आओ जी, बैठो। अब लगान कब दोगे भाई ?'

बुद्धा का भय और पूर्व-परिताप शायद चला गया था। नम्रता के साथ बोला—'मालिक देंगे। पर अभी गांठ में कौड़ी नहीं है। न-जाने कैसे घड़ियां काट रहे है।'

पैलू उस मिठास से स्तंभित हो गया। कुछ कहना चाहता था, परन्तु न कह सका। भुजबल ने कहा,—'पैलू हमसे बहुत नाराज हैं। कहो भाई; लगान छोड़ दें, तब तो प्रसन्न होओगे ?'

पैलू ने उत्तर दिया—'न महाराज, एक पैसा मत छोड़ो। कौड़ी-कौड़ी देंगे, परन्तु इस समय नहीं है।'

'नही, हमने तुम दोनों का लगान माफ किया। आज ही घर चले जाओ।' भुजबल ने बड़े गौरव के साथ कहा।

बुद्धा बोला—'क्यों न हो। तुम्हीं मारने वाले और तुम्हीं पालने वाले हो।'

'पैलू कुछ हिचकिचाहट के साथ बोला—'वैसे तो हमने ठान ली थी कि चाहे प्राण भले ही चले जायें, परन्तु एक कौड़ी न देंगे, और जमीन छोड़कर यहीं पर मेहनत-मजदूरी कर खायेंगे। लेकिन अब कुछ न रक्खेंगे। जहां से बनेगा, देंगे। देंगे कुछ देर में, क्योंकि गांठ में कुछ नहीं है।'

'अब अपने घर जल्दी जाओ।' भुजबल ने कुछ आतुरता के साथ कहा।

पैलू ने आंख का एक कोना बुद्धा की ओर घुमाकर भुजबल से कहा—'चले जायेंगे। जल्दी जायेंगे। रोज खोदते हैं और पीते हैं। इससे घर अच्छा। जल्दी ही जायेंगे।' फिर दोनों एक चिलम तम्बाकू पीकर वहां से चले गये।

बुद्धा कहता गया—'आज शाम को नयेगांव में न्योता है। कल चले जायेंगे।'

[५३]

उस दिन भुजबल छावनी लौटकर नहीं गया। ललित बैठक में अकेला बैठा था। कुछ दिन से दर्शन-शास्त्र के अध्ययन में अरुचि-सी हो गई थी। हारमोनियम को तो छूता भी न था। कुछ सप्ताह से पैर-गाड़ी का शौक लगा था। यद्यपि सवारियों में बिलकुल शुरू-शुरू में, पैर-गाड़ी की सवारी अत्यन्त मनमोहक होती है, तथापि इन दिनों उस ओर से भी जी लौटा हुआ-सा था। बैठक में अलेके बैठे बैठे चित्त उकता उठने के कारण भीतर गया। रतन खाना बना रही थी। जिस ओर से ललित आ रहा था, उस ओर रतन का ध्यान न था।

ललित कुछ क्षण ठहरकर उसकी ओर देखता रहा। कमल की कली बिना खिले ही मुर्झा चली! प्रातःकाल होते ही बाल-रवि को कोहरे ने ग्रस्त कर लिया! स्वर की झंकार के साथ ही वीणा का तार टूट गया! सुनहरी हरियाली पर कठोर लू! यज्ञ-मण्डप पर वज्र-पात। हास-विलास के स्थान पर पीड़ा का निःश्वास! पवित्रता की वेदी पर प्रकाश-रश्मि का बलिदान!

पहले भी ललित ने रतन के चेहरे के बढ़ते हुये फीकेपन को लक्ष्य किया था, परन्तु उसकी हीन-क्षीण कांति को देखकर दिल पर जैसी चोट आज लगी, उससे वह कराह उठा।

रतन ने उस ओर आँख उठाई। ललित ने कठिनाई से भावोत्तेजना को रोककर कहा—'रतन, बेटी!' मानो इन दो शब्दों के समुद्र में विमल मधुर प्रेम की धारा समा गई हो।

रतन ने उस मिठास का विशेष प्रयोजन न समझकर कहा—'भैया, क्यों? खाने में अधिक विलम्ब नहीं है, तैयार है।'

'तुम आज कल कुछ पढ़ा करती हो? क्या पढ़ती हो?'

ललित के कण्ठ में अब भी कुछ अटका हुआ सा मालूम पड़ता था। रतन ने मुस्कराकर कहा (व्यथा-थकित, अतीत-कालीन दिव्य मुख के फीके मंडल की संकुचित मुस्कराहट संसार की एक दुस्सह दुर्घटना है)—

'एक पुस्तक सतियों के चरित्र पर है, उसे पढ़ती हूं। उसमें स्त्रियों के कर्त्तव्य समझाये गये हैं।'

ललित का चेहरा अंगारे की तरह हो गया। बोला—'सतियों के चरित्र ! स्त्रियों के कर्त्तव्य ! यह कलम कुल्हाड़ी न मालूम पुरुषों के पेट को क्यों नहीं फाड़ती ? पुरुषों के कर्त्तव्य पर तब शायद कुछ लिखा जायगा, जब स्त्रियों का धरती से लोप हो जायगा।'

रतन ने बात टालने के अभिप्राय से कहा—'भैया, आज मैंने एक नया साग बनाया है। खूब पेट-भर न खाओगे, तो मेरा श्रम अकारथ जायगा।'

'खाऊँगा बेटी ! आज हम-तुम दोनों साथ बैठकर खायेंगे। बहुत दिनों से नहीं खाया है।' ललित ने कहा, और साथ ही आंख में आई हुई एक निर्मल बूँद को कठोरता के साथ पोंछ डाला।

रतन ने देख लिया। समझ लिया। कुछ न बोली। फिर खाना बनाने में लग गई।

ललित आँगन में व्यस्त-त्रस्त-सा टहलने लगा। कुछ कहना चाहता था, परन्तु बार-बार कुछ गले में अटक जाता था। थोड़े ही क्षणों में रतन के अध्ययन-काल का चित्र आँखों के सामने घूम गया। भुजबल की भेंट, उसके बाहरी रूप पर मोहित होकर आतुरता के साथ रतन का विवाह कर देना इत्यादि घटनायें रेखा की तरह आँखों के सामने खिंच गईं।

मन में कहा—'मैंने ही अपनी बहन का वध किया है। उस शूकर के गले में दिव्य मुक्ताओं का यह हार ! ओह, क्या से क्या हो गया ! मेरे जैसा दुर्बल पिशाच कोई न होगा।' जरा धैर्य प्राप्त करने पर बोला—'तुम्हें सुखी न देखकर कलेजा छीजता रहता है बेटी !'

रतन ने खाना बनाना बन्द कर दिया। त्योरी चढ़ाकर बोली—'तुम्हें भैया, न जाने क्या हो गया है। जब देखो, तब इसी तरह की बातें किया करते हो। बतलाओ, मुझे काहे का दुःख है ? नित्य सेर-भर खा

जाया करती हूं। पुस्तकें पढ़ती हूँ। अपना काम देखती हूँ।' और खिल-खिलाकर हँस पड़ी।

ललित ने कहा—'बड़ी पागल है। बेटी, हम तुम दोनों अब नित्य साथ ही खाना खाया करेंगे। इस नियम का व्यतिक्रम करोगी, तो तुझे भूखों मरना पड़ेगा।'

रतन की 'हाँ' सुनकर ललित बैठक में चला गया। मास्टर साहब—अजितकुमार—का ध्यान आया। सोचने लगा—'इससे क्या वह बुरा था? बहुत सुन्दर न था, परन्तु कुरूप भी न था। दोनों एक दूसरे को अवश्य थोड़ा-बहुत चाहते थे। जाति का था। जन्मपत्री मिलती या न मिलती। उससे क्या होता? इस जन्मपत्री के मिलने पर ही क्या हुआ? उसका दोष क्या था। हाथ से कैसा रत्न खोया! और मैंने उसे अपमानित किया! निकाल दिया! कूड़ा समझा! फिर भी वह उस दिन सहायता के लिये आया! मैंने उस पिशाच शिवलाल की लीला और अजित की वीरता को उस दिन भी न पहचान पाया! दावा दायर कर दिया! अजित चोरी करने आया था! दरिद्र-वेश में वह पुरुषार्थी मेरा अपमान करने आया था!'

फिर यकायक उसके मुँह से निकल पड़ा—'कल दावा खारिज कराऊँगा।'

'क्या खारिज कराओगे भैया?' रतन ने आकर कहा—'खाना तैयार है। चलो, नहीं तो ठंडा हो जायगा।'

'चलो।' ललित कुछ संकोच के साथ बोला।

रतन के साथ खाना खाते-खाते मन में ललित ने कहा—'इतनी जल्दी दावा खारिज नहीं करना चाहिये। मैजिस्ट्रेट न जाने क्या कहेगा। जितनी जल्दबाजी दावा दायर करने में की है, उतनी खारिज करने में नहीं करनी चाहिये। परन्तु अन्त में खारिज कराऊँगा, यह निश्चित है।'

[५४]

एक दिन मे इतना शारीरिक और मानसिक काम कर डालने के पश्चात् भुजबल ने अपने को खूब अच्छी तरह सो लेने का अधिकारी समझकर लालसिंह की पौर में बिस्तरों का आश्रय लियाँ। थोड़ी देर तक सोचता रहा—'पूना की तबियत क्यों खराब हो गई ?' परन्तु किसी विशेष बीमारी की कोई विषमता न देखकर संतोष कर लिया। अब यह सामने न आवेगी। विवाह के शब्द ने ही उसे लज्जा के वश में कर दिया होगा।'

उधर रात होने के बाद लालसिंह झिझरी लेकर गांव के बाहर तालाब के निकटवर्ती पीपल की ओर चला। मिट्टी की एक बड़ी हांडी में चारों ओर छोटे-बडे छेद थे। भीतर हांडी की तली मे थोड़े से गेहूं, तांबे का एक पैसा और सिन्दूर रक्खा हुआ था। उस पर तेल का दिया जिसमें रुई की बटी हुई चार मोटी बत्तियां। रात बिलकुल अंधेरी थी। नीले आकाश में मुकुलित नक्षत्र दमक रहे थे। परन्तु पृथ्वी पर उनके प्रकाश की छाया मात्र थी।

लालसिंह अपनी उस झिझरी को पीपल की शाखा में टाँग आने के लिये डरते हुये जा रहा था। अधमुंदी आँखों से मार्ग टटोलने के लिये केवल पैरों के पास की जमीन को देखता जाता था। एक आध बार दायें-बाये आँख परवश गई भी तो दिशायें नाचती हुई-सी मालूम पड़ीं। मन-ही-मन दृढता के साथ दुर्गाजी का नाम स्मरण करता चला जाता था, और मजबूती से झिझरी को पकड़े था। एक बार मन में कहा—'यदि बहन का देहांत न हुआ होता, तो कैसा अच्छा होता।'

इतने में पीपल के पास से जाने वाली पगडण्डी पर किसी की आहट मिली। दिशायें और वेग के साथ नाचती हुई मालूम पड़ी। एक क्षण के लिये ऊपर देखा, तो ऐसा आभास हुआ, मानो सम्पूर्ण आकाश खद्योतों से भर गया हो, और तारे टूट-टूट कर इधर उधर पलायमान हो रहे हों। हवा नहीं चल रही थी। सब पेड़ शांत थे। पक्षी नीरव,

केवल झींगुर झङ्कार कर रहे थे, और पीपल के पत्ते अनन्त स्वर से खड़खड़ा रहे थे।

लालसिंह को पीपल की तिमिराच्छन्न छाया में दो आकार दिखलाई पड़े। बहुत निकट पहुंच गया था, परन्तु पहचान न सका। आकार से, अथवा आकार-सदृश सफेद या धूमरे से।

लालसिंह ने जोर से दुर्गाजी को पुकारना चाहा, परन्तु जबान ने नाहीं कर दी। पैर न तो आगे बढे, और न पीछे हटे। इतने में उस आकार से चीत्कार निकला—'खा लिया।'

तुरन्त लालसिंह ने चीत्कार किया—'खा लिया।' और साथ ही उन आकारों की ओर झिझरी को फेककर बेतरह घर की ओर भागा—न कुछ देखा, और न कुछ सुना।

झिझरी उन आकारों से टकरा कर टूट गई। एक आकार से जोर का शब्द हुआ—'अरे मार डाला!' और धड़ाम से वहाँ कोई धराशायी हो गया।

दूसरा आकार दो कदम पीछे को हट गया, परन्तु न तो वहाँ से भागा, और न गिरा। झिझरी की एक बत्ती धूल के एक पतले नुकीले ढेर पर गिर कर जलती रही।

वह आकार कुछ क्षरण स्तम्भ की तरह खड़े रहने के बाद धराशायी की ओर बढ़ा। ठिठका और फिर बढ़ा। जलती हुई बत्ती को और चारों दिशाओं में आँख गड़ा-गड़ाकर देखने लगा। कही कुछ भी न दिखलाई पड़ा, केवल गाँव की ओर भागते हुये किसी के पैर की आहट सुनाई दी।

धीरे से बोला—'बुद्धा, बुद्धा!'

परन्तु धराशायी व्यक्ति बिलकुल बेहोश था। न बोला।

बतलाने की आवश्यकता नहीं कि दूसरा व्यक्ति पैलू था। वह भी कांप रहा था।

उसने थर्राते हुये हाथ से बुद्धा को लौटा-पौटा। मरा न था, परन्तु मृतक-सा जान पड़ता था।

पैलू ने कठिनाई से उसको कन्धे पर लादा, और बड़ी कठिनाई से यह उसे गाँव तक ला पाया। संध्या के उपरान्त ही लोग अपने-अपने किवाड़ बन्द करके विश्राम कर रहे थे। कोई भी न दिखलाई दिया। पैलू ने बुद्धा को घर पर लाकर लिटा दिया। जिस घर में ठहरा हुआ था, उसके रहने वालों के प्रश्नों का कोई ठीक उत्तर न देकर या न दे पाकर केवल इतना कहा—'देवता का सताया हुआ है।' पैलू की वह रात बड़ी कठिनता से कटी।

[५५]

प्रातःकाल होने पर बुद्धा को चेत आया। परन्तु उसकी अवस्था बुरी थी। बुखार का मारा हुआ होने के कारण इस दैवी मार से निस्तेज हो गया। आँख फिर फिर जाती थी। दृष्टि बहुत क्षीण हो गई थी। तन पर कपड़े नही थे, खाने को अन्न न था। मजदूरी करने जा न सकते थे, जिससे एक बार पेट में डालने लायक अनाज मिल जाता। आशा हुई थी कि भुजबल का कोप शान्त हो गया है, अब शीघ्र घर बार देखने को मिल जायेगा। घर पर भी दूध की धार नहीं बहती थी, परन्तु मरने के लिये अपनी जन्मभूमि तो थी।

दिन चढते-चढ़ते गांव-भर में समाचार फैल गया कि बुद्धा को देवता ने सताया है। सयाने और नावते आ-आकर तरह-तरह के निदान और उपचार बतलाने लगे, परन्तु सिवा होम की भस्म के और कोई चीज ऐसी न थी, जिसके लिये पैसे कौड़ी की जरूरत न पड़ती हो। भीड़ छँट गई, और लोग अपने-अपने काम में लग गये। लालसिंह को भी बुद्धा का हाल मालूम हुआ। वास्तविक घटना का भी संदेह हुआ, परन्तु यथार्थ तथ्य की ओर ले जाने वाले सन्देह को जहां तक सुलाकर लालसिंह ने भी दैवी घटना में विश्वास किया, और अपने आंख-देखे प्रमाण की इस प्रकार मुहर लगा दी—झिझरी चढ़ाकर जब मैं लौटने को हुआ, तब मैंने भी देवता के दर्शन किये। मेरे घर पर लौट आने के बाद इन लोगों ने देवता का कुछ अपमान किया होगा, तभी यह कष्ट भोगना पड़ा।'

भुजबल ने इस घटना को न तो समझा, और न उस पर विश्वास किया, परन्तु वह बुद्धा के पास गया।

बोला—'कुछ बात नहीं है जी। यों ही घबरा गये है। पैलू, इसे आज ही लहचूरा ले जाओ। मैं तुम्हारा लगान माफ कर चुका हूँ। अब यहां पड़े-पड़े दिन मत खराब करो।'

पैलू बोला—'गांठ में एक कौड़ी भी नही है। इसे बड़े वेग का ज्वर चढ़ा हुआ है, कहाँ ले जाऊँ? कैसे ले जाऊँ?'

'मैं तुम्हें एक रुपया दूंगा और बैलगाड़ी। आज चले जाओ।'

'ऐसी अवस्था में तो इसे न ले जाऊँगा।' पैलू ने कहा—'जब अच्छा हो जायेगा, तभी हम लोग जा सकेगे।'

'देर लगाने से लगान की माफी की बात मुझे वापस लेनी पड़ेगी। तुम लोग ऐसे मूर्ख हो कि अपना नफा-नुकसान कुछ भी नही समझते।' कहता हुआ भुजबल चला गया।

पैलू ने उसके चले जाने पर इतना कहा—'मैंने लगान की माफी माँगी कब थी?' और दांत पीसकर रह गया।

जिन लोगों के साथ पैलू और बुद्धा ठहरे हुये थे, वे बहुत दरिद्र थे, परन्तु सम्बन्धी थे, और खेतों में घोर परिश्रम करते रहने पर भी उनके हृदय में दया ज्यों-की-त्यों बनी हुई थी। उन्होंने अपना पेट काटकर उन दोनों को खिलाया, क्योंकि वे लोग भी बुद्धा की बीमारी के कारण मजदूरी के लिये बाहर न निकल पाये थे।

[५६]

पीपल पर या पीपल के पास झिझरी चढ़ा आने या फोड़ आने के बाद भी पूना को बहुत अस्वस्थ देखकर लालसिंह को चिंता हुई। दुपहरी मे भुजबल आभूषण इत्यादि विवाह का आवश्यक सामान लेने का प्रयोग बतलाकर छावनी चला गया, और उस रात लौटकर नही आया।

अँधेरा हो गया था। हाथ मे जलता हुआ दीपक लेकर पूना धीरे-धीरे चली। मन्दिर में पहुँचकर देवी की मूर्ति के चरणों में दीपक रखकर

प्रमाण किया। दीपक पास ही था। कंपित प्रकाश विषण्ण मुख पर और देवी की मूर्ति पर पड रहा था। प्रकाश और छाया की बारीक रेखायें कपित ज्योति की किरणों में पूना के पीले मुंह को और भी पीत-वर्ण प्रदान कर रही थी। आह भरकर पूना खड़ी हो गई। उस निर्जन अधकारमय ससार मे भीतर की आंखों से आश्रय-स्थान-सा ढूंढ़ने लगी। कुछ क्षण खड़े रहने के बाद जोर से बोली—'माँ ! मां ! ! क्यों विलंब कर रही हो ?'

कोई न बोला, परन्तु हृदय में जैसे किसी ने उत्तर दिया—'आश्रय पास ही तो है। कोई रोकने वाला नही।'

पूना रोने लगी। देर तक रोई, खूब रोई। यहाँ तक कि गले और आँसुओं ने जवाब दे दिया। उधर दीपक का घी समाप्त होने आया। उसके बुझने मे देर न थी। हाथ जोड़कर मूर्ति से पूना ने कहा—'कितने बलिदान तुम्हारी वेदी पर हो चुके, परन्तु तुम नहीं हिली। मैं अब जाती हूं। कल दीपक धरने न आऊँगी।'

एक बार वेग के साथ दीपक में लौ पैदा हुई। मन्दिर एक क्षण के लिये जगमगा गया। पूना के नेत्र ऐसे जान पड़े, जैसे दो यज्ञ-कुंड हों। दीपक बुझ गया। बत्ती के सिरे पर ज्वाला का केवल एक खण्ड टिमटिमाने लगा। मन्दिर निविड़ अन्धकार में समा गया। पूना धीरे-धीरे मन्दिर के बाहर हुई, और तालाब के किनारे पहुंचकर बांध पर खड़ी हो गई।

चारों ओर देखा। निर्मल तारों के क्षीण प्रकाश के नीचे वृक्षों का समूह अन्धकार की झुरमुट-सी जान पड़ता था। धरती का विषम विस्तार समस्थली का एक धूमरा चादर-सा प्रतीत होता था। कान लगाकर चारों ओर सुना। गांव से हलका जन-रव थोड़ा सा सुनाई पड़ता था, पीपल के पत्तों की खड़खड़ाहट विशेष।

पूना का गात्र कांप रहा था। दृढ़ता के साथ सिर ऊँचा किये तालाब के किनारे अकेली खड़ी थी। नीचे जल-राशि शांत, विस्तृत और

सम्वाद-विहीन। अँधेरे में छिपा हुआ निस्तब्ध, हल्का सफेद जल-भंडार किसी को किसी निस्सहाय का सन्देश ही क्या दे सकता था। कुछ आवाहन भले ही करता हो।

'अब मेरा' यहाँ आश्रय होगा।' पूना ने धीरे-धीरे कहा—'एक लहर एक शब्द और फिर कुछ नहीं।' फिर आकाश की ओर देखने लगी।

अपने अपने स्थान पर तारे चमक रहे थे। कभी-कभी एक आध नक्षत्र इधर से उधर दौड़ लगाकर आकस्मिक प्रकाश करके विलीन हो जाता था। तारे मानो आपस में कुछ कह रहे थे। पूना की आँख के तारे से एक प्रकाश-पुंज छूटा, और आकाश के प्रकाश ने पूना से मानो कुछ कहा। नीचे अखंड जल-राशि, कठोर तालाब और कठोरतर संसार।

पूना ने कहा—'एक बार इस स्थान में तिरोहित होने के बाद फिर सब बखेड़ा समाप्त हो जायगा, परन्तु मैं तैरना जानती हूँ, इसलिये कार्य की सिद्धि असम्भव हो जायगी। फिर लौटकर इसी निर्मल स्थान पर लौटना पड़ेगा।'

वहां से हटकर पूना पत्थर के एक बड़े ढोंके को ढूंढ़ने लगी। अंधेरे में देर तक ढूंढ़ा, परन्तु बड़ी शिला न मिली।

थककर बैठ गई। उसका ध्यान एक बार फिर मन्दिर की ओर गया। बोली—'मां, क्या आज्ञा है ? उसे अपनी जननी का स्मरण हो आया। मन में बोली—'प्राण निकलते थे, और इस अभागिन का उन्हें ध्यान था। कहा था, पूना और—।' पूना खड़ी हो गई। धीरे-धीरे दृढता के साथ बोली—'मैं मरूंगी नही भगवान् की दी हुई देह के साथ आज विश्वासघात न करूंगी। बुलाऊँगी, अपने रक्षक का आवाहन करूंगी। यदि वह कायर निकले, तो मैं कल इसी समय सब पीड़ाओं का अन्त करूंगी।' पूना घर चली गई।

देवी के मन्दिर से लौटकर जब पूना घर की पौर में आई, तब लालसिंह को मिट्टी के तेल की बड़ी बत्तीदार बिना चिमनी की रोशनी में चिट्ठी लिखते पाया। उसे अपने पास खड़ा होता देखकर लालसिंह

ने लिखना बन्द कर दिया। पूना की ओर देखने लगा। दुर्गाजी के मन्दिर से लौट आई थी, और आँखों में एक विचित्र आभा-सी दिखलाई पड़ती थी।

लालसिंह को मन मे डर लगा। बोला—'मन्दिर में कोई मिला तो नहीं पूना ?'

'हां मामा। देवी दुर्गा।'

'तुम जाकर सो जाओ बेटी।' लालसिंह ने घबराकर कहा, और लिखने की सामग्री इकट्ठी करके एक ओर रख दी। अपने आपसे कहा—'कल ने दिन देवी और दया करें। कुशल-पूर्वक सब कार्य निबट जाये।'

पूना ने कहा—'इसी समय देवी के दर्शन को कल फिर जाऊँगी।' पूना ने बिना आँख नीची या बन्द किये कहा।

'अवश्य, अवश्य।' तुरन्त लालसिंह ने कहा, और उसके सारे शरीर मे रोमांच हो आया।

पूना भीतर चली गई। लालसिंह ने मिट्टी के तेल के दीपक के परे को झाड़ते हुये मन मे कहा—'चेहरा कैसा तमतमा रहा था! आँखें कैसी मशाल की तरह जल रही थीं! और कैसी विचित्र चाल ढाल थी! अवश्य देवीजी की सवारी हो रही है। भगवती मुझे अनिष्ट से बचावें, मैंने तो किसी का कुछ बिगाड़ा नहीं है। भुजबल कल आवें, तो उन्हें सब सुनाऊँगा। लक्षण अच्छे नहीं जान पड़ते। और कहीं शिवलाल कल छावनी की फौज-पुलिस ले आया, तो सारा घर-द्वार धूल मे मिल जायेगा।'

यह सब सोच रहा था कि पूना फिर आई। बोली—'मामा, मैं बुद्धा को देखने जाती हूं।'

लालसिंह ने डरते-डरते धीरे से कहा—'रात है, अँधेरा है बेटी!'

'कुछ डर की बात नहीं है। वह सताया हुआ दीन-हीन आदमी है, देखने जाती हूं। खाने-पीने को पूँछ आऊँगी।' पूना ने कहा।

लालसिंह ने सोचा—'देवी के सताये को देवी देखने जाती है। अब या तो वह अभी मरता है या तुरन्त चंगा होता है।' और पूना को अकेले ही जाने की अनुमति दे दी। घर पास ही था। वह साथ नहीं गया।

पूना बुड्ढा वाले घर के द्वार खुलवाकर भीतर गई। दीपक बुझा हुआ था। जला दिया गया। एक टूटी चारपाई पर बुड्ढा पड़ा हुआ सो रहा था। पैलू का बिस्तर नीचे था। घर के और लोग भीतर सो रहे थे। पूना ने किवाड़ बन्द कर लिये।

पैलू ने पूछा—'इतनी रात गये कहां आई तुम बेटी ?'

'बुड्ढे को देखने आई हूं तथा एक और बड़े आवश्यक कार्य से। इन्होंने आज कुछ भोजन किया ?'

'बहुत थोड़ा, जो कुछ रूखा-सूखा मिला, दे दिया था।'

'मैं इनके लिये अभी कुछ खाना बनाकर भेजती हूं।'

'अब रात हो गई है।'

'कोई चिंता नहीं। हलका, पुष्टिकारक भोजन होगा।'

पैलू बहुत कृतज्ञ दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा। परन्तु इस अनपेक्षित सहायता के समझने में उसे कठिनाई हुई।

पूना ने कहा—'तुम अपना उद्धार करो, नहीं तो वह राक्षस तुम्हे खा जायेगा।'

'कौन ?' पैलू ने घबराकर पूछा।

'वही वही खैर नाम पीछे मालूम होगा।' पूना ने रुककर कहा।

उसकी तनी हुई आंखों को देखकर गत रात्रि की भयानक घटना पैलू की आंखों के सामने हाहाकार करके नाचने लगी।

'हम यह गाव शीघ्र छोड़ेंगे बेटी।' पैलू ने कहा—'लहचूरा में ही मरना-कटना भाग में बदा है। चैन से बैठकर रोटी खाना भाग्य में नहीं लिखा है।' फिर भुजबल के साथ पूना के रिश्ते का खयाल करके बोला—'भाग्य सब जगह एक-सा ही है। जो यहां होना है, वही लहचूरा में

होगा। पर यहाँ रहते यदि एक-आध फटकार ऐसी और पड़ गई, तो बेमौत मर जायेंगे।'

पूना ने कहा—'तुम्हारे एक सहायक छावनी में रहते है। उनका क्या नाम है ? कभी-कभी यहाँ भी आये है।'

'अब भी आते है।' पैलू ने गर्व के साथ कहा—'बिलकुल देवता है। कल छावनी जाकर बुद्धा का हाल उन्हें सुनाऊँगा।' फिर हतोत्साहित होकर बोला—'देवता की फटकार की कोई दवा किसी के पास नही है।'

'नहीं, तुम उनके पास जाओ, और यह एक चिट्ठी उन्हें देना। उन्हीं को देना, और किसी को नहीं।'

पैलू ने चिट्ठी ले ली। बोला—'मैं इसे यत्न के साथ रक्खूंगा। कल बड़े भोर जाकर दे दूँगा।'

'हाँ, कल बड़े भोर छावनी में पहुंच जाना। बुद्धे की चिन्ता मत करना। मै इनके खाने-पीने का प्रबन्ध कर दूँगी।'

[५७]

बड़े तड़के उठकर पैलू छावनी गया। बुद्धा के कष्ट का पूरा विवरण सुनाया। उस रात की घटना के दैवी होने में केवल उसी समय उसे शङ्का हुई थी। परन्तु दूसरों के विश्वास दिलाने पर जो घटना-स्थल पर मौजूद न थे, उन्हें भी विश्वास हो गया कि घटना के मूल में किसी पारलौकिक व्यक्ति का हाथ था। इस आत्मछलना के आधार पर घटना को खूब बढ़ा-चढ़ाकर पैलू ने अजितकुमार को सुनाया। वह सुनता रहा, और अविश्वास की मुस्कराहट मुस्कराता रहा।

पैलू ने अत्यन्त विश्वास-पूर्वक कहा—'आप चाहे मानें, चाहे न मानें, मैंने अपनी आँखों से बड़े-बड़े दांत और बड़े-बड़े नख देखे हैं। आँखों से लौ निकल रही थी।'

'मैं भी उस जगह को वैसे ही अंधेरे में देखूँगा।' अजितकुमार ने कहा—'परन्तु यह ठीक है कि अब तुम लोग ऐसे स्थान में मत रहो, जहाँ सिवा दुःख के तुम्हें कोई सुख नहीं है।'

'बुद्धा अच्छा हो जाये, तो फिर लहचूरा चले जायेंगे। परंतु अब की बार वह भुजबल प्राण लेकर ही रहेगा। कहता था कि घर जाओ, लगान माफ कर दिया। मैंने नहीं माना। तन बेचकर लगान दूंगा, क्योंकि उसका ठीक नहीं है, न जाने कब बदल जाये।'

'तुम छावनी मे आ जाओ।' अजित ने कहा—'तुम्हारे लिये यहाँ काफी मजदूरी मिलेगी। बुद्धा का यहां अच्छा इलाज हो जायेगा।'

पैलू बोला—'परन्तु भुजबल भी यहीं रहता है। रोज ही भिड़ा-भिड़ी हुआ करेगी।'

अजित ने कहा—'न हो पावेगी। यहाँ कानून भी तो है।'

'तो कुछ नही है।' पैलू ने कहा—'लोग अंग्रेजी से रियासत में अधिक बेरोक-टोक रहते हैं। वहाँ भुजबल मारपीट करे, तो गांव-भर इकट्ठा हो जायेगा। शहर में तो कोई किसी की सहायता के लिये नहीं दौड़ता—आप-सरीखे पुरुषों की बात और है।'

अजित बोला—'मैं तुम्हारे लगान का प्रबन्ध किये देता हूं। तुम भुजबल को देकर रसीद ले लेना। थोड़े दिन बुद्धा को रखकर यहीं मेहनत-मजदूरी करना। जब अच्छा हो जाये, तब घर चले जाना।'

उस बुड्ढे बड़े किसान की आँख में आँसू आ गये। गद्गद् होकर बोला—'आपसे हम लोग कभी उऋण न होंगे। जैसे बनेगा, वैसे हम आपका रुपया फसल आते ही दे देंगे।'

अजित ने कोमलता के साथ कहा—'इसकी कुछ फिक्र मत करो। मै दो-एक दिन में ही सिंगरावन आकर तुमको रुपया दूंगा।'

पैलू कुछ स्मरण करके बोला—'आपके लिये एक चिट्ठी लाया हूँ, लीजिये।' कपड़े में से खोलकर चिट्ठी अजित के हाथ मे दे दी। ऊपर कोई पता न लिखा था। लिपटा हुआ पीले कागज का एक टुकड़ा था।

पैलू ने कहा—'चलना तो आपको आज ही पड़ेगा। बुद्धा की तबियत शायद और न खराब हो जाये। आपके देखने-मात्र से उसे बहुत धीरज बंधता है।'

अजित ने कोई उत्तर न देकर चिट्ठी पढ़ी। पढते ही तिलमिला उठा। देर तक चुप रहा। पैलू अपनी झोली में से चिलम-तम्बाकू निकालकर भरने और पीने में लग गया।

अजित ने मन में कहा—'अभी तक दरिद्र किसानों के ऊपर वार होता था, अब दीन स्त्रियों की बारी आई है। जो कुछ बन सकेगा, अवश्य करूँगा। परन्तु मामला बहुत नाजुक है।'

पैलू जब चिलम पी चुका, तब उससे अजित ने कहा—'तुम सिगरावन चलो, मैं अभी आता हूँ।'

पैलू को बाजार के सौदे के लिये कुछ पैसे देकर बिदा कर दिया। उसके चले जाने पर अजित ने बैठे-बैठे सोचा—'भुजबल का अत्याचार बेचारा रतन को दुःख के न-जाने किस गड्ढे में ले जायगा। कितनी दुर्बल और कितनी शुष्क हो गई है! अब वह प्रफुल्लता नहीं रही। क्रूरता के प्रहारों के कारण हृदय की सरसता नष्ट हो गई। मुझे पहिचाना तक नही। पहिचान कर भी शायद भूल रही थी। अथवा जान-बूझकर अपमान किया हो। परन्तु मैं मानापमान की परवा नहीं करता। पराई होकर वैसी अवस्था में मेरे साथ और व्यवहार ही वह क्या कर सकती थी?' फिर एक आह भरकर रह गया।

इतने में, अचानक, शिवलाल आ गया। पहले वह कभी उसके पास न आया था। बैठते ही बोला—'मुझे आज रुपये की बड़ी जरूरत है। धन का वह घड़ा यदि आपके पास हो, तो दे दीजिये। लिखा-पढ़ी करा लीजिये, और ब्याज लीजिये। आपका रुपया मारा न जायेगा।'

अजित ने कहा—'वह रुपया तो मैं मजिस्ट्रेट की कचहरी में दाखिल कर आया हूं। पता लगाया जा रहा है कि उसका मालिक कौन है।'

'ऐसा भी कोई कभी करता है?' शिवलाल ने खीझकर कहा—'आई हुई लक्ष्मी को कोई नहीं छोड़ता। उस समय न-जाने धर्म का कौन-सा विश्वास लात मारने को सामने आ गया, जो मैंने इनकार कर दिया। क्या सचमुच आप सरकार में रुपया दाखिल कर आये हैं?'

'जी हाँ।' अजित ने संक्षेप में उत्तर दे दिया।

'खैर, तब बिना रुपये के ही देखा जायेगा।' शिवलाल ने अपने आप कहा, फिर अजित से बोला—'कल शाम को आपको अवकाश मिलेगा ?'

'शायद मिल जाये। कहिये, क्या आज्ञा है ?' अजित ने पूछा।

शिवलाल ने सोचकर कहा—'सिगरावन में एक जगह मेरा विवाह निश्चित हुआ है। आपको बारात में चलना होगा।'

'इस वय मे विवाह !' अजित ने तिनककर कहा—'मैं न जा सकूंगा, मुझे क्षमा कीजिये।'

'जाने दीजिये।' शिवलाल ने मुह बिजकाकर कहा—'आप समझते हैं कि थोड़ी उम्र में ही सब कुछ हो सकता है, और थोड़ी उम्र वाले ही शक्तिमान होते है। मैं इससे उल्टा सिद्ध करने के लिये विवाह करने जा रहा हूं।'

शिवलाल चुनौती की दृष्टि से उसे देखता हुआ चला गया।

[५८]

शिवलाल घोड़ा-गाड़ी पर चढ़कर आया था, और उसी पर वापिस हुआ। वह थोड़ी-सी दूरी के लिये भी सवारी पर जाया करता था। रास्ते में बाजार से लौटता हुआ पैलू दिखलाई पड़ा। गाड़ी खड़ी करवाकर उसे पास बुलाया। उससे पूछा—'पैलू, मजे में हो ?'

पैलू ने बुन्देलखण्डी शिष्टाचार के साथ उत्तर दिया—'आपके दर्शनो से।'

'बुद्धा अच्छी तरह है ?'

'उसे ज्वर आता है।'

'क्या लिये जा रहे हो ?'

'यही निमक-मिर्च इत्यादि।'

'कहो, सिगरावन का क्या हाल है ?'

'कोई खास बात नही है।'

'हमारे गांव पर कब तक जाओगे ?'

'अभी कैसे जाऊँगा ? आपके मुख्तार साहब का लगान चुकता कर पाऊँगा, तब तो घर की देहरी झांक सकूँगा।'

'पैसे-कौड़ी की तकलीफ तो नहीं रहती ?'

'गरीबों को उससे छुटकारा ही कैसे मिल सकता है ?'

'मुझे तुम्हारा हाल मालूम है और तुम पर दया आती है।' शिवलाल ने कहा, और जेब मे हाथ डालकर दो रुपया निकाले। बोला—'यह लो। अभी इतने से काम चलाओ, आगे भी मदद करूँगा। अपने किसानों को भूखों नहीं मरने दूँगा। मैं भुजबल की तरह का आदमी थोड़े ही हूँ।'

पैलू ने रुपये नहीं लिये। बोला, 'आप तो हम लोगों के अन्नदाता हैं। बस, कृपा बनी रहे। अभी जरूरत नही है। जब चाहना पड़ेगा, दौड़कर आपके पास आऊँगा।'

शिवलाल ने हठ नहीं किया। रुपये जेब में डाल लिये। गाड़ीवान एक तरफ मुँह करके मन-ही-मन पैलू की बेवकूफी पर तरस करने लगा। शिवलाल ने पूछा—सिगरावन का कोई ताजा समाचार नही है ? भुजबल वहां कब से नही गये ?'

'परसों ही वहां थे।' पैलू ने उत्तर दिया, 'कल ही नहीं दिखलाई पड़े।'

'लालसिंह के घर का क्या हाल है ?' शिवलाल ने कुछ हिचकिचाकर पूछा।

पैलू ने कहा—'औरतों से सुना है कि बड़ी जल्दी पूना का ब्याह भुजबल के साथ होने-वाला है। परन्तु उसकी कोई धूम-धाम नहीं दिखलाई पड़ती है। आप तो जानते हैं कि वाहियात बातें बनाकर खड़ी करने में दुनियां को देर नहीं लगती। बड़ों की बातें बड़े ही जानें।'

शिवलाल के सिर पर जैसे वज्र टूटकर गिरा हो। हाथ-पैर सन्न रह गये। थोड़ी देर तक कुछ नहीं बोल सका। विलम्ब होता देख पैलू ने कहा, 'मुझे आज्ञा हो तो जाऊँ। दूर जाना है।'

'नही ।' शिवलाल ने इस तरह से कहा, जैसे यकायक नीद से जागा हो । 'घर चलो । आगे गाड़ी पर बैठ जाओ । खाना खाकर जाना । मैं भी चलूंगा ।'

पैलू ने बहुतं भागना चाहा, पर न बचा । उसके साथ जाना ही पड़ा ।

[५६]

उसी दिन दोपहर से कुछ पहले ललितसेन पैर-गाडी पर बैठकर कचहरी गया । मजिस्ट्रेट का चपरासी झाँसी से आये हुये किसी वारन्ट की बाबत उसे इनाम के लालच से कुछ खबर दे गया था ।

कचहरी पहुंचकर उसने वारन्ट और पुलिस को अपने साथ लिया, और गाड़ी हाथ में लिये उस मार्ग से आया, जो छावनी से छत्रपुर को गया है । जब उस चौराहे पर पहुँचा, जहाँ से एक सड़क बिलहरी को गई है, तो एक किनारे पेड़ के नीचे एक आदमी को बैठे देखा । यह पैलू था । शिवलाल ने उसे यहाँ पहले ही से भेज दिया था, और कह दिया था कि चौराहे से गाड़ी पर बिठलाकर सिगरावन ले चलेंगे । सिगरावन के लिये मार्ग घोड़ा-गाड़ी के लिये उपयुक्त न था, परन्तु शिवलाल ने घोड़ा-गाड़ी से जाने का निश्चय कर लिया था । घर से साथ इसलिये न लेना चाहता था कि वह यात्रा के समय तीन आदमियों का एक साथ जाना मनहूस समझता था ।

ललित चौराहे से मुड़कर बस्ती में नहीं गया । सामने से शिवलाल की फिटन आती हुई दिखलाई पड़ी । वह पुलिस वालों को लिये हुये एक ओर खड़ा हो गया ।

फिटन के पास आते ही सिपाहियों ने हाथ उठाकर आगे बढ़ने का निषेध किया । गाड़ीवान रास खीचकर रह गया । शिवलाल बहुत तड़क-भड़कदार कपड़े पहने हुये और एक पोटली गाड़ी में रक्खे हुये था । पुलिस के अफसर ने, जो साथ में था, नीचे उतर आने का आदेश किया।

विलम्ब होता देख पैलू ने कहा—'मुझे आज्ञा हो, तो जाऊँ । दूर जाना है ।'

शिवलाल ने अकचकाकर पूछा—'क्या बात है ? क्यों नीचे उतरने को कहते हो ?'

'नीचे आइये, आपसे काम है ।' पुलिस के अफसर ने कहा—'जल्दी आइये । हम लोगों को देर करने का हुक्म नहीं है ।'

शिवलाल धड़कते कलेजे से नीचे उतर आया । नीचे उतरते ही सिपाहियों ने घेर लिया । एक ने हाथ पकड़कर कहा—'हम आपको गिरफ्तार करते है ।'

दूसरा बोला—'आपकी खाना-तलाशी भी लेना है ।' फिर गाड़ी में रक्खी हुई पोटली पर निगाह पड़ते ही एक और सिपाही से कहा—'उस पोटली को उठा लो ।'

शिवलाल ने कातर स्वर मे कहा—'उसमें मेरे रुपये और जेवर रक्खे हैं ।'

अफसर बोला—'वही तो चाहिये । आपके घर मे से राख थोड़े ही बटोरने है ।' अफसर ने पोटली उठा ली ।

शिवलाल ने बहुत ही करुण स्वर में पास खड़े हुये ललितसेन से कहा—'आप इस शहर के बहुत बड़े रईस हैं । मुझे बचाइये । आपके सामने मेरी इज्जत खराब की जा रही है, और आप खामोश हैं ।'

अफसर ने हँसकर कहा—'यह तो आपको बचावेंगे ही, क्योंकि वारन्ट इन्ही का निकलवाया हुआ है ।'

शिवलाल ने रोने-सी सूरत बनाकर कहा—'मैं कसम खाकर कहता हूँ कि उस संध्या को मैं आपकी बैठक में किसी बुरी नियत से नहीं गया था । अजितकुमार ने नाहक का दुन्द मचाकर किवाड़ खुलवाये, और फिर मुझे आपके सामने बदनाम करके मेरी यह दुर्गति करवा रहे हैं । मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ, मुझे छुड़वा दीजिये ।'

ललित ने उत्तेजित होकर कहा—'जी, उस बेचारे ने कभी कुछ नही कहा । आपने जो बैनामे दस हजार रुपये लेकर किये थे, और

मुझसे कहा था, कि कचहरी में जमा कर आये, वे असल में जमा न करके खा गये, उसी का वारंट है यह ।'

शिवलाल की आंखों से आंसू निकल आये। रोते-रोते बोला—'मेरे पास अभी बहुत जमींदारी है। आप उस सब को ले लीजिये, पर जेलखाने न भेजिये। मैं आपके पैर पड़ता हूं। देखिये, मुझे नाहक न मारिये। उन दस हजार में से चार हजार तो भुजबल के पास रक्खे हैं।'

'भुजबल के पास !' ललित ने चकित होकर कहा—'बिलकुल झूठा। यों ही दूसरों को फांसना चाहता है।'

'मुझे कोढ़ निकले, यदि मैं झूठ बोलता होऊँ। मैंने छः हजार जरूर अपने पास रक्खे, परन्तु चार हजार भुजबल के ही पास हैं।'

ललित को ऐसा भान हुआ, जैसे किसी ने कलेजे में बर्छी छेद दी हो। परन्तु क्षण भर बाद किसी तरह अपने को संभालकर बोला—'जो कोई जैसा करेगा, वैसा पावेगा चाहे कोई हो।'

इतने में पुलिस-अफसर ने तलाश करने के लिये गठरी खोली। उसमें दो हजार नकद रुपये थे, और अनेक बहुमूल्य आभूषण।

ललित ने कहा—'मेरा नुकसान पूरा हो जायगा, परन्तु इन्होंने जो कुछ किया है, कानून उसका दंड देगा।'

शिवलाल के जी में एक आशा उदय हुई। उसी के भरोसे घिघिया-कर बोला—'जब आपका नुकसान यों ही पूरा हो जायगा, तब मुझे जेल में सड़ाने से आपको क्या मिलेगा ? इनमें से कुछ जेवर उन्हीं छः हजार रुपयों मे से बने है, और बहुत से मेरी पत्नी के हैं, जो उसे मेरे पिता ने दिये थे। न-मालूम कितनी मुश्किलों से लाया हूं, आपका दस हजार से ज्यादा इन सबसे वसूल हो जायगा। मुझे छुड़वा दीजिये। मैं एक बात और बतलाता हूँ, आपका जन्म-भर का सुख-दुख उस समाचार पर निर्भर है।'

ललितसेन ने बिना किसी कौतूहल के पूछा—'क्या ?'

पुलिस-अफसर बीच में पड़कर बोला—'यह यों ही बकवाद किये चला जायगा। आप अपने घर जाइये हम इसे हवालात में लिये जाते हैं। कल की ही गाड़ी से इसे माल-समेत झाँसी भेजना पड़ेगा।'

शिवलाल ने व्याकुल होकर कहा—'देखिये, मुझे छुड़ा लीजिये। मैं आपको यह समाचार देकर आपका बड़ा काम कर रहा हूं।'

पुलिस वाले धकियाकर ले जाने को हुये।

ललितसेन ने उसकी आवाज में सचाई की खनक सुनकर जरा उत्सुक होकर अफसर से कहा—'एक मिनट ठहर ही जाइये, कुछ हर्ज तो है नहीं। आखिर अभी तलाशी तो बाकी है। वह इसके सामने ही होनी चाहिये।'

'इसे कुछ सिपाहियों के साथ हवालात में भेजे देते हैं, फिर तलाशी लेते रहेंगे। उस समय इसकी उपस्थिति के बिना भी हम काम निकाल लेंगे।'

शिवलाल ने कहा—'भुजबल आज या कल में सिगरावन की एक पूना-नामक लड़की के साथ ब्याह करने वाले हैं। उसे रोक लीजिये, अन्यथा आपकी बहन जन्म-भर रोयेगी। मुझे निश्चय मालूम है।' और फिर बहुत दीनता के साथ बोला—'देखिये अब छुड़वा दीजिये। मैं न बतलाता, तो आपको पता भी न लगता।'

ललित के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगी। मुश्किल से बाइसिकल का सहारा लेकर थम सका। क्षीण स्वर में बोला—'दरोगाजी, इसे ले जाइये।' पुलिस शिवलाल को घसीट ले गई। कुछ सिपाही अफसर के साथ मकान की तलाशी के लिये दूसरी ओर चल दिये।

शिवलाल ने जाते-जाते पास खड़े हुये पैलू से कहा—'जैसे बने, इस ब्याह को रोकना पैलू।'

[६०]

शिवलाल की गिरफ्तारी के समय एक हजूम इकट्ठा हो गया था। शिवलाल ने जाते-जाते पैलू से जो कुछ कहा था। उसे ललितसेन ने भी

अपनी उस बदहवासी में सुन लिया था। कुछ पुलिस वाले शिवलाल के मकान की तलाशी लेने बस्ती में चले गये। ललित पैलू के पास पहुंचा। पूछा—'तुम कौन हो?'

पैलू भयभीत हो गया। शरीर से पसीना छूट गया। उसने सोचा कि यह भयंकर मनुष्य अब मेरी गर्दन नापने आया है। बोला—'मैं बहुत गरीब आदमी हूँ। इस मामले मे कुछ नहीं जानता।'

ललितसेन ने तीव्र स्वर में कहा—'अबे, मैं जो पूछता हूं, वह बतला, तुझे फांसी न लगेगी।'

पैलू ने हाथ जोड़कर कहा—'अन्नदाता, मैंने कुछ नहीं किया है। मैं तो मजदूर आदमी हूं। कुछ नहीं मालूम।'

ललित गरम होकर बोला—'अबे उल्लू के पट्ठे, मरा क्यों जाता है? मैं कौन तेरी जान लेने आया हूं। कहां का रहने वाला है?'

'लहचूरा का सरकार!'

'लहचूरा का! सिगरावन में नहीं रहता?'

'सिगरावन में मेरा क्या काम? केवल वहां रिश्तेदारी है। रिश्तेदारी में आया हूं। अभी हाल में।'

'जब तक तुम्हारी खाल नहीं खरोंची जायगी, तुम कोई बात ठीक नहीं कहोगे। बोलो, कितने दिन से सिगरावन में रहते हो?'

'अभी हाल ही में आया हूँ।'

'झूठ बोलता है बेईमान। शिवलाल को जानता है?'

'नहीं जानता हूं—जी, इतना ही जानता हूं कि उनकी जमींदारी लहचूरा में है, जो किसी ने अब खरीद ली है। न जाने एक कोई है, जिन्होंने ले ली है।'

'तू ठीक-ठीक बात नहीं करता है। किसी सिपाही को बुलाऊँ, तब चेत में आवेगा।'

इतने ही में वहां अजितकुमार आ गया। उसको देखकर पैलू की जान में जान आई। ललित की आकृति पर व्याकुलता और क्रोध का

राज्य-सा मालूम पड़ता था। शिवलाल की गिरफ्तारी का समाचार गाँव-भर में फैल गया था। अजित ने भी सुन लिया था, परन्तु कारण न मालूम था। ललित को पैलू पर क्रोध करते हुये देखकर अजित को आश्चर्य हुआ।

अजित ने पैलू से कहा—'क्या बात है पैलू ?'

'कुछ नही बाबूजी। आप जानते हैं, मैं गरीब किसान हूं। किसी का कुछ नहीं लिया दिया, और न किसी के झगड़े—फसाद में हूं। यह व्यर्थ बिगड रहे है।'

अजित ने ललित के मुख की ओर देखा।

अजित के आने पर ललित का क्रोध तो कम हो गया, परन्तु ग्लानि और व्याकुलता बढ़ गई।

फटे हुये गले से ललित ने कहा—'यह आदमी एक बात जानता है, वही इससे पूछना चाहता हूँ।'

तमाशा देखने वाले तितर-बितर न हुये थे। पैलू को किसी झंझट का केन्द्र समझकर उसके आस पास इकट्ठे हो गये।

अजित ने विनय पूर्वक सबको अपने-अपने घर चले जाने के लिये कहा, परन्तु हुल्लड़बाज लोग ऐसे समय और ऐसी अवस्था में अपनी उपस्थिति बहुत आवश्यक समझते है, और उनकी धारणा होती है कि हमें ज्ञेय और अज्ञेय, सब कुछ जान लेने का हक है। उन्होंने अजित की विनय पर कोई ध्यान नही दिया। तब ललित ने जरा कड़ककर कहा—'आप लोग जाइये। हम अपनी कुछ निजी बात कर रहे हैं।' तब वह भीड वहाँ से अनिच्छापूर्वक हटी।

अकेले रह जाने पर अजित ने कहा—'मैं इस आदमी को जानता हूं। दरिद्र किसान है। शिवलाल की यह किसी भी बात में शरीक न रहा होगा, मुझे इसकी पूरी प्रतीति है।'

'मुझे भी विश्वास है।' ललित ने क्षुब्ध स्वर में कहा—'परन्तु मैं इससे कुछ और ही बात पूछ रहा था, जो जान पड़ता है, इसे मालूम है, परन्तु छिपा रहा है।'

अजित ने कहा—'आप पूछिये, इसे मालूम होगा, तो अवश्य बतलावेगा। डरा हुआ है, इसीलिये ठीक उत्तर न दे पाया होगा। पैलू! जो कुछ जानते हो, कहो।'

पैलू ने शांत होकर कहा—'मैं क्या बतलाऊँ? शिवलाल से मेरा कोई सम्बन्ध ही नही है।'

ललित ने कहा—'भुजबल को जानते हो? कहाँ हैं?'

'सिगरावन में हैं।' पैलू ने बेधड़क कहा—'आज सिगरावन में ही होगे।'

'वहां किसी का विवाह हो रहा है?' ललित ने अजित की ओर बिना देखे थर्राये हुये स्वर मे प्रश्न किया। अजित सड़क के दोनों ओर के वृक्षों को देखने लगा।

पैलू ने उत्तर दिया—'मुझे अधिक तो कुछ तो नही मालूम, परन्तु सुनता हूं कि लालसिंह की भाजी का विवाह होने वाला है।'

'किसके साथ?' ललित ने कष्ट के साथ पूछा।

अजित बोला—'यह इसका उत्तर शायद ही जानता हो और यदि जानता भी होगा, तो आप सुनकर ही क्या करेगे?'

'मास्टर साहब—बाबू अजितकुमार, मैंने आपका अपमान किया था। आप भूले न होगे', ललित ने कराहते हुये कहा—'और मैंने आपके ऊपर मैजिस्ट्रेट की कचहरी मे अनधिकार-प्रवेश का दावा भी किया है।'

'पहली बात स्मृति से पीछे रह गई है, और अगली का कुछ भय नही है।' अजित बोला—'यदि मैंने कोई अपराध किया होगा, तो उसे रत्ती-भर नही छिपाऊँगा।'

ललित की दृष्टि उदासी का घर बन गई। बोला – 'तुम्हें दुखाने के के लिये यह सूचना नहीं दी है। अपनी गलती पर जो परिताप हो रहा है, उसी को प्रकट कर रहा हूं। मैं यदि मर गया होता तो अच्छा था।'

अजित ने ललित के कंधे पर हाथ धरकर कहा—'ऐसा मत कहिये।'

ललित ने तुरन्त कहा—'मालूम नहीं, मैं अब कितने दिन और जिऊँगा। मुझे क्षमा कर दोगे ?'

अजित की आँखों में आँसू आ गये। परन्तु ललित के नेत्र बिलकुल शुष्क थे।

अजित ने कहा—'आप घर जाइये। आपकी तबियत बहुत खराब मालूम होती है।'

'अजित—अजित—' ललित से और कुछ नही बोला गया। नीचा सिर करके खड़ा रह गया।

अजित ने कहा—'घर जाइये। देखिये, आपका बहुत बड़ा दायित्व है। आप जानते हैं कि संसार में आप अकेले नहीं हैं।'

ललित की आँखें पागलों जैसी हो गईं। दाँत पीसकर बोला—'मैं देखूंगा ! देखूंगा, कपटी, कुटिल, नीच, उस पिशाच को। हरे-भरे उद्यान को वह खाक करने जा रहा है।' फिर रुककर कुछ धीमे होकर बोला—'क्या तुम्हे भी मालूम है ? क्या यह बात सच है ? क्या यह संभव है ?'

अजित ने एक क्षण सोचकर कहा--'मुझे ठीक-ठीक कुछ नहीं मालूम। सिगरावन जा रहा हूं।'

'अजित, छिपाओ मत। एक घड़ी पीछे सब अपने आप प्रकट हो जायगा। विस्फोट होगा, और होगा एक न एक हताहत।' ललित ने कहा।

अजित आश्वासन देता हुआ बोला—'मैं सिगरावन इसी प्रयोजन से जा रहा हूं। मुझे आशा है कि आपको जिस घटना के घटित

होने का भय है, वह असम्भव हो जायगी। आप और अधिक न तो सोचिये और न कहिये।'

ललित ने आशा की निगाह से अजित की ओर देखकर कहा—'रोक दो अजित, मैं कभी एहसान न भूलूँगा। तुम सहृदय हो, प्रबल हो, कर सकते हो।'

'प्रयत्न करूँगा।'

'मैं तुम्हारे साथ चलूँ ?'

अजित ने सोचकर कहा—'आप मत चलिये, आपके चलने से खराबी पैदा होगी। यदि भुजबल वास्तव मे उत्पात पर उतारू हुये हैं, तो आपके वहाँ जाने से खुले खजाने निर्लज्जता के साथ मनमानी करने की चेष्टा करेंगे। यदि मैंने इस संभावित कृत्य को रोक लिया, तो बात ढकी-मुंदी रह जायगी, और आँख की शरम के कारण वह भविष्य में अपने को सुधारने की कोशिश करेंगे।'

'असम्भव।' ललित ने तेजी के साथ कहा—'वह कूड़ा-कर्कट का ढेर है, उसमे चिनगारी कहाँ से आवेगी ?' फिर एक क्षण बाद बोला—'मैं अवश्य तुम्हारे साथ चलूँगा। तुम्हें सहायको की जरूरत पड़ेगी।'

पैलू की ओर संकेत करके अजित ने कहा—'यह काफी है। दल की जरूरत नहीं है।'

ललित अवहेलना के साथ बोला—'यह बिलकुल बोदा और डरपोक है।'

'किसान डरपोक नही होते।' अजित ने कहा—'कुव्यवहार के कारण ये लोग बोदे जरूर मालूम होते हैं।'

'मैं अवश्य चलूँगा।' ललित ने हठ-पूर्वक कहा।

'आप न जा सकेंगे।' अजित ने उतने ही हठ के साथ कहा—'आपके जाने से समस्या की गुत्थी बहुत उलझ जायेगी।'

'बला से उलझे।' ललित ने आवेश के साथ उत्तर दिया—'मैं उस पिशाच को उसकी राक्षसी लीला के बीच मे ही कुचलना चाहता हूँ।'

'तब मैं न जाऊँगा।' अजित ने बिना क्षोभ या क्रोध के कहा—'आपके वहाँ जाने से मामले का नष्ट होना अनिवार्य सा मालूम होता है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि वहाँ आपके जाने की बिलकुल जरूरत नही है।'

'पूरी जरूरत है। तुम अकेले खतरे में पड़ जाओगे, और जिस बात को रोकना चाहते हो, वह रुकेगी नही।' ललित दृढ़ता के साथ बोला।

अजित ने कहा—'वह लड़की उनके साथ विवाह करने को राजी नही है। उस समस्या में यही एक आशाजनक बात है। आप विश्वास रक्खें।'

ललित आह खींचकर बोला—'सयानी लड़कियों के मन की बात को कोई पूछता कब है? मैं इस निर्बल आधार पर आशा को आसरा नहीं देता। चलिये, देर हो रही है। मैं इसी तरह अभी आपके साथ चलूंगा।' और उसने सिगरावन की ओर चलने के लिये बाइसिकल सँभाली।

अजित ने जरा झुँझलाये हुये स्वर में कहा—'यदि आप विश्वास नही करते, तो देखिये, यह उस लड़की का पत्र है।' और एक कागज का टुकड़ा जेब से निकालकर ललित के हाथ मे दे दिया। ललित ने पढ़ा। उसमें लिखा था—

'आप दीनों की सहायता करते हैं। मैं बिलकुल निस्सहाय हूँ। मेरे बहनोई भुजबल आज जबरदस्ती ब्याह करके मेरा जन्म नष्ट करना चाहते हैं। मेरी रक्षा कीजिये। मुझे उबारिये। यदि मेरी रक्षा न की गई, तो मैं आज ही अवश्य अपना प्राणांत कर दूँगी। मैं अनाथ हूँ। शरण दीजिये।'

ललितसेन कुछ क्षण निष्पंद खड़ा रहा। दुबारा चिट्ठी पढ़कर अजित को दे दी।

लम्बी सांस भरकर बोला—'मेरा वहाँ न जाना ही ठीक है।' फिर कुछ देर तक सोचने के पश्चात् बोला—'मेरे वहाँ जाने से कदाचित् यह

समस्या घोरतर रूप धारण करले। परन्तु अजित, तुम अकेले कैसे इतनी बड़ी विपद् का सामना कर सकोगे ?'

अजित ने ऊपर की ओर देखकर कहा—'मेरा बल वह है। परमात्मा में विश्वास होने से फिर और किसी आधार की आवश्यकता नहीं रहती।' ललित की आंख पर अविश्वास की त्यौरी चढ़ती हुई देखकर क्षीण मुस्कराहट के साथ अजित ने कहा—'बहस का विषय नही है, और न उसका समय। मुझे आज्ञा दीजिए। दिन ढलने मे बहुत अधिक समय नहीं है।'

'जाओ भाई।' ललित ने आंख के पलक ढालकर कहा—'मुझे शीघ्र सूचना देना।'

और वहां से नीचा सिर किए धीरे-धीरे घर चला गया।

[६१]

दिन अस्त होने के पहले अजित और पैलू सिगरावन पहुँच गए। अजित ने सबसे पहले बुद्धा को देखा। पहले से उसकी हालत अच्छी थी। पैलू ने जो प्रेत-लीला छावनी में अजित को सुनाई थी, उससे कहीं ज्यादा उग्ररूप—आरम्भ से लेकर अपने अचेत होने के पूर्व तक का—बुद्धा ने सुनाया। अजित ने बहुत-सी युक्तियाँ प्रेतों के अनस्तित्व के समर्थन में बतलाईं, परन्तु उन लोगों ने सब सुनकर अन्त में सिर हिला दिया।

अजित ने कहा—'संध्या होने में देर नही है। प्रेत को मै चुनौती देकर उसी स्थान पर बिलकुल अंधेरे में जाऊँगा, जहा तुम कहते हो कि तुम्हे उसने दे मारा था। वहाँ से लौटकर सही-सलामत आ जाऊँगा, तब तो मानोगे।'

बुद्धा ने अजित के पैर पकड़ लिए। घिघियाकर बोला—'आप कदापि न जाना। हमारे एकमात्र सहारा आप ही है। आपको कुछ हो गया, तो हम बेमौत मरेंगे।'

अजित हँसने लगा। इतने में लालसिंह के दरवाजे से बाजे और स्त्रियों के गाने का शब्द सुनाई पड़ा। अजित कान लगाकर सुनने लगा।

पैलू ने कहा—'वही बात है बाबूजी। आज ब्याह हो रहा है। स्त्रियां मङ्गल-गीत गा रही हैं।

'पूना तभी आज बड़े पुण्य में लगी है।' बुद्धा ने बुद्धमानों जैसी गम्भीरता के साथ कहा—'आज वह मुझे अच्छा भोजन दे गई थी। लड़की बड़ी सुशील है।'

पैलू की ओर देखते हुये अजित बोला—'बारात का कुछ चिन्ह नहीं मालूम होता है।'

'कौन बड़े आदमियों की बातों मे पड़े।'

पैलू ने कहा—'जल्दी-जल्दी ब्याह होना है तो बारात कहाँ से सजकर आवेगी ?'

'मैं जानना चाहता हूँ।' अजित ने गुनगुनाते हुये कहा, परन्तु पैलू ने सुन लिया।

वह बोला—'आप कहें, तो चुपचाप देख आऊँ, क्या हो रहा है।'

अजित उठ खड़ा हुआ। बोला—'तुम नहीं। अभी यहीं बैठो, जरूरत पड़ने पर बुलाऊँगा, तब आना। मैं खुद जाकर देखता हूं।'

बुद्धा ने कहा—'मैं हाथ जोड़ता हूं, रात के समय पीपल के पास मत जाना।'

अजित दरवाजे तक पहुंच गया। जाते-जाते बोला—'वैसे चाहे न भी जाता, परन्तु तुम्हारे मन का भूत भगाना है। जब तक वह नहीं भगेगा, तब तक तुम्हारी तबियत बिलकुल अच्छी नहीं होगी। मैं अवश्य जाऊँगा। देखें, वह पाजी भूत मेरा क्या बिगाड़ता है।' और हँसता हुआ चला गया।

बाहर निकला ही था कि सामने लालसिंह दिखलाई पड़ा। खड़ा था। किसी की बाट-सी जोहता था। आँखें किसी अज्ञात भय में सनी सी थीं। जैसे चाहती हों कि कोई उसके पास न आवे, परन्तु ऐसा

भयावह आगंतुक की प्रतीक्षा भी साथ ही कर रही हों। अजित को देखते ही घबरा गया। मन मे भागने की इच्छा हुई, परन्तु जकड़ा हुआ सा खड़ा रह गया।

अजित ने पास पहुंचकर पूछा—'आज यह सब काहे का आयोजन है ?' और द्वार की ओर एक बार झांका।

'जी जी, यह है।' कहकर लालसिंह यकायक चुप हो गया।

'कोई उत्सव है।' अजित ने गम्भीरता के साथ कहा।

लालसिंह संभल गया, या उसने संभलने की चेष्टा की। पूछा—'आप छावनी से अभी आ रहे हैं ? कैसे आये ?'

'बुद्धा की बीमारी का हाल सुनकर आया हूं। उसकी हालत जरा खराब है।'

'हां, जी हां। किसी की झाय-झरवट हो गई। जिस जगह हुई थी, वहाँ रात को कोई नही जाता।'

'यहाँ से किस ओर है ? कितनी दूर है ?'

लालसिंह ने यथाशक्ति ठीक-ठीक पता बतलाया। उत्तर पाकर भी अजित ठहरा रहा। शायद वार्तालाप बढ़ाने के लिये किसी विषय को मन में खोजकर रहा था कि लालसिंह ने पूछा—'क्या छावनी से कोई और आ रहा है ?'

'मुझे तो नहीं मालूम।' अजित ने कहा, 'आपने किसी को बुलाया है ?'

'क्या बतलाऊँ ! जी, जी नहीं।' लालसिंह ने घबराहट के साथ उत्तर दिया। परन्तु उसकी कल्पना थी कि अजित परोपकारी चित्त का आदमी है। कुछ सनकी भले ही हो, पर काम पड़ने पर आड़े आवेगा। बोला—'आप तो हमारी जाति के लोग हैं। अच्छा हुआ, आ गये। कुछ जलपान के लिये लाऊँ ?'

'मैं जलपान कर आया हूं। जिस समय जरूरत होगी, निवेदन करूंगा।' अजित ने कहा, और सहज-साधारण तौर पर दरवाजे की ओर फिर झांका, परन्तु वहां कोई न दिखलाई पड़ा।

हो गया है। मजबूर हो गया हूं। क्या करूं? जरा बाधा पड़ गई। किसी को खबर भी नहीं दे पाया। किसी को मालूम भी न होगा?'

अजित ने लापरवाही के साथ कहा—'लोग अपने-अपने काम में व्यस्त रहते हैं, किसी को किसी की खबर की क्या पड़ी? देखिये न, हम लोग इतने पास छावनी मे रहते हैं, और कुछ पता नहीं। बुद्धा को देखने के लिये पैलू आज मुझे छावनी लाने आया, उसने भी कोई जिक्र नहीं किया। सब लोग अपने-अपने सुख-दुख में डूबे हैं किसी को किसी की क्या पड़ी?' फिर यकायक चिहुंककर बोला—'मैं आपके किसी कार्य में बाधक तो नही हो रहा हूं? यदि जरा भी हर्ज हो रहा हो, तो बतला दीजियेगा, चला जाऊँगा। बुद्धा की देख-रेख आज मुझे रात-भर करनी पड़ेगी। उसकी हालत नाजुक है।'

'नहीं, आप यहां से न जाने पावेंगे।'

लालसिंह ने बड़ी आवभगत के साथ कहा—'आपको मेरा निमंत्रण है।'

अजित ने हर्ष के साथ कहा—'निमन्त्रण तो मुझको माथे के बल स्वीकार है, परन्तु यह तो बतलाइये कि बारात कहाँ से आ रही है? आ गई है, या अभी नहीं आई है?'

लालसिंह का सिर नीचा हो गया। माथा सिकोड़कर सिर नीचा किये हुए ही बोला—'बारात कही से आने को न थी। दूल्हा मौजूद है। आपसे क्या छिपाना है, आप तो हम लोगों के हितचिंतक हैं, और पुण्यात्मा हैं आज दस बजे रात का मुहूर्त भांवर का है। भांवर पड़ जाये, और मैं आफत से छुटकारा पा जाऊं।'

'क्यों? क्यों? इसमें क्या विपद् है?'

अजित ने सहानुभूति के साथ पूछा,—'यदि मेरे लायक कोई काम हो, तो मैं सिर के बल करने को तैयार हूँ। कोई काम दीजिए, बैठे-बैठे क्या करूंगा।'

'आप यहीं बने रहिये।' लालसिंह ने बड़ी लालसा के साथ कहा—'आप यहाँ से जाइयेगा नहीं।'

'बात क्या है ?' अजित ने साधारण तौर से पूछा।

'बात कुछ नहीं हैं—कुछ नहीं है।' लालसिंह ने उत्तर दिया, और खाँसने लगा। खाँसकर चुप हो गया।

अजितकुमार थोड़ी देर चुप रहा। धीरे से बोला—'दूल्हा कौन है, यह तो कम-से-कम बतलाइये। आपने मुझे निमंत्रण दिया है कन्या पक्ष की ओर से, मैं इस अवसर पर सम्मिलित हो रहा हूं। पर दिल्लगी यह कि वर का नाम तक नहीं मालूम।'

लालसिंह ने दूसरी ओर मुह फेरकर कहा—'भुजबल।'

'छावनी वाले ? ललितसेन के बहनोई ?'

'जी हाँ, वही। पर मैं क्या करता ? मेरी बहन अपने मरने से पहले सब पक्का कर गई थीं। मैं तो उनकी आज्ञा का पालनमात्र कर रहा हूँ।'

'उनकी पत्नि तो अभी जीवित है ?'

'परन्तु क्या किया जाय ? पूना के लिये कोई वर न मिलता था। सयानी बहुत हो गई। मेरी बहन भी कह मरी है। लाला ने सौगन्ध खाकर कहा है, इसलिये उन्हीं के साथ हाथ पीले कर रहा हूं।'

अजित चुप हो गया। एक प्रश्न उसके जी में उठा, गले तक आया, फिर वहीं रुक गया। कलेजा धड़क रहा था। उसे स्थिर करने के लिये दो-एक बार धीरे-धीरे गहरी साँस ली। बोला—'एक बात पूछना चाहता हूं।'

'कहिये।' लालसिंह ने सतर्कता के साथ कहा।

'वह लड़की इस सम्बन्ध से सहमत है ? आपने खूब सोच लिया है कि उसे इस विवाह के कारण आजन्म कष्ट तो न भोगना पड़ेगा ?'

'खूब सोच लिया जनाब।' नीम के पीछे से निकलकर भुजबल ने कड़ककर कहा—'खूब सोच लिया है कि आपको हर किसी के काम में दखल देने का मर्ज हो गया है। आपको मालूम है कि आपकी यहाँ पर

कोई आवश्यकता नहीं है ? मान न मान, मैं तेरा मेहमान ! उठिये मामाजी, यहाँ से जाइये भीतर, और देखिये अपना काम। जाइये ! जाइये।'

मामा लालसिंह की वही हालत हुई, जैसी रेलगाड़ियाँ लड़ने पर सोते हुये रेल-बाबू की जाग पड़ने के बाद अपनी गफलत पर होती है। इतना घबरा गया कि गिर पड़ता, परन्तु भुजबल की कई बार की कड़क ने उसे अचेत होने से बचा लिया। वह धीरे से उठकर भीतर जाने लगा। अजित उसी तरह आसन जमाये डटा रहा।

बैठे-बैठे बोला—'मैंने एक साधारण-सी स्वाभाविक बात पूछी थी आप न जाने क्यों इतना नाराज हो गये। यदि मैं जानता कि आप यहाँ खड़े-खड़े सुन रहे हैं, तो न पूछता। इसके सिवा मैं इस चबूतरे पर बिना बुलाये आया भी नहीं हूँ।'

इतने में पौर में से लालसिंह ने किसी से कहा—'कहां जाती हो बेटी ?'

किसी लड़की के कण्ठ ने उत्तर दिया—'देवी के मन्दिर में।'

'अभी न जाओ, भीतर चलो।' फिर अजित ने कुछ नहीं सुना।

भुजबल अप्रतिभ होकर खड़ा रह गया। केसरिया बाना पहने था। ब्याह के अवसर की पगड़ी सिर पर थी। पैरों मे महावर था, और उस अंधकार में, यदि कोई देख सकता तो, ईश्वर की दी हुई उसकी सुन्दर आकृति भयानक हो रही थी।

इस समय आकाश में छोटे तारे न दिखलाई पड़ते थे। दो-एक बड़े-बड़े ही दिखलाई पड़ रहे थे। अजित उनकी ओर देखने लगा।

भुजबल ने खड़े-खड़े ही अपने साधारण स्वर में कहा—'आप जाइये।'

'मैं कन्या-पक्ष की ओर से आमन्त्रित हूं।' अजित ने बिलकुल शांति के साथ कहा—'वर पक्ष की ओर से नहीं।'

भुजबल ने चिल्लाकर कहा—'मामाजी, यहां आइये।'

वह बाहर नहीं आया।

'तब मैं ही देखता हूं।' भुजबल ने सोचा। अजित से बोला--'देखिये, इस बहाने यदि आप बखेड़ा खड़ा करने यहां आये हों, तो विश्वास रखिये, आपकी हड्डी-पसली का पता न चलेगा। आप जानते है कि यह गाँव हम लोगों का है, और इस ब्याह में गाँव भर शामिल है ?'

अजित कुछ सोचकर खड़ा हो गया। दरवाजे पर रोशनी करने और ब्याह का तमाशा देखने के लिये कुछ लोग अपनी-अपनी लाठियां लिये हुये इधर-उधर से आये।

अजित ने धीरे से कहा—'मुझे कोई झगड़ा-बखेढ़ा नही करना है। आपके मामाजी ने बुलाया था, इसलिये आ बैठा। जाता हू। मैं तो बीमार और निस्सहाय की सेवा के लिये आया था, सो यथासमय करूँगा।'

अजित वहाँ से चला गया। जाते समय उसने मन में सोचा—'क्या यहाँ की जनता की आत्मा मर गई है ?'

अजित के जाते ही लोग-बाग भुजबल के पास आये। पूछा—'क्या था लालाजी ?'

'कुछ नही। एक बकवादी पगला है, यों ही उलझ रहा था। बात कुछ नही है।' कहकर भुजबल पौर मैं चला गया।

(६२)

जिस घर में पैलू और बुद्धा थे, अजित वहीं गया। घर के और लोग भोजन की चिंता में थे, क्योंकि थोड़ी ही देर में ब्याह का तमाशा देखना था। इस समय गाँव वालों को इस अचानक ब्याह की समालोचना करने और तमाशा देखने की उत्कंठा लग रही थी। उनके मन में और कुछ नहीं था।

अजित ने पैलू से कहा—'अभी हम लोगों को क्या करना है, जानते हो ?'

'मैं तो कुछ नही जानता।' उसने उत्तर दिया।

बुद्धा ने लेटे-लेटे कहा—'मेरी तबियत अच्छी होती, तो मैं भी तमाशा देखने जाता।'

अजित बोला—'चुपचाप सुनो, जो मैं कहता हूं। यह विवाह नहीं है, एक बडा भारी पाप-कर्म है। जो लोग इसमें भाग लेंगे, पाप कमायेंगे।'

पैलू ने कहा—'हम लोग न जायेंगे, परन्तु औरों को तो रोक भीं नहीं सकते।'

'इससे पाप बचेगा नही ?' अजित बोला।

'तब क्या करें बाबूजी ?' पैलू ने पूछा। 'बात ठीक नही हो रही है, यह तो मेरी भी आत्मा कह रही है।'

'इस ब्याह को रोकना चाहिये।' अजित ने दृढ़ता के साथ कहा।

पैलू उत्तेजित होकर बोला—'मुझे आज्ञा हो, तो भुजबल का खोपड़ा भुरकस कर दूं। लेकिन वह लड़की बेचारी बड़ी भोली-भाली है, उसका जन्म अकारथ जायगा।'

अजित ने कहा—'किसी का सिर फोड़ने की गरज नही है। ब्याह को रोक देने से उस अनाथिनी का जन्म भी अकारथ न जायगा। जिसने चाहा, वह इस संसार में कभी कुआंरा नही रहा। गांव में तुम्हारे-सरीखे और कितने आदमी हैं ?'

पैलू ने माथा टटोलकर उत्तर दिया—'छोटा-सा गांव है। मिहनत-मजदूरी करने वाले गरीब किसान बसते हैं। सीधे हैं। हमारा साथ देने लाठी लेकर कोई न आवेगा।'

'क्यों ?' अजित ने कहा—'उन्हे जब यह बतलाया जायगा कि उस लड़की की मर्जी भुजबल के साथ ब्याह करने की बिलकुल नहीं है, और उसने मुझे इसी विपद् के निवारण के लिये बुलाया है, तब क्या अनेक लोग हमारा साथ न देंगे ?'

'कह नहीं सकता।' पैलू ने कहा—'लालसिंह से न कहा जाय ?'

'इस समय उससे कहने में कोई सार नहीं।'

अजित बोला—'वह एक सीधा-सादा अनिश्चयी आदमी है। परन्तु बेईमान नहीं मालूम होता। तुम अच्छी तबियत के लोगों में जरा जाकर इसकी चर्चा तो करो।'

पैलू ने कहा—'मैं जाने को तैयार हूं, परन्तु, कह नहीं सकता कि लोग मानेंगे या नही। यह और बतला दीजिये कि लड़ाई के लिये कहना पड़ेगा या नही?'

'बिलकुल नही।' अजित ने कहा।

पैलू बोला—'लड़ाई के लिये कोई तैयार भी न होगा। तब क्या कहूँगा उन लोगों से?'

'जब मेरा रुख देखें, सिर्फ हल्ला करने के लिये तैयार रहें', अजित ने कहा।

पैलू बोला—'मैं जाता हूँ। देखूं, तैयार होते है या नहीं। यदि उनके मन में उत्साह देखूंगा, तब तो चर्चा छेड़ूँगा, नहीं तो कुछ न कहूंगा। काहे को अपनी जबान डालूं? यदि कोई न मिला, तो मैं अकेला प्राण लेने और देने को तैयार हूं।'

अजित थोड़ी देर कुछ सोचता रहा। सोचकर पैलू से पूछा—'यहाँ देवी का मन्दिर कहाँ है?'

'वही तो है, जहा बुद्धा को देवता ने झाम बतलाई थी। तालाब के किनारे है।'

'अच्छा, तो मैं तब तक वही जाता हूँ। किसी से मेरे वहां जाने के विषय में चर्चा मत करना। मैं थोड़ी देर में लौट आऊँगा।'

'वहां मत जाइये।' पैलू ने कहा।

'वहाँ मत जाइये।' बुद्धा ने भी कहा

'मैं वहां अवश्य जाऊँगा।' अजित बोला—'वैसे तुम्हारे भय का भूत मन से जायगा ही नहीं।'

'तब मैं आपके साथ चलूँगा।' पैलू बोला।

अजित ने कहा—'नही, मैं अकेला ही जाऊँगा। तुम्हें जो काम सौंपा है, उसे करो।'

पैंलू हठ न कर सका। अजित निहत्था था। पैंलू ने उससे लाठी साथ ले जाने को कहा। अजित ने इनकार कर दिया पैंलू अपनी लाठी लिये एक ओर चला गया, और अजितकुमार दूसरी ओर निहत्था। किसी ने देखा नहीं।

[६३]

चौराहे पर से लौटकर ललितकुमार धीरे-धीरे घर चला गया। पैर-गाड़ी हाथ ही में लिए था। बहुत से लोग मामले की बातें व्याख्या के साथ सुनने के इच्छुक थे, परन्तु निरन्तर नीचे मुख किए जाने वाले ललितसेन से बात करने की हिम्मत न पड़ी।

घर पहुंचकर ललित भरभरा कर एक चारपाई पर जा लेटा। देर तक वह इसी तरह अकेला पड़ा रहा।

संध्या से जरा पहले रतन उसके पास आई। इस तरह से पड़ा हुआ देखकर बोली—भैया, ऐसे क्यों पड़े हो ?'

कई बार पूछने पर भी ललित ने उत्तर नहीं दिया।

रतन ने और पास आकर पूछा—'भैया, बोलते क्यों नहीं हो ? क्या बात है ?'

ललित ने कहा—'मैं न जाने अब क्या देखने के लिए जीवित हूं ?'

'आप सदा इसी तरह की बातें किया करते हैं, न जाने क्या हो गया है ?'

'रतन, तेरा भाई यदि कोई और अधिक बुद्धिमान मनुष्य होता, तो अच्छा होता। मूर्ख ही होता, परन्तु उसके आंखे तो होती।'

'खाने का समय हो गया है। उठिये, हाथ-मुंह धोकर भोजन कीजिए। आपने उस दिन कहा था कि भाई-बहिन नित्य साथ बैठकर खाया करेंगे।'

ललित उठ बैठा। बोला—'तुम्हे कुछ मालूम है बेटी ?'

'चलिये, संध्या हो रही है। हाथ-मुंह धोइये।'

'न बताओगी ? न बताओगी, मैं जानता हूँ। तुम्ही यदि कुछ रौद्र प्रकृति की होती, तो आज यह नौबत क्यों आती ? तुम लोगों की

आदर्श पूजा ने ही बहुत से पुरुषों को नरक का कीड़ा बना रक्खा है। मालूम है, आज क्या होने जा रहा है?'

रतन चुपचाप खड़ी रही।

'हाँ! सब मालूम है। पहले से जानती हो। और, मुझे आज तक नही बतलाया। इस आग को चुपचाप अकेले ही कलेजे के भीतर धधकने दिया! मालूम है, क्या परिणाम होगा?'

रतन ने कुछ कहने के लिये सिर उठाया। उस स्थान पर कुछ अँधेरा था, और ललित की आँखें धुँधली-सी हो रही थीं, इसलिये उसने देख नही पाया। वह ऐसी भासित हो रही थी, जैसी झाड़-झंकाड़ से ढकी हुई देवी की खंडित प्रतिमा।

'परन्तु जिसे मैंने अपमानित किया था, और जिसे कुचलने के षड्यन्त्र मे मेरा हाथ इस समय भी है, वही मेरी सहायता करने गया हुआ है। मैं कैसा मूढ हूँ! सोचकर कलेजा जलकर राख हुआ जाता है!' ललित ने कहा।

क्षीण स्वर मे रतन ने कहा—'किसे?'

'किसी को नही।' ललित ने कहा—'कैसा दाह हो रहा है! तबियत चाहती है कि गोली दूँ!' रतन काँप गई।

कोमल कातर स्वर में बोली—'किसे?'

'उसी को, उस राक्षस को, जिसने मेरी माँ की बेटी की यह दुर्गति की, जिसने मेरे माँ-बाप की महिमा को पैर तले रौंदा।' ललित ने रुँधे हुये गले से कहा।

'यह आप कुछ न कहें।' रतन ने अकंपित स्थिर स्वर में कहा—'आपके माँ-बाप की महिमा को कोई पैर तले नही रौंद सकता। आपकी कीर्ति कभी मिट्टी में न मिलेगी। हमें केवल अपने गौरव की रक्षा का अधिकार है। वही हमारा धर्म है। वही हमारा सत्त्व है। उससे कम और उससे अधिक हमारा कुछ नही। आपके मुंह से ऐसी कड़वी बातें शोभा नहीं देतीं। चलिये, उठिये।'

ललित को एक क्षण के लिये ऐसा जान पड़ा, मानो वह अंधेरा स्थान किसी अप्रत्यक्ष, किसी अलौकिक आभा से आलोकित हो उठा हो। बैठ गया।

एक क्षण के लिये स्तम्भित हो गया। परन्तु इस तरह से प्रभावित होना उसके स्वाभाव में बहुत न था।

बोला—'रतन, तू देवी है। हम लोग मनुष्य हैं। देवी का अपमान मुझसे न देखा जायगा, मैं सिगरावन जाता हूं।'

'आप न जा सकेंगे, मेरी सौगन्ध है।'

'तेरी सौगन्ध, मैं अवश्य जाऊँगा। पहले ही बहुत विलम्ब हो चुका है।'

ललित उठ खड़ा हुआ, और जाने के लिये तैयार। रतन ने कहा—'तो आप मेरे साथ भोजन न करेंगे ?'

सोचकर ललित ने कहा—'करूँगा, पर बहुत थोड़ा और बहुत जल्दी।'

भोजन करने के उपरान्त जब ललित बाहर जाने को तैयार हुआ, तब रतन ने फिर रोका। उसकी कल्पना थी कि भोजन में कुछ समय लगने से भाई का ख्याल बदल जायगा, परन्तु ऐसा न हुआ।

ललित ने जाने के लिये तैयार होते हुये कहा—'मैंने जाने का निश्चय कर लिया है।'

'तब एक बात सुने जाइये। आप नहीं मानते हैं, तो सुनिये।'

'क्या है ?' ललित ने कोमल स्वर मे पूछा।

'मै भी अपने बाप की बेटी और अपने भाई की बहिन हूँ, यह आप जानते है ?'

ललित ने विस्मय की दृष्टि से रतन की ओर देखा।

'यदि किसी की जान पर आ बनी, तो आप मुझे मरा हुआ पावेगे। इसमे किसी तरह का सन्देह न करना।'

वह क्षीण, दुर्बल स्त्री देवी की विशाल मूर्ति की तरह ललित को जान पड़ी।

कुछ क्षण तक ललित स्तब्ध खड़ा रहा। जाते समय बोला—'मैं तुम्हारी सौगन्ध खाता हूँ, सिवा निषेध के और कुछ न करूँगा। अपने जीते-जी तुम्हें मरा हुआ देखने का मौका कभी न आयेगा।' अँधेरा हो चला था, और सिंगरावन का मार्ग पैर-गाड़ी के लिये उपयुक्त न था, इसलिये ललित हाथ में लकड़ी लेकर अकेला ही चल दिया।

[६४]

अनुमान से मार्ग खोजते-खोजते अजितकुमार तालाब के पास पहुंच गया, और कुछ कठिनाई के बाद उसने मन्दिर भी ढूँढ़ लिया। वहाँ बिलकुल अन्धकार था।

बिलकुल पास तालाब था। बाँध के किनारे टहलने लगा।

पश्चिमी क्षितिज के उपर हलकी लाल-पीली रेखा थी। अन्धकार मण्डल बाँधकर प्रवेश कर चुका था। भूमि की समता और विषमता बिलकुल विलीन न हुई थी, परन्तु पेड़ों के बड़े-बड़े समूह और टौरियों को छोड़कर धरातल एक फैली हुई दूर्वास्थली-सदृश भान होता था। नक्षत्र चमक रहे थे, अपने क्षीण प्रकाश से तमोराशि का छेद-भेद करने में विफल-प्रयत्न हो रहे थे। तालाब की लम्बी चादर के सिरे तिमिर-मण्डल मे बिलकुल लुप्त नही हो पाये थे, परन्तु उसकी सीमायें अँधेरे की कोर में दब गई थीं। पैरों से थोड़ी ही दूर तक का कुछ कुछ दिखलाई पड़ता था, परन्तु और आगे की वस्तुओं पर तो निशा बरस-सी रही थी। उस एकान्त में यह स्थान शांत और विश्राममय जान पड़ता था। पीपल के पत्तों की रह रहकर होने वाली खरखराहट सुनसान अँधेरे को कभी-कभी आंदोलित कर देती थी। दूर पर स्यारों के फेकरने का शब्द उस सन्नाटे को और भी गंभीर बना रहा था। एक ओर चकरई की टौरिया, दूसरी ओर सिंगरावन की पहाड़ी का वक्राकार सिलसिला और जल-राशि तथा झाड़ी की स्पष्ट सीमाओं ने उस स्थान को एक बड़े

आंगन का रूप दे रक्खा था। उस निश्चेष्ट निश्शब्दप्राय, आलोक-रहित स्थान में अजित को केवल अपने पैरों की आहट सुनाई पड़ रही थी। गांव मे जो कुछ थोड़ी सी चहल-पहल थी, वह इतनी प्रबल न थी कि यहाँ पर स्पष्ट सुनाई पड़ती।

'ललित को साथ लेता आता, तो कुछ हानि न होती।' अजित ने मन में कहा—'गांववाले नाहक का झगड़ा मोल लेने को शायद ही तैयार हों। इतना अवश्य है कि कहने-सुनने से उनका हृदय भलाई की तरफ हो जायगा, और अवसर पड़ने पर वे लोग बुराई का साथ न देंगे। परन्तु इस समय और अधिक क्या किया जाय इसका निर्णय कठिन हो रहा है। ललित आ जाता, तो निश्चय ही भुजबल को अपना हठ पूरा करने का साहस न होता, परन्तु मैल की गांठ भी इतनी कड़ी बँध जाती कि बेचारी रतन का कष्ट अनंत हो जाता। यदि योजना सफल हो गई, तो भी ललित का उद्धत स्वभाव एक-न-एक दिन भुजबल को अपनी करतूत की याद दिलावेगा, और जिसका भय है वह होकर ही रहेगा। तो भी बहुत सी कटुता बच जायगी। कटुता भले ही बच जाय, परन्तु और अगणित कठिनाइयों का सामना अवश्य ही करना पड़ेगा। उस अनाथिनी का बचाव कठिन मालूम पड़ता है। अब जो हो, एक बार प्राणप्रण से चेष्टा तो अवश्य करूँगा। यदि असफल भी हुआ, तो यथाशक्ति अपनी मूर्खता को असफलता का कारण न बनने दूंगा।'

टहलते-टहलते जब अजित को कुछ विलम्ब हो गया, और कही किसी ओर से किसी के आने की आहट न सुनाई पड़ी, तब अपने आप कहा—'उसने मन्दिर की ओर जाने के लिये पौर मे कहा था, यदि आ जाती, तो रक्षा का कार्य सरल हो जाता।'

थककर बांध पर बैठ गया, और धीरे-धीरे हिलने वाली जलराशि की ओर देखने लगा। मऊ-सहानिया की फांटा पहाड़ी वाली झील इससे कही अधिक स्पष्ट थी, कही अधिक स्मृति को चंचल करने वाली। 'मेरे लिये कोई स्थान नही।' फिर एक धीमी आह मुँह से निकली।

सोचा—'उस दिन भाव कैसा गम्भीर था ! और कितना क्लांत । कली खिलने के पहले ही मुर्झा गई ! पेड़ में लगी-लगी भले ही समाप्त हो जाय, परन्तु उनके अभिमान की नोक सीधी ही रहेगी। भुजबल का यदि विवाह रुक जाय, तो एक दिन उसे अपनी अतीत लोलुपता पर पछताकर विवश सीधी राह पर आना पड़ेगा। और, यदि विवाह न रुक सका, तब न-मालूम कितनों के लिये प्रलय-सी मच जायगी।'

और उसने अचानक पीछे मुड़कर मन्दिर की ओर देखा। एक क्षण के लिये मन्दिर मे प्रकाश दिखलाई दिया, और फिर तुरन्त लोप हो गया। झप-सी लग गई।

[६५]

वैसे अजित के मानसिक संगठन मे भय के लिये स्थान न था, परन्तु देवी के मन्दिर में प्रकाश के आकस्मिक आविर्भाव और उसके तत्काल लुप्त हो जाने पर शंकित हो गया। तरह-तरह की धारणाये उठने लगी। कदाचित् वह लड़की ही हो, परन्तु आने की कोई आहट नहीं सुनाई पड़ी थी, मार्ग पास से ही गया था। आई होती, तो सुनाई पड़ता। फिर मन्दिर में प्रकाश किसने किया ? सहवर्गियों ने ? अजित ने मन में स्थिर किया—'दैवी घटना तो यह है नहीं, और कदाचित् हो, तो भय की कोई बात नही। मानवीय घटना हो, और कोई और ही मन्दिर में आया हो, तो मुझे यहा इस तरह अकेला पाकर न- मालूम क्या सन्देह करेगा।' बाध पर खड़ा होकर, टकटकी लगाकर मन्दिर की ओर देखता रहा, परन्तु न तो कोई शब्द सुनाई पड़ा, और न फिर प्रकाश ही दिखलाई पड़ा।

अजित ने चुपचाप मन्दिर के निरीक्षण करने का निश्चय किया। एक पेड़ से दूसरे पेड़ की छाया में होता हुआ पीपल की छाया में पहुँच गया, जैसे अँधेरे के भीतर अँधेरा घूम रहा हो। बहुत धीरे-धीरे मार्ग टटोलता हुआ मन्दिर के द्वार पर पहुँच गया। छोटा-सा मन्दिर था। एक ही द्वार। खुला हुआ-बिना किवाड़ों का। पास पहुंचकर मन्दिर

की दीवारें और बीच में दरवाजा दिखलाई पड़ा। वहाँ पहुंचते ही जले हुये घी की महक आई, और भीतर किसी के साँस लेने का शब्द सुनाई सुन पड़ा। अजित सिमटकर दीवार के सहारे दरवाजे के निकट खड़ा हो गया। कुछ ही देर खड़ा रहा होगा कि ऐसा जान पड़ा, मानो कोई सिसक रहा हो।

'माँ !' अजित ने किसी को रुँधे हुये गले से कहते हुये सुना—'माँ, अनाथों का इस संसार में कोई नही है। न सही, परन्तु उस संसार में तो है। वहाँ भी कोई न हो, तो अब और किस कामना के लिये जिऊँ?'

फिर अजित को शब्द रुँधा हुआ कम और अकंपित, स्पष्ट अधिक सुनाई पड़ा—'यदि मैं अपने निश्चय को कल ही पूरा कर लेती, तो एक दिन-रात की इतनी व्यथा से बच जाती। तुम्हारे राज्य में शिलाओं की कमी है, तो पेड़ों की डालियों की तो कमी नही है। सबेरे लोग तमाशा देखेंगे! देखे, मुझे थोड़े ही देखेंगे। मिट्टी को भले ही देखते रहें। फिर वह राक्षस अपनी इस करतूत पर भी जी भरकर सुखी हो ले।'

थोड़ी देर बाद अजित ने और सुना—'तुम कायर हो। आये, और कुछ भी न कर सके। परन्तु जब भगवान् ही रूठे है, तब किसी को क्या कहूं।' फिर स्वर जरा तीव्र हुआ—'हाय! मैंने चिट्ठी लिखकर बहुत बुरा किया। व्यर्थ अपनी लाज गँवाई।'

फिर अजित ने कोई बात नहीं सुनी। किसी के हिलने-डुलने का शब्द सुना। एक क्षण में कोई बाहर आया। मन्दिर-स्थित मूर्ति की ओर सम्मुख होकर फिर उसने कहा—'माँ, मैं जाती हूं। मेरे किये-न-किये पाप क्षमा हों। यदि। हृदय में तुम्हारी, अपने देव के सिवा किसी और की मूर्ति हो, तो तुम साखी हो।'

अजित ने उस अंधकार में भी समझ लिया कि कोई स्त्री है। धीरे-धीरे, परन्तु दृढ़ता के साथ पैर रखते हुये वह स्त्री मन्दिर से नीचे

उतरी। अजित थोड़ी देर के लिये किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया। शायद कोई और स्त्री हो—पूना न हो! क्या करूँ?

परन्तु क्षण-क्षण- मे वह स्त्री अन्धकार में विलीन होती जा रही थी। एक ही दो क्षण बाद कदाचित् सम्पूर्ण लौकिक प्रयत्न व्यर्थ हो जायें, यह सोचकर अजित ने धीरे से साहस के साथ कहा—'पूना!'

तुरन्त उस स्त्री ने जरा-सा चीत्कार किया, परन्तु तुरन्त ही सँभलकर बोली—'दूर-दूर, दुष्ट अब पास मत आना, दुर्गा मेरी सहायक हैं। तेरी इच्छा पूरी न हो सकेगी। खबरदार, पास मत आना।'

'मैं अजितकुमार हूं।' अजित ने बेधड़क कहा—'घबराओ मत, शत्रु नही हूं। दुर्गा ने ही तुम्हारी सहायता के लिये मुझे यहां भेजा है।'

'ओह! दुर्गा! मां—कौन?'

'मैं आया।' और तुरन्त अजित अँधेरे को चीरता हुआ उस स्त्री के आकार की ओर लपका।

बोला—'डरो मत। मैं अजित हूं। पहचान लो।' परन्तु उसे कोई उत्तर नही मिला। वह स्त्री अचेत होकर अजित की बाँहो में गिर पड़ी। अजित ने सँभाल लिया, और उठाकर पानी के पास ले गया।

जल के छींटे देने और कुछ समय तक अपनी धोती के छोर से हवा करने के कारण उस स्त्री को चेत आ गया। वह पूना थी।

अजित उसे अपना सहारा दिये था। पानी के किनारे तारों के प्रकाश के निविड़ अन्धकार में भी और स्थान की अपेक्षा अच्छा दिखलाई पड़ता है अजित ने कहा—'देखो, मैं और कोई नहीं हूँ। अजितकुमार हू।' फिर हँसने की चेष्टा करके बोला, 'वही, जिसने मऊ, सहानिया मे हारमोनियम बजाकर रासधारी की पदवी पाई थी। याद है पूना! लो, अब डरो मत। देखो, मै भुजबल नहीं हूं।'

'मुझे नीचे उतार दो। पूना ने कांपते हुये कहा!'

'गिर पड़ोगी अभी नहीं। पहले बिलकुल स्वस्थ हो जाओ।' अजित बोला।

'मैं बिलकुल स्वस्थ हूं।' पूना बोली, और गोद से उतरने की चेष्टा करने लगी। अजित ने छोड़ दिया। वह पास ही बैठ गई। बैठकर रोने लगी। देर तक रोती रही।

अजित ने कहा—'रोओ मत पूना, रोने का समय गया। तुम अब स्वतन्त्र हो। देखो, रोओगी, तो शोर सुनकर कहीं भुजबल पता लगाता हुआ इसी तरफ आ पहुंचेगा।'

पूना ने रोना बन्द कर दिया। अजित के पास सिमट आई। बोली—'मुझे अब कोई डर नहीं है। मां ने मेरा रक्षक पहुंचा दिया है।' फिर एक क्षण बाद बोली—'माँ के देहान्त के समय पास खड़े थे, कुछ सुना था, याद है ?'

'याद है।' अजित ने उत्तर दिया—'मुझे उन्होने पहचान लिया था।'

'न।' पूना बोली—'वह देख कुछ नहीं रही थीं, देख सकती भी न थीं। उनके मन में जो कुछ था, सो उन्होने कहा था।'

'मुझे उन्होंने देखा नहीं था ? क्या उस समय उनके देखने की शक्ति जाती रही थी ?' अजित ने कुछ स्मरण करके पूछा।

पूना ने उत्तर दिया—'कई घण्टे पहले उनकी आंखों की शक्ति जाती रही थी, परन्तु सोचने-समझने की शक्ति उनमें बहुत देर तक बनी रही थी।'

अजित चुप हो गया। देर तक चुप रहा।

'मैं अब कहाँ जाऊँगी ?' पूना ने धीरे से प्रश्न किया।

'यही मैं भी सोच रहा था।' अजित ने कहा।

'सोच रहे थे !' पूना ने सांस भरकर कहा।

अजित बोला—'तुम कहाँ जाना चाहती हो पूना ?'

'कहाँ बतलाऊँ ?' वह बोली—'संसार में कौन बैठा है ? इस जल-राशि मे ढकेल दो।'

'मैं !' अजित ने आश्चर्य के साथ कहा—'मैं इसके लिये थोड़े ही यहाँ आया था, पूना !'

'तब काहे के लिये आये थे ?' उस लड़की ने कहा—'मुझसे पूछते हो कि मैं कहां जाऊँ ?'

अजित की समझ में जो बात शंका के रूप मे बहुत पहले से उपस्थित थी, अब वह विश्वास के रूप में परिवर्तित हो गई।

बोला—'पूना, तुम्हें यह मालूम है कि तुमने इस विवाह की अपेक्षा आत्मघात क्यों पसन्द किया?'

'तुम्ही उत्तर दे लो।' उसने कहा।

'मै ही बतलाता हूं।' अजित बोला—'भुजबल विवाहित है, इसलिये तुम्हे इतनी भीषण अरुचि हुई।'

'और!' पूना ने कहा—'कहो न।'

'मैं विवाहित नही हूं।' अजित बोला—'पर हृदय का बल खो चुका हूँ।'

'मुझे यह सब सुनने की और जानने की कोई आवश्यकता नहीं है।' पूना ने कहा, 'यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते हो, तो यह जलराशि तो मुझसे मुंह मोड़ेगी नहीं।'

इतने में गाँव मे शोर सुनाई दिया, और कुछ अधिक प्रकाश दिखलाई दिया।

अजित ने कहा—'तुम्हे मेरा यह इतिहास असह्य तो नहीं है ?'

पूना ने उत्तर दिया—'मैं यह सब कुछ नहीं समझती, कुछ नहीं जानती।'

फिर दोनों थोड़े समय तक चुप रहे।

अजित ने कहा—'पूना तुमने कभी सोचा था कि तुम और रासधारी कभी इस तरह से बातचीत करेंगे ?'

पूना ने सिर नीचा कर लिया।

एक क्षण बाद बोली—'क्या कहा ?' इतने में गाँव के एक खुले हुये सिरे पर कुछ लोग मशाल लिये इधर-उधर दौड़ते हुये जान पड़े।

पूना ने कहा—'मुझी को ढूंढ़ रहे हैं। मुझे इसी तालाब की तली में सरक जाने दो। मेरे लिये अब और कष्ट न करो।' और वह हिली।

अजित ने तुरन्त हाथ पकड़कर कहा—'तुम्हारी सदृश्य देवी जिस भाग्यवान् के पास हो, उसे कभी कष्ट हो नहीं सकता, परन्तु ऐसा न हो कि पीछे पछताओ।'

पूना ने जरा तेजी के साथ कहा—'बार-बार मुझसे मत कहो। मुझे तो अब यहीं समाप्त हो जाने दो।'

'नहीं, कभी नहीं।' अजित ने कहा।

मशाल का प्रकाश उसी दिशा में आता दिखलाई दिया।

अजित बोला—'यहां से किसी और सुरक्षित स्थान पर चलो।'

पूना जरा अधीर हो उठी, परन्तु प्रयत्न करके स्थिरता के साथ बोली—'मेरे लिए इससे बढ़कर सुरक्षित स्थान और कोई नहीं है। वरुणदेव मेरी भली भांति रक्षा करेंगे।'

'माँ का आदेश भूल गईं?' अजित ने मन्दिर की ओर बढ़ते हुये प्रकाश को देखकर आतुरता के साथ कहा।

'मैं?' पूना ने आश्चर्य के साथ पूछा।

'मैं तो माँ के आदेश को मानता हूँ।' अजित ने कहा, और हाथ पकड़कर पूना को उठाने लगा।

'मैं इस तरह नहीं मानती।'

पूना ऊपर की ओर दृष्टि करके बोली—'प्रतिज्ञा करो कि कभी शरण से दूर न करोगे?'

'प्रतिज्ञा करता हूं।' अजित ने धीरे से, परन्तु उतावली के साथ कहा, फिर अजित और पूना चकरई पहाड़ी की ओर जल्दी-जल्दी चले गये।

[६६]

जिस समय अजितकुमार सिंगरावन में आ गया था, पूना उसी समय से मन्दिर जाने के लिये उत्कंठित हो रही थी। अपनी इच्छा

उसने प्रकट की, तो रोक दी गई। परन्तु अंत में अकेली निकल आई। कोई स्त्री प्रेतों के डर के मारे उसके साथ जाने को तैयार न होती—उसने किसी को साथ चलने के लिए कहा भी नहीं। आंख बचाकर निकल आई।

उसे घर से गये हुये विलंब हो गया था। टीके की तैयारी हो रही थी, और भुजबल ने ऐसा प्रबन्ध किया था कि टीके के बाद दूसरी रीति-रस्में बहुत थोड़े समय में निपटाकर १०—११ बजे रात को भांवर पड़ जायें। पहले तो पूना को लोगों ने घर पर ढूंढ़ा, फिर आस-पास के घरों पर पूछने के लिये गये। बुद्धा के घर में जाकर तलाश किया।

बुद्धा ने कहा—'यहां तो वह सबेरे हाल पूछने आई थी, फिर नहीं आई।'

खोज करने वालों को मन्दिर की बात याद आई, तब उनके पैर फूल गये।

भुजबल निडर था, परन्तु दूल्हा होने के कारण खुद न गया। लालसिंह से कहा। लालसिंह डरपोक था, परन्तु पूना पर उसकी ममता थी, इसलिये मशाल जलवाकर पहले तो इधर-उधर भटका, इसके बाद मन्दिर गया। वहां घी का दिया बुझा हुआ पड़ा था, पर उसमें घी बाकी था—जान पड़ता था कि समझ-बूझकर बुझा दिया गया है। पूना कहां गई? क्या कोई देवता उसे उठा ले गया?

इस तरह की शंका होने पर एक किसान ने कहा—'लड़की की इच्छा भुजबल के साथ ब्याह करने की नहीं है।'

'कैसे मालूम हुआ?' लालसिंह ने उससे पूछा।

'बात ठीक है।' वह बोला—'पैलू ने कहा है, और लोगों ने भी कहा है।'

तब लालसिंह को डर लगा कि ऐसी हालत में कहीं तालाब में न डूब गई हो! इस शंका के उठते ही वह बेचारा भय और ग्लानि के मारे

काँपने लगा। तालाब के पास जाकर भी ढूढ़ा, परन्तु वहाँ भी कोई पता न लगा।

तब सब लोग फिर घर को लौट गये। लालसिंह की दशा बड़ी दयनीय हो रही थी। भुजबल भी चिंता में था, क्रोध में और क्षोभ में। ऐसी अवस्था में उसे अजित का ध्यान आया। वह अपनी प्रस्तुत वेदना का कारण तर्क या कुतर्क से अजित को ही स्थिर कर रहा था। शायद उसी ने बरगलाया हो। इस धारणा के होते हा उसने अजित की खोज करवाई। बुद्धा से पूछा।

उसने उत्तर दिया—'वह तो छावनी चले गये।'

'पैलू कहाँ गया?' प्रश्न किया गया।

'मुझे नही मालूम।' बुद्धा ने उत्तर दिया।

भुजबल का जी चाहा कि बुद्धा को टुकडों-टुकडों में कतर डालूँ, क्योंकि उसी की मारपीट के कारण अजित को सिगरावन में आने का अवसर मिला था। न इस बदमाश को ठोकता, और न अजित कभी सिगरावन आता!

इस गड़बड़ को मानो खूब बढाने के लिये लालसिंह के दरवाजे पर बहुत खासी भीड़ जमा हो गई। औरतें, बच्चे, मर्द—सभी मनमानी बक-झक रहे थे।

पैलू को इसी भीड में देखकर, भुजबल ने नीम के पास, चबूतरे पर खड़े होकर, डपटकर कहा—'क्यों बे, तू कहाँ था?'

'यहीं तो।' पैलू ने स्वर को नम्र बनाने की चेष्टा करते हुये कहा।

भुजबल इस समय केसरिया बागा, जो पैर की एड़ी तक लटक-लटक कर लहरा रहा था, पहिने था, और सिर पर पड़गी में जकड़ा हुआ मोर-मुकुट बाँधे था—टीके की रस्म की पूरी तैयारी थी।

बागे की आस्तीन से ढकी हुई मुट्ठी को हवा में तानकर भुजबल ने कड़ाके के साथ कहा—'जिन लोगों ने लड़की को छिपाया है, उन पर कल मुकद्दमा चलेगा, और सबको कालापानी होगा।'

एक किसान बोला—'काऊ खां बिटिया के छिपावे की का अटक परी ?'

'अबे, सब बात भूल जायगा, कल जब पुलिस का जूता बरसेगा। पैलू देखो, कल तुम्हारी क्या गति होती है।'

दूसरा किसान बोला—'काए, पैलू भैया ने का करो ? ऊ तो हम सब जनन नौ बैठो तो। काए खाँ बिरथां प्रान साँसें डारत ?'

पैलू बोला—'ए तो तुम खाँ जो दिखायै, सो कर लेओ। फांसी दुआ दयौ।'

'साले, हरामजादे।' भुजबल ने अपनी आवाज की दून में कहा—'तेरी बोटी-बोटी कुत्तों से न नुचवाई, तो मेरा नाम भुजबल नहीं।'

लालसिंह रोकर बोला—'मैं यह नहीं जानता था। हाय, उस फूल-सी लड़की को अपने प्राण गंवाने पड़े ! हत्यारे तालाब ने बेचारी को ग्रस लिया।'

भुजबल ने निष्ठुरता के साथ कहा—'चुप रहो, तुम अपना रोना-धोना किसी और समय के लिये रख छोड़ो। वह कदापि नहीं मरी है। छावनी से जो वह गुण्डा आया था, उसी ने इस पैलुआ की शरारत से लड़की को कहीं छिपा दिया है।'

एक क्षण बाद जरा नम्र स्वर में बोला—'औसान मत बिगाड़ो। ढूंढ़ो, नहीं तो भाँवरों की सायत निकल जायगी।'

'जरूर-जरूर। देखिये सायत न निकलने पावे।' किसी ने भीड़ के पीछे से कहा—'वाह, क्या छवि है ! क्या हुलिया है !!'

सबने उस ओर देखा। भुजबल की दृष्टि भी उस ओर गई। कानों ने जिस बात का विश्वास न किया था, आंखों ने उसी को ठीक तौर पर देख लिया।

'छावनी का एक गुण्डा और हाजिर है।' ललितसेन ने भीड़ में से निकलकर कहा—'मुझे भी आज्ञा हो, किसकी खोज करनी है ?'

भुजबल के होठ से होठ मिल गए, और गाल दांतों से चिपट आये, भौहे सिकुड़ गईं, जैसे शिकारियों से घिर जाने पर जंगली जानवर बचाव का मार्ग न देखकर आक्रमण की योजना करता है, उसी तरह सीने पर हाथ बांधकर, गर्दन अकड़ाकर भुजबल चुपचाप खड़ा हो गया।

ललित ने व्यग्य का प्रणाम करके कहा—'अरे, यह तो आप हैं। नही, नहीं, मैंने पहिचानने में गलती की है। यह लम्बा बागा! यह पगड़ी! यह मुकुट! क्या आज यहाँ कोई स्वांग भरने के लिए पधारे हैं? कोई नाटक कीजिएगा? अरे, आप तो कुछ बोलते ही नही हैं!'

ललितसेन लालसिंह के घर न्योते में कुछ महीने पहले ही आया था। बड़ा आदमी समझा जाने के कारण सिगरावन के लोग उसे खूब अच्छी तरह बार-बार झांक-झांककर देख चुके थे। पहिचानते थे। बहुतेरों को उसका और भुजबल का परस्पर सम्बन्ध भी ज्ञात था।

जिन किसानों के हृदय मे पूना के साथ होने वाले इस विवाह के सम्बन्ध में प्रतिवाद और विरोध की भावना उत्पन्न हो गई थी, और जो उसको सक्रिय रूप में प्रकट करने के लिए हीन-क्षीण और असमर्थ दिखाई पड़ते थे, उन्हें मानों एक बडा सहारा मिल गया।

पैलू बोला—'अब इनसे नई कात बनत आय कछू। हम खा मुरायें डारत ते!'

एक किसान बोला—'ऐसो नई होत आय संसार में। जबरदस्ती बिआऊ मचायें फिरत।'

लालसिंह ने रोकर कहा—'मैं नही जानता था।'

'क्या नही जानते थे!' ललित ने पूछा। 'बोलिए, कहिए।'

भुजबल ने कुछ कहने के लिए मुंह खोलना चाहा, पर सफल न हुआ। लालसिंह ने सिसककर कहा—'मैं नही जानता था कि लड़की राजी नहीं है।'

'ओ हो ! यही तो इस नाटक की सुन्दरता है ।' ललित ने पूर्ववत् व्यंग्य के साथ कहा—'वाह, क्या बात है दूल्हा महाराज, जमीदारी, रुपया, ब्याह, सब एक ही हथकण्डे मे ।'

भुजबल की आँखें फिरीं, कंधे हिले और वह धड़ाम से नीम से टकरा कर जमीन पर जा पड़ा ।

ललित ने वैसे ही खड़े रहकर व्यंग्य के साथ कहा—'यह दूसरा अभिनय है । देखिये, कैसा बढ़िया नाटक है ! बारात, टीका, कन्या-लोप और भाँवर के समय शयन ! कोई पास मत जाओ । दूल्हा के शरीर में हाथ मत लगाओ ।' परन्तु व्यग्य की गति आगे न चल सकी । भुजबल के मुंह से फेन आने लगा । ललित रुक गया ।

पैलू ने कहा—'अब रान दो भैया साब ।'

ललित ने धीमे स्वर में, परन्तु बिलकुल फटे हुये गले से कहा—'लालसिह, यदि तुम्हारे दिमाग मे कुछ अकल अब भी बच रही हो, तो इसे चारपाई पर लिटा दो । पानी के छीटे दो, और हवा करो ।'

ललित के तीव्र वाक्य से लालसिह सजग हो गया, और देहाती मदद के लिये चबूतरे पर चढ़ आये । भीतर ले जाकर चारपाई पर लिटा दिया, और चेत में लाने के उपचार करने लगे ।

ललितसेन बाहर ही रहा । पैलू को पास बुलाकर उसने कहा—'तुम उतने बोदे नही हो, जितना दोपहर के समय तुम्हें मैंने समझा था । वह कहाँ है ?' पैलू को बुलाते ही बहुत से गाँव वाले ललित के पास आ खड़े हुये ।

पैलू ने कहा—'यही है, परन्तु ठीक स्थान नहीं बतला सकता ।'

ललित बोला—'वह कहां हैं, ठीक-ठीक नही बतला सकते ?'

'जी नहीं ।' पैलू ने उत्तर दिया ।

'लड़की सुरक्षित है ?'

'मैं यह भी ठीक-ठीक नहीं बतला सकता । मालूम नहीं है ।'

'जाते समय तुम्हें कोई ठौर-ठिकाना बतला गये थे ?'

'मन्दिर की ओर जाने की बात कह गये थे।'

'और लड़की भी मन्दिर की ओर गई थी ?'

'नहीं कह सकता।'

'जाते हुये देखा था या नहीं ?'

'नही।'

ललित ने एक क्षरण ठहरकर कहा—'हूं।'

'लड़की बिलकुल सुरक्षित है। तुम लोग या जो कोई उस पर तालाब में डूब मरने का संदेह करते हो भ्रम में हो।' इसके बाद वह भुजबल के पास गया। पौर में काफी प्रकाश था।

भुजबल अचेत था, और ललितसेन के चेहरे से ऐसा भासित होता था कि एक ही दिन मे बीस बरस और अधिक आयु का हो गया है।

[६७]

जिस समय मशाल लिये हुये लोग मन्दिर की ओर बढ़े थे, अजित पूना के साथ चकरई पहाड़ी की ओर चला गया था। उससे कुछ कदम आगे बढ़ गया। वहाँ छोटी जरियों की घनी झाड़ी थी। बीच में फूस का एक टपरा सूखी लकड़ियों के सहारे, जो लोगों ने बरसात की ऋतु में बनाया होगा, खड़ा था। दोनों उसमे जाकर बैठ गये। उस सघन अंधकारमय टपरे में तारों के क्षीरण प्रकाश के लिये भी स्थान न था।

तरह तरह की मानसिक पीड़ाओं से मथी हुई पूना बिलकुल थक गई थी। सुरक्षित स्थान में संकट से अपने को दूर पाकर उद्धार के हर्ष के उल्लास में अधिक समय तक चंचल न रह सकी। अपने घुटनों पर शिथिल सिर को रखकर निद्रित हो गई। अजित अब तक किसी सोच-विचार में डूबा हुआ था। विचार-सागर में डूबते-उतराते उसे देर में यह सुध आई कि पूना पास में बैठी हुई गठरी-सी बनी पड़ी है।

उसके सिर पर हाथ रक्खा। जब वह न चौंकी, तब धीरे से हिलाया। जाग पड़ी। पूछा—'नींद आ रही है ?'

अर्द्ध-जाग्रत्, अर्द्ध-सुषुप्त पूना ने कहा--'हाँ।' और अजित की गोद की ओर किसी ऐसी प्रेरक शक्ति के वशीभूत होकर बढ़ी, जिसका उसे ध्यान ही न था। अजितकुमार ने तुरन्त उसे गोद में ले लिया, और सिर अपनी छाती पर साध लिया। पूना गहरी नींद में सो गई।

अजित ने सोचा—'रतन एक कष्ट से तो बच गई, परन्तु आगे उसके अदृष्ट में क्या बदा है, सो नहीं कहा जा सकता। भुजबल का कुछ ठीक नहीं कि इतने ही से शांत हो जायेगा या नहीं। मुझसे जहां तक और जब तक बनेगा, उसके कष्ट के निवारण की चेष्टा करूँगा, परन्तु अब मैं उसके लिये शायद ही कुछ कर सकूँ। पूना को भविष्य में कदाचित् मेरी योजना पसन्द न आवे। जो कुछ इसे अच्छा न लगेगा, उसको मैं न कर सकूंगा—कभी किसी अवस्था में भी नहीं। कितनी उदार और कितनी मुक्त है। जब सुचित्त होगी, तब मैं अपने हृदय को उसके सामने खोलकर रख दूंगा।' फिर थोडी देर बाद विचारधारा दूसरी ओर बह उठी। सोचने लगा—'कल पैलू और बुद्धे के लगान का रुपया देने की सबसे पहले चिंता करनी होगी। जो कुछ माल-असबाब है, सब बेच-बाचकर उसको भुजबल के भय से छुड़ाना पड़ेगा।' फिर सोचा-- 'पैलू क्या सोचेगा? लोग क्या कहेंगे? जब देखेंगे कि पूना के साथ अखंड सम्बन्ध स्थापित करने जा रहा हूं। अब कोई कुछ कहे। एक बार अंगीकार किया, तो सदा के लिये किया। भगवान् जानते हैं कि मैंने कभी इस तरह की बात को हृदय में स्थान नहीं दिया। लोग दिल्लगी उडायें, भले उडा ले—परन्तु आज से, इस समय से, पहले मेरे मन ने कभी पूना के विषय में और बात नहीं सोची।' फिर मन में कहा—'यहाँ तक तो पूना की रक्षा हो गई, परन्तु अब बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा।'

इतने में पूना ने स्वप्न में स्पष्ट कहा—'मैं नहीं जाऊँगी, मुझे छोड़ नहीं सकोगे।'

'मत जाना; न छोड़ूगा।' अजित ने उसे कन्धे से लगाये हुये, काँपते स्वर में, आश्वासन दिया।

परन्तु वह सो रही थी। उसने नहीं सुना।

[६८]

लालसिंह उस रात बराबर जागता और रोता रहा। कभी भुजबल की सँभाल, तो कभी पूना की याद उसका कलेजा घोटती रही। अचेत भुजबल की चारपाई के चारों ओर गाँव के लोग बैठे रहे। ललित कुछ देर के लिये सो गया था।

बड़ी सुश्रुषा के उपरान्त चौथे पहर रात में भुजबल को चेत आया। जब आँखे खोलीं सबसे पहले ललित की तलाश की, फिर मूंद ली।

लालसिंह ने ललित को जगाकर विनयपूर्वक कहा—'अब उन्हे चेत आ गया है, उठ बैठिये—'परन्तु अब और कुछ न कहियेगा।'

ललित ने आँगन के दरवाजे से सुसज्जित, किन्तु उजड़े हुये मण्डप और वितान की ओर देखते हुये कहा—'बड़ा अच्छा हुआ, चेत आगया। तुम देखे रहना, मैं अब लड़की की खोज करता हूँ।'

पैलू वहीं पड़ा-पड़ा सो गया था। उसे जगाकर ललित ने अपने साथ लिया, और बाहर निकल आया। बाहर आकर पैलू से बोला—'मैं भीड़ साथ नही ले चलना चाहता हूँ। यदि कोई साथ लगे, तो मना कर देना।'

पैलू ने कहा—'लोग थके-मांदे है, साथ न आयेंगे।'

'तुम नगर और देहात की बोली एक-सी आसानी के साथ बोल लेते हो! कहाँ सीखी थी? क्या अजितकुमार तुम लोगों में बैठकर यही सब किया करते हैं?'

'अजितकुमार ने हम लोगों के प्राण बचाये, और आबरू रख ली।'

'इतने सब आदमी अजित के साथ हो गये! किसान तो बड़े दलिद्दर होते है।'

'किसानों को कोई अंक दे, तो इस गरीबी और लाचारी में भी वे अपने को अपने हितू के लिए होम सकते है।'

ललित के 'प्रबल के अवशेष' के शास्त्रीय मत में यह बात ठिकाने से नही बैठती थी, पर आँखों देखे प्रमाण को अस्वीकृत नहीं कर सकता था। किंतु मन में तर्क-वितर्क करने का समय न था।

बोला—'अजित छावनी तो गये नही होगे, मन्दिर के आसपास किसी स्थान में होगे ? उन्हें तलाश करना चाहिये।'

पैलू ने कहा—'चलिये। मै स्वयं यही सोच रहा था, परन्तु उनकी बीमारी की चिंता मे किसी से कुछ कह न सका था।'

[६६]

चकरई पहाड़ी के निकटवर्ती टपरे में अजित को भी देर तक इधर-उधर की सोचते-सोचते नीद आने-जाने लगी। प्रातःकाल होने के पहले वह चेतन हो गया। सूर्योदय होने के बाद कहाँ जायेगा, पूना को किस स्थान पर आश्रय देगा, इस नवीन परिस्थिति में क्या कार्य-क्रम होगा, इन सब उलझनों में वह चक्कर खाने लगा।

धीरे से पूना को जगाया। काफी सो चुकी थी। जल्दी सतर्क हो गई। अपने को अजित की गोद में पाकर लज्जा से सिमट गई।

बोली—'क्या मैं बड़ी देर से इसी तरह पड़ी हुई थी ?'

'क्या मालूम ?' अजित ने उत्तर दिया—'मैं खुद सो रहा था। अभी-अभी मेरी आँख खुली है।'

'तुम रात-भर जागे हो। सबेरा होने वाला है, अब कहाँ जाओगे ?'

'बस, यहीं इस तरह सदा-सर्वदा बैठे रहेंगे। क्या हानि है ?'

पूना गोद से उठ खड़ी हुई।

'कहां जा रही हो ?'

'जहाँ आज्ञा होगी। मैं क्या बतलाऊँ ?'

'चकरई की पहाड़ी पर प्राचीन काल की एक कोठरी बनी है। वही चलो। तुम्हें वहाँ बिठलाकर मैं पैलू को लेकर अभी आता हूं। उसे लाने पर आगे का निश्चय करूंगा।'

दोनों उस टपरे से बाहर निकल आये। रात के पहले भाग में, जब इस समय से अधिक अंधकार प्रतीत होता था, दोनों ककड़ों और कांटों की कुछ भी परवा न करते हुये बेधड़क चले आये थे, परन्तु अब उसी स्थान को सावधानी के साथ देखते हुये, और मार्ग की कठोरता से बचने की चेष्टा करते हुये चकरई की पहाड़ी पर चढने लगे।

चकरई की पहाड़ी छोटी-सी है, परन्तु मैदान के बीच मे है, और चारों ओर से बहुत ऊबड़-खाबड़ है। एक-एक पत्थर और एक-एक कंकड़ को बारीकी के साथ देखते और फूंक-फूंक कर पैर रखते हुये अजित पूना को चकरई की पहाड़ी पर ले गया।

जब दोनों ऊपर पहुँचे, पूर्व दिशा में प्रभा का रेखा-जाल बुना जाने लगा। पूर्व मे एक बड़ा तारा ऊँचा उठ आया था। उस दिशा में क्षितिज के ठीक नीचे से प्रकाश का एक मार्ग-सा उस तारे तक खिचा हुआ था। और नक्षत्र फीके नही पड़े थे, परन्तु पूर्व क्षितिज उद्वहित तथा शुक्र-तारा तक प्रसरित प्रकाश धारा के प्रभाव में उनकी जगमगाहट पीली पड़ चली थी। एक भी पक्षी का कलरव आरम्भ नहीं हुआ था। उल्लासमय समीर अवश्य एक नूतन आगमन की सूचना देने लगा था। उसी दिशा के एक छोर मे स्थित मऊ-सहानिया की फांटा पहाड़ी की चोटी को हलके कुहरे की पतली चादर अंशतः ढके हुये थी। ऊपर के थोड़े-से भाग को छोड़कर बाकी फांटा पहाड़ी नीली जान पड़ती थी। एक ओर क्षितिज से झरती हुई श्वेत प्रकाश-धारा और दूसरी ओर पर्वत-श्रेणी की नीलिमा। दिव्य शुभ्रता और पवित्र महिमा का संयोग!

अजित ने पूर्व दिशा की ओर लक्ष्य करके कहा—'यह क्या है?'

'मैं क्या जानूं?' पूना ने उस ओर देखकर कहा।

'यह मेरी देवी है।'

'मैं इतनी बातें नहीं जानती।'

'इसको ऊषा कहते है।'

पूना इस तरह से उस प्रकाश-रेखा का अवलोकन करने लगी, जैसे उसमें कोई अक्षर—'ऊषा'—अंकित हो। बोली—'थोड़ी देर में दिवाकर का उदय होगा।'

अजित को अपने कर्तव्य का स्मरण हो आया। बोला—'तुम्हें यहाँ डर लगेगा?'

'नहीं, मुझे अब किसी का डर नहीं है।'

अजित और कोई उपाय न देखकर अकेला चकरई पहाड़ी से नीचे उतरकर तालाब की ओर आया। सोचा—'अब बहुत सावधानी के साथ काम करने की बारी आई है।'

उसी समय किसी ने मन्दिर की ओर से पुकार लगाई—'कहाँ हो?'

अजित कान लगाकर सुनने लगा। कई बार पुकार को ध्यानपूर्वक सुनने के बाद उसे निश्चय हो गया कि पैलू का स्वर है। अजित ने उत्तर दिया—'यहाँ—आया।'

[७०]

थोड़ी देर मे अजित हर्ष, चिन्ता और उद्विग्नता के बीच में झूलता हुआ पैलू के पास पहुंचा। पास ही एक और आकार को देखकर निर्भीक चित्त होने पर भी जरा सकपका गया। एक क्षण के लिये सन्नाटे में आकर चुप हो गया। चाहता था, पैलू पहले चर्चा छेड़े।

ललित ने आगे बढ़कर कहा—'अजित, मैं तुम्हे बधाई देता हूं।'

'बधाई! मैंने तो कर्तव्य-पालन किया, परन्तु आपकी आवाज से जान पड़ता है कि यह रात आपके लिये बहुत बुरी गुजरी है।' अजित बोला। पास जाकर देखा, तो ललित के चेहरे पर हर्ष का कोई चिन्ह न था।

'अन्त भला, सो भला।' ललित ने कहा—'मेरा ख्याल छोड़ दो। मुझे शायद जन्म-भर दुर्घटनाओं से लड़ते ही बीतेगा। लड़की सुरक्षित

है ?' ललित का गला भर्राया हुआ था, और अजित को जान पड़ा, जैसे शब्दों पर किसी वेदना की छाप हो।

अजित ने उत्तर दिया, 'जी हाँ, अर्थात् ऐसी दशा में जितना यत्न रक्षा का किया जा सकता था, किया। आप उसे देखना चाहते हैं ? पास ही है।'

'अभी नहीं।' ललित बोला—'पहले गाँव चलिये।'

अजित ने पैलू से पूछा—'गाँव का क्या हाल है ?'

'सब लोग सचाई के पक्ष में हैं। काम पड़ता, तो सब-के-सब लाठियाँ बरसा डालते।' पैलू उत्साह के साथ बोला।

'छिः छिः !' ललित ने तमककर कहा—'कमजोर किसान जिस लाठी को हाथ मे लिये रहते हैं, उसमें भी कोई जान नही मालूम पड़ती। मैं न आता, तो ये लोग कुछ भी नहीं कर सकते थे।' फिर अपनी ही बात पर लज्जित-सा होकर बोला—'मैने आकर कुछ भी नहीं किया। अजितकुमार को सारा श्रेय है।'

पैलू बोला—'अजित बाबू के लौट आने पर हम लोग मजा दिखला देते। उनका जहाँ पसीना बहता, हम लोग अपना खून बहाते।'

'जो लोग अपनी बात के लिये खून बहाना जानते हैं, वे तुम लोगों की तरह तुच्छ, निर्बल नही होते।' ललित के भर्राये हुये कण्ठ से क्रुद्ध शब्द निकले।

अजित पैलू की तत्परता को अपमानित नही होने देना चाहता था, परन्तु अवसर बहस के लिये उचित न देखकर अजित ने विषयांतर करते हुये कहा—'बिलकुल आकस्मिक घटनाओं के संयोग से आज यह सब हुआ है। आपके आने से हम लोगों को बहुत बल प्राप्त हुआ। पैलू इत्यादि लोगों की सक्रिय सहानुभूति के बिना भी कुछ न हो पाता, परन्तु अब कार्य बड़ा कठिन मालूम होता है।'

पैलू बोला—'अब कठिन क्या है ? भुजबल अचानक बीमार होकर पौर में पड़े हैं। लालसिंह लड़की के लिये हाय-हाय करके रो रहे हैं। सारी गुत्थी सुलझी हुई रक्खी है।'

ललित ने अजित के कन्धे पर हाथ रखकर कंपित स्वर में कहा—'भाई अजित, तुमने मुझे पूर्व-कृत अपमान के लिए क्षमा कर दिया या नहीं—हृदय से उसे धो दिया या नही ?'

'मैंने उसके विषय मे कभी अपने मन को दुखी नही होने दिया।' अजित ने उत्तर दिया—'आपको क्या ज्वर हो आया है ? सारी देह जलती-सी मालूम हो रही हैं।'

'कुछ चिन्ता मत करिये; चलिये। आज बहुत काम करना है।' ललित बोला।

चलते-चलते अजित ने जरा संकोच के साथ मंतव्य प्रकट किया—'लड़की बड़ी कुशाग्र बुद्धि मालूम होती है।' अपनी असंगत और असंबद्ध बात पर अजित लज्जित हुआ।

ललित ने जरा हँसकर कहा—यह हंसी उस रात-दिन में उसे पहली बार ही आई—'कुशाग्र-बुद्धि का परिचय तो उस चिट्ठी से ही लग गया था, जो उसने आपके पास भेजी थी।'

अजित गड़-सा गया। फिर कोई बात नहीं की। एक घड़ी पश्चात् ये तीनों गाँव में पहुंच गये।

पूर्व दिशा में लाल-पीली बारीक चादर से अपना दिव्य मुख-मंडल छिपाये ऊषा का अवतरण हो रहा था। चिड़ियाँ चहकने लगी थीं। भुजबल को बिलकुल चेत हो आया था, परन्तु सिर में बड़े जोर का दर्द था। सबसे पहला काम जो उसने पूरे चेत में आने पर किया, वह दूल्हा के बागे को उतारकर फेक देना था। उठकर कहीं भाग जाना चाहता था, परन्तु शरीर मे इतना बल नहीं था कि उठकर खड़ा हो सके—पड़ा रहा।

पौर में पहुंचकर ललित ने लालसिंह को बुलाया। भुजबल के होश में आने के बाद रोने-धोने की थकावट के मारे वह दीवार के सहारे झपकी ले गया था। ललित के पुकारने पर चौंककर खड़ा हो गया।

ललित ने कहा—'तुम्हारी भांजी मिल गई।'

सुनते ही लालसिंह हर्ष-विह्वल हो गया। फिर रोने लगा, और पूना के लिये कहने लगा—'लक्ष्मी थी! देवी थी!'

इस समाचार को सुनकर भुजबल ने एक बार आँख खोलकर फिर बन्द कर ली।

लालसिंह ने पूछा—'कहाँ है?'

'इतनी उतावली नही।' ललित ने कहा—'थोड़ी देर मे आई जाती है। तुम्हारा मडप फिर आबाद हुआ जाता है।'

भुजबल जरा हिला, परन्तु उसने और अधिक विषय-रुचि का लक्षण प्रकट नहीं किया। अजित पास ही खड़ा था। सन्देह की दृष्टि से ललित की ओर देखने लगा।

ललित ने कहा—'लड़की की मां की विवाह के विषय में क्या इच्छा थी?'

'कोई विशेष इच्छा नही थी।' लालसिंह ने उत्तर दिया।

अजित कुछ कहना चाहता था, परन्तु गले से शब्द न निकला।

ललित ने तुरन्त पूछा—'यह नहीं हो सकता। मरने के पहले कुछ कहा था?'

'पूना का नाम ले रही थी, कुछ और तो याद नही पड़ता। यह मास्टर साहब भी तो अकस्मात् आ गये थे, पास खड़े थे। हाँ, याद आ गई। इनका नाम-मात्र लिया था, पर कुछ कहा नहीं था। इनको पहिचानकर इनका नाम लिया था।' लालसिंह ने उत्तर दिया।

अजित केवल इतना बोला—'हाँ, मुझे उन्होंने याद किया था।'

ललित ने लालसिंह से फिर पूछा—'यदि थोड़ा-सा होश बाकी हो तो याद करो कि लड़की की माँ मरने से कितनी देर पहले अचेत हो गई थी।'

लालसिंह जरा तिनककर बोला—'सो तो वह मरते-मरते तक चेत में थीं।'

'अब तुम्हारी समझ में आया, उनकी क्या इच्छा थी?' ललित ने पूछा—'तुम्हारी समझ में न आया हो, तो मैं बतलाता हूँ।'

विनय के स्वर में लालसिंह ने कहा—'आप ही बतलाइये, जैसा आपने समझा हो, परन्तु यह बिलकुल निस्संदेह है कि नजदीक की रिश्तेदारी में ब्याह किसी तरह नहीं हो सकता, चाहे बहिन की कुछ भी इच्छा क्यों न रही हो।'

ललित ने जोर से हँसकर कहा—'तब तो कुछ गांठ की बुद्धि रखते हो।' फिर शांत होकर गम्भीरता के साथ बोला—'तुम्हरी बहिन की इच्छा उस लड़की को अजितकुमार मास्टर के साथ ब्याहने की थी। मरते समय वह चेत-अचेत दोनो थीं। परन्तु जिस समय उन्होंने वे शब्द मुंह से निकाले थे, तब वह सार्थक बात कर रही थीं।'

लालसिंह ललित के मुंह की ओर देखने लगा। अजित ने सिर नीचा कर लिया।

ललित बोला—'अब और अधिक विलम्ब मत करो। विवाह की सब सामग्री प्रस्तुत है। दूल्हा पौर में खड़ा है। मंडप दूल्हा-दुलहिन का आह्वान कर रहा है। हम और पैलू बराती है, तुम कन्या-दान करो। लड़की को बुलवाओ। इसी समय विवाह होगा।'

लालसिंह ने प्रसन्न होकर कहा—'आपकी आज्ञा सिर-माथे। मास्टर साहब का घर भी लड़की के लिये बहुत अच्छा निकलेगा।' फिर जरा संयत होकर बोला—'लड़की सयानी है। मालूम नही, कहीं यहाँ आकर फिर किसी कुआँ-बावली की तलाश कर उठे!'

ललित बोला—'यह न होगा। मैं सौगन्ध दे सकता हूं। विवाह की तैयारी करो। देर मत करो।'

लालसिंह तैयारी में लग गया। स्त्रियों ने जब यह सब समाचार सुना तब उनके आनन्द का ठिकाना न रहा। भुजबल ने चुपचाप सुन लिया।

पैलू और उसके किसान भाई-बन्द खुशी के मारे नाच उठे।

ललित बोला—'आप मास्टर साहब—मैं अब आपको उसी पुराने नाम से पुकारूँगा—पैलू के घर में जाकर बैठें। डरिये मत आपकी सम्पत्ति अक्षुण्ण और अखण्ड है। हम, पैलू और लालसिंह लड़की को लेने जाते हैं। भांवर के समय तक अब आपको उसके दर्शनों का अधिकार नहीं है। जिस समय लड़की अपने मंडप के नीचे पहुँच जायगी, हम और पैलू बरातियों की गिनती में आ जायेंगे।'

अजित नीचा सिर किये चुपचाप पौर से निकल आया। ललित ने जाते समय भुजबल की ओर संकेत करते हुये उपस्थित किसानों से कहा—'अभी यही रहना। इनकी तबियत अच्छी नही है। देखभाल और संभाल किये रहना।'

रात भर के जागे हुये किसानों ने मुँह से तो कोई उत्तर नही दिया, परन्तु सिर हिलाकर अपनी अदम्य प्रण-पालकता को दर्शित कर दिया। ललित, लालसिंह और पैलू पौर के बाहर निकल आये। अजित के पास जाकर ललित ने पूना का पूरा पता-ठिकाना पूछ लिया।

[७१]

चकरई पहाड़ी से कुछ दूरी पर वे सब लोग रुक गये। ललित ने कहा—'पैलू, तुम अकेले जाओ। रात की घटना संक्षेप में समझा दो, और कह दो सकट नही है। फिर हम लोगों को बुला लेना।'

पैलू, 'बहुत अच्छा।' कहकर चला गया। थोड़ी देर बाद उसने पहाड़ी पर इन दोनों को बुला लिया।

जब ये लोग पहाड़ी पर पहुंचे, सूर्योदय हो आया था।

लालसिंह उसके सामने पहुंचते ही रोने लगा, और ललित के पीछे खड़ा होकर बोला—'बेटी, घर चलो, अब कोई भय नहीं है।'

ललित ने कहा—'पूना, तुम मेरी धर्म की बहिन हो। डरो मत। तुम्हारी सब संकट बाधा टल गई। सूर्योदय के साथ ही हर्ष का दिन निकला है।'

सामने से सूर्य की कोमल किरणें झुण्ड बाँधे चली आ रही थीं, पूना नीचा सिर किये दूसरी ओर मुँह मोड़े खड़ी थी। आँखों में आँसू टपक रहे थे—रश्मि-रचित मार्ग पर मोती-से।

पूना ने क्षीण स्वर में केवल इतना कहा—'चलिये।'

जिस समय पूना कंकरीले पथरीले मार्ग पर होकर चल रही थी, उसका शरीर कांप रहा था। घर की ओर जाने के लिये पैर थर्राते थे। लोग देखेंगे, तो क्या कहेगे? अब क्या होगा? इत्यादि प्रश्न पूना के मन में उठ रहे थे। परन्तु पैलू ने उससे एक बात अपने पहुंचने पर कह दी थी, जिससे वह निर्भय थी।

पूना के कोमल, गौर पद सिरे पर महावर से रंगे थे। जिस समय कंकड़ों में निहित होते थे, ऐसा जान पड़ता था, मानो गुलाब के फूल बिखेर दिये गये हों, और दिवाकर की रपटती हुई किरणों की आभा उनसे आलोकित-सी हो उठती थी।

जब पूना देवी के मन्दिर के सामने होकर निकली, नीची गर्दन ऊँची करके साथ वालों से आँख चुराकर नत-मस्तक हो गई। उस समय उन आँखों में कृतज्ञता का गौरव झलक आया था।

जब पूना गाँव में पहुंची, स्त्रियां घूंघट काढ़े किवाड़ों के पास से अपनी प्रच्छन्न मुस्कराहट द्वारा आशीर्वाद-सा बरसा रही थीं। इधर-उधर लाठी लिये गाँव वाले उस महिमा की रक्षा के लिये सन्नद्ध-से जान पड़ते थे।

परन्तु पूना लाज में डूबी-सी जा रही थी। मुख अरुण और पसीने में लतपत। चमकती हुई धूप में मुँह पर स्वेद-बिन्दु मुक्ता-मणि-से जान पड़ते थे।

पौर में होकर जब पूना आँगन में गई, तब उसने भुजबल की चारपाई की ओर दृष्टिपात नहीं किया। उसके भीतर चले जाने पर भुजबल एक बार कराहा, परन्तु उस निःशब्द, निःश्वास को सिवा उसके हृदय के और किसी ने नहीं सुना। पूना के भीतर पहुंचते ही स्त्रियाँ उसके गले लिपट गईं, और सब मिलकर देर तक रोईं।

ललित बुद्धा के घर पर अजित से मिला। इस समय ललित सूजे हुये चेहरे और धँसी हुई आंखों में एक आभा दमक रही थी।

बोला—'भाई साहब, बागा आपका कहाँ है ?'

पैलू चटपट बोला—'भुजबल ने अपना उतार कर डाल दिया है। ले आऊँ ?'

'नही।' ललित ने तुरन्त उत्तर दिया—'उस जूठन से ये सीधे-सादे कपड़े लाख बार अच्छे। पैलू हल्दी लाओ। मैं अजित को सच्चा दूल्हा बनाऊँगा।'

अजित ने हाथ जोड़कर ललित से निस्तब्ध प्रतिवाद किया।

'नहीं, आज मेरी इच्छा का इस संसार में कोई अवरोध न कर सकेगा। पैलू, लाओ।'

बुड्ढा पैलू उछलकर भीतर गया, और एक बड़े कटोरे में ढेर-भर हल्दी पानी में घोलकर ले आया। अजित ने बहुत विनय-प्रार्थना की, पर एक न चली। एक-एक करके सब कपड़े पीले कर दिये। तर कपड़े निचुड़कर अजित के शरीर पर पतली, मोटी, पीली रेखायें बनाने लगे।

ललित बोला—'अब चलो, बारात तैयार है। पैलू चल। इनाम मिलेगा।'

पैलू की आंखें तर हो गईं, और कण्ठ गद्‌गद्। बोला—'आज आँखें सिरा जायेंगी। अब मर जाऊँ तो कुछ बुराई नहीं।'

अजित बोला—'बड़ा भद्दा मालूम होता है। लोग क्या कहेगे !'

ललित ने गम्भीर होकर कहा—'यह बात उस समय सोच लेनी चाहिये थी, जब चिट्ठी पाते ही यहां आग्रह के साथ चल दिये।' तुरन्त हँसकर बोला—'तभी तो मुझे साथ नहीं ला रहे थे। चलो, चलो, विलंब का समय नही है।' और धँसे हुये चेहरे पर किसी आनन्द के उन्माद की मुद्रा-सी अंकित हो गई।

'अभी भुजबल की तबियत अच्छी नहीं है !' अजित ने कहा।

एक क्षण के लिये ललित की आंख चिनगारी की तरह भासित हुई। आनन्द की मुद्रा अंतर्धान हो गई।

फिर फौरन शांत होकर दृढता के साथ बोला—'यह सब दलील बिलकुल लचर है।' तब आगे-आगे अजित और पीछे-पीछे दोनों बराती लालसिंह के मकान पर पहुंचे।

ललित जबरदस्ती घसीटकर अजित को ढकेलता हुआ भीतर ले जाना चाहता था, परन्तु स्त्रियों ने न करने दिया। पहले टीके की रस्म पूरी की गई। और रस्मे भी शीघ्रता-पूर्वक निबटाकर मंडप के नीचे अजितकुमार ललितसेन के साथ पहुंचा।

पुरोहित बुला लिया गया था। पाणिग्रहण और अग्नि-प्रदक्षिणा हो गई। पूना ने उस दिन नीचे से ऊँची गर्दन नहीं की। स्त्रियां तरह-तरह के गीत गाती रहीं, और उन सबमें सबसे अधिक पूना के मामा की लड़की ने गाया, जो उस दिन संसार मे अपने को सबसे अधिक सुखी समझ रही थी। जिस समय भांवर पड़ रही थी, भुजबल पौर में आंखें बन्द किये न-मालूम क्यो कराह रहा था।

भांवरों की समाप्ति पर ललित ने कहा—'जो दो गाँव शिवलाल नाम के एक आदमी ने पूना को लगाये थे, वे अदालत के जरिये बैनामा मंसूख कर दिये जाने के कारण निकल गये थे, मैंने उन्हें अपने लिये फिर नीलाम में खरीद लिया था। वे दोनों मैं पूना को देता हूँ, और रहने के लिये छावनी का एक मकान।'

अजित कुछ कहना चाहता था, पर यह न जानता था कि क्या कहूँ? कुछ न कह सका। संपूर्ण अंगों में असमर्थता भान हो रही थी।

पैलू ने कहा—'वाह बाबू साहब, धन्य हो!'

'धन्य है वह, जो इस स्निग्ध, अखंड और विशाल विभूति का स्वामी हुआ है। गांव तो इन दोनों की न्यौछावर है।' ललित ने कहा।

अजित ने एक बार बिवाह-वेदी की ओर देखा। उसका मुख ऐसा जान पड़ा, मानो सम्पूर्ण गंगा-जल के गौरव से धोया गया हो। फिर पौर

में आकर ललित ने अपने भाव की तीव्रता को छिपाये हुये भुजबल से कहा—'जो कुछ हुआ, उसे भूल जाओ, और आगे सावधान होकर चलो। तुम्हारे लिये संसार मे किसी चीज की कमी नही है। तुमने यह सब क्यों किया, यह तुमसे कभी आगे न पूछा जायगा।'

भुजबल ने करवट लेकर हाथों मे मुँह छिपा लिया। यह किसी ने न देख पाया कि व्यथा की दारुणता या पछतावे की करुणा, इनमें से किसकी छाप उसके चेहरे पर अधिक थी।

ललित बोला—'बैनामे अदालत ने मसूख कर दिये थे, यह तुम्हे मालूम है, परन्तु मैंने दुबारा नीलाम मे उन्हे फिर खरीद लिया है, यह तुम्हें नही मालूम। अब की बार जो पाओगे, वह पास से न जायगा।'

भुजबल ने कुछ उत्तर न दिया। इस पर ललित ने लापरवाही के साथ कहा—'मैने जो कुछ उचित समझा, किया; यदि तुम्हारी जाँच में उल्टे मार्ग ही सरल और सीधे ठहरे, तो तुम्हारी मर्जी।' और अधिक कहना ठीक न समझकर ललित बोले—'तुम्हारी तबियत जरा अच्छी हो ले, तब घर ले चलूगा। ऐसी हालत में तुम्हे देखकर और लोगो की भी हालत खराब हो जायगी। मैं आज छावनी जाकर कल फिर आऊंगा।'

[७२]

उसी दिन छावनी की कचहरी मे जाकर ललितसेन ने अजित के विरुद्ध जो इस्तगासा दायर किया था, खारिज करा लिया।

मैजिस्ट्रेट अँग्रेज था। बोला—'अजितकुमार ने यह जुर्म न किया होगा। सच्ची बात क्या थी?'

लोगों के भीतरी मामलों का परिचय प्राप्त करने की वासना मैजिस्ट्रेटों में न होनी चाहिये, परन्तु नयेगाँव छावनी-सरीखी आधी रियासत और आधी अँग्रेजी जगह के अँग्रेज मैजिस्ट्रेट भी इस तरह के कौतूहल से वर्जित नही होते।

ललितसेन की आंखें एक क्षण के लिये पागलों-जैसी हो गईं, परन्तु कुछ न कहकर चुपचाप कचहरी के बाहर निकल आया।

जब क्रोध कुछ शांत हुआ, तब उसने मन मे सोचा—'कितना दभी और निष्ठुर है। शिष्टाचार तो छू तक नही गया है। क्या शासन-सत्ता का बर्ताव इस अभद्रता के साथ होना चाहिये ?' तब उसे प्रबल बनाम निर्बलवाद-सम्बन्धी दर्शन-शास्त्र का स्मरण हुआ। एक आह के साथ मुंह से निकला—'प्रबल का आतंक निर्बल पर स्वाभाविक है।'

परन्तु उसके इस तत्त्व का साथ उसके अभिमान ने न दिया। एक क्षण बाद उसने मन में कहा—'निर्बल प्रबल हो सकते है, और होंगे। और एक दिन वह सारी ऐंठ खाक मे मिल जायेगी।'

परन्तु कौन कह सकता है कि इस छोटी-सी घटना ने ललितसेन के प्रबल बनाम निर्बल दर्शन-शास्त्र में स्थायी उलट-फेर किया या क्षणिक ही।

[७३]

कचहरी से लौटकर ललित ने रतन से बात करने में शांति पाई। सिगरावन जाने के समय से अब तक के घण्टे रतन के लिये महीनों-सदृश बीते थे।

ललित ने सारी घटनायें रतन को सुनाईं परन्तु भुजबल के अचेत होकर गिर पड़ने का हाल नही बतलाया। रतन ने कुछ विश्वास और कुछ अविश्वास के साथ सब बातें सुन ली।

दूसरे दिन ललितसेन भुजबल को छावनी लिवा लाया। उसका गार्हस्थिक जीवन इन घटनाओं के उपरांत किस तरह बीता, और उसके चलते हुये दिमाग ने क्या-क्या किया, वह सब किसी पर प्रकट नही हुआ।

ललिलतसेन ने अपने वचन के अनुसार दो गाँव पूना को लगाये, और छावनी का एक मकान उन पति-पत्नी के रहने को दे दिया। यह भेंट अजित को अनिच्छा-पूर्वक और जबरदस्ती स्वीकार करनी ही पड़ी।

अजित ने जो खजाना सरकार में दाखिल किया था, उसका आधा उसे मिला। पैलू, बुद्धा और उन लोगों-सरीखे निस्सहाय लोगो की सहायता मे वह रुपया और अन्य संपत्ति लगती रही।

शिवलाल को धोका देने के अपराध में कई बरस की कैद हुई। उस मुकद्दमे मे भुजबल के कारनामों को उसने खूब खोल कर रक्खा, परन्तु उसके ऊपर आरोप न होने और ललितसेन के प्रमाण न देने के कारण वह न फंस सका। लोग आश्चर्य करते थे कि ऐसा धूर्त और पाजी आदमी कैसे बच गया! सिगरावन मे उसके सिर मे जो चोट लगी थी, वह बहुत दिन उसे अपना स्मरण कराती रही।

ललितसेन का स्वास्थ्य, नहीं मालूम क्यों, उन दिनों के पीछे फ़िर बढ़ती पर न देखा गया।

पूना और अजित ललितसेन के यहा कभी कभी आया-जाया करते थे।

एक दिन रतन ने ललितसेन के समक्ष अजितकुमार से कहा—'मास्टर साहब, मेरे उस दिन के कहे हुये कुवाक्य भूल गये या नही ?'

अजित बोला—'कोई दु:खदायक अपस्मरण मुझे कष्ट नही पहुँचा सकता।' और उसने अपनी जेब से निकालकर एक चित्र रतन के हाथ में देते हुये हँसकर कहा—'यही सारे फसाद का मूल कारण है।' रतन ने चित्र पहिचान लिया। उसी का था। एक क्षण के लिए भ्रकुटी संकुचित हुई फिर जरा मुस्कराकर उस चित्र को एक कोने में फेंक दिया। वह क्षीण मुस्कराहट किसी अनन्त युद्ध पर प्राप्त किसी अनन्त विजय की ध्वस्तप्राय ध्वजा-सदृश जान पड़ती थी।